'रघुवीर सहाय की काव्य चेतना और रचना शिल्प'

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि के लिये प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डा० मालती सिंह

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

शोधकर्ता

राजदेव दूबे

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वबविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

सन् १९९७ ई०

विषयानुक्रम

शोध प्रबन्ध : रघुवीर सहाय की काव्यचेतना और रचनाशिल्प

आमुख

समकालीन एवं साठोत्तर हिन्दी साहित्य में गहरी अभिरूचि होने के कारण मैंने "रघुवीर सहाय की काव्यचेतना और रचनाशिल्प" को अपने शोध का विषय चुना। आज के साहित्य में ही आज की सभी परिस्थितियाँ चरितार्थ हो सकती हैं; चाहे वे सामाजिक हों या राजनीतिक; आर्थिक अथवा धार्मिक। नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता, कहानी और उपन्यास के दौर में रघुवीर सहाय की रचनाओं की एक अलग पहचान है। जीवन के यथार्थ की सहज एवं सीधी अभिव्यक्ति होने के कारण रघुवीर सहाय की रचनाओं में मुझे विशेष रूचि रही है।

विषयवस्तु की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है।

अध्याय प्रथम– "रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य–संसार" के अन्तर्गत, प्रयोगवाद और नयी कविता पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए, रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा तथा उनके सम्पूर्ण रचना– संसार की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करके, रघुवीर सहाय के काव्य–संग्रहों की कविताओं की सामान्य प्रवृत्तियों का विकासात्मक परिचय दिया गया है।

अध्याय द्वितीय– "राजनीतिक–चेतना" में स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य रेखांकित करते हुए, रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना पर गाँधीवाद, लोहियावादी–समाजवाद, साम्यवाद के प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत है। तत्पश्चात् रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना के विविध पक्षों पर विचार किया गया है। इस विवेचन में इस तथ्य को विशेष रूप में उभारा गया है कि

रघुवीर सहाय भारतीय लोकतंत्र की दुर्गति लेकर सबसे अधिक क्षुब्ध थे। राजनीतिक स्थितियों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता आपातकाल के समय और भी मुखरित हुई है। लोकतंत्र पर प्रकाश डालते हुए, आपातकालीन मुखरता एवं 1975 के बाद भारतीय राजनीतिक परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अध्याय तृतीय– "सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ" के अन्तर्गत, सामाजिक वैषम्य, सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास, भारतीय औरतों तथा बच्चों की दुर्गति" पूँजीवाद का प्रसार, महानगरीय एवं असहाय आदमी आदि विविध विन्दुओं का विवेचन प्रस्तुत है।

अध्याय चतुर्थ– "मानवीय मूल्य" में मानवीय मूल्यों के ह्रास के प्रति चिन्ता, मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ एवं मानवीय भावों की स्थापना आदि पक्षों का विश्लेषण किया गया है।

अध्याय पंचम– "भाषा और रचना–शिल्प" का विवेचन है। इसके अन्तर्गत रघुवीर सहाय की भाषा को प्रभावित करने वाले घटकों, नयी भाषा की खोज, सपाटबयानी, सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता, वाक्य का महत्त्व, नाटकीयता एवं झटका देने की कला, व्यंग्यात्मक तेवर, बिम्ब और प्रतीक, भाषा की शाब्दिक संरचना शीर्षकों से विषय वस्तु का विवेचन प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त छन्द, लयात्मकता एवं संगीतात्मकता जैसे पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

अन्त में, "उपसंहार" में शोध कार्य एवं समग्र उपलब्धि पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

इसके अतिरिक्त शोध से सम्बन्धित आधार पुस्तकों, सहायक सन्दर्भ ग्रन्थों एवं पत्र–पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सफलतापूर्वक सम्पन्न होने के लिए मैं सर्वप्रथम अपने माता–पिता श्री राम चरित्र दुबे एवं श्रीमती हिरावती दुबे का चिर ऋणी हूँ; जिन्होंने मुझे निरन्तर प्रेरणा एवं आर्शीवाद प्रदान कर प्रस्तुत शोध कार्य योग्य बनाया। तत्पश्चात् मैं अपनी शोध–निर्देशिका डा0 मालती सिंह, प्रो0 हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का आजीवन आभारी रहूँगा, जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय निकालकर, शोध प्रबन्ध की बहुत सारी त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करते हुए, अतिशय स्नेह एवं प्रोत्साहन भी प्रदान किया हे तथा समय–समय पर मेरा उचित मार्गदर्शन भी करती रही हैं।

तत्पश्चात मैं अपने अग्रज श्री ब्रह्मदेव दुबे का भी आजीवन ऋणी हूँ, जिन्होंने अध्ययन के क्षेत्र में तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए मुझे आर्थिक सहायता एवं प्रोत्साहन देने की कृपा की है।

इसके अतिरिक्त मैं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय तथा अन्य गुरूजनों प्रो0 राजेन्द्र कुमार वर्मा, डा0 सत्यप्रकाश मिश्र, डा0 राजेन्द्र कुमार, डा0 रामकिशोर शर्मा, श्री दूधनाथ सिंह, डा0 मीरा दीक्षित एवं पूर्व गुरू श्री श्याम लाल का आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध के सम्पन्न होने में उचित सहयोग एवं परामर्श दिया है।

तत्पश्चात् मैं अपने श्वसुर श्री राम लोचन एवं मित्रवर चन्द्र प्रकाश पाण्डेय के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध के प्रति मुझे समुचित प्रेरणा एवं सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त पत्नी शिवा दुबे का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने दायित्वों से मुझे मुक्त रखा तथा इस कार्य को पूरा करने में सहयोग दिया है।

मैं सर पी0सी0 बनर्जी छात्रावास का भी आभारी हूँ, जहाँ रहकर मुझे ऐसा कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। टाइपिस्ट **श्री राकेश कुमार शुक्ल** शुभम् फोटोकापियर्स मनमोहन पार्क, कटरा, इलाहाबाद का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने अथक प्रयास के द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के टंकण का कार्य पूर्ण किया है।

तदोपरान्त, मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, एवं केन्द्रीय पुस्तकालय जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली के कर्मचारियों का आभारी हूँ, जहाँ से मुझे अपने शोध प्रबन्ध के लिए प्रर्याप्त सामग्री के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

अन्ततः मैं उन समस्त विद्वानों के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिनकी उत्कृष्ट कृतियों का प्रयोग प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध में किया गया है। साथ ही उन समस्त व्यक्तियों एवं मित्रों का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस शोध प्रबन्ध के लेखन एवं टंकण में सहयोग प्रदान किया है।

मानव सुलभ न्यूनताओं एवं दुर्बलताओं के कारण, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भी त्रुटि का रह जाना स्वाभाविक है, जिसके लिए मैं विद्वत समाज से क्षमा प्रार्थी हूँ।

राजदेव दुबे

अगस्त, सन् 1997 ई0

राजदेव दुबे
शोध छात्र (यू0जी0सी0)
(जे0आर0एफ0) हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

अध्याय – प्रथम

"रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य संसार"

अध्याय प्रथम

रघुवीर सहाय तथा उनका काव्य संसार

1. तार–सप्तक और प्रयोगवाद, 2. नयी कविता, 3. नयी कविता तथा रघुवीर सहाय, 4. रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा,

5. काव्य संसार – क) सीढ़ियों पर धूप में, ख) आत्महत्या के विरूद्ध ग) हँसो–हँसों जल्दी हँसो, घ) लोग भूल गये हैं, ड.) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, च) एक समय था।

सचमुच दो महायुद्धों के बीच की स्वच्छन्दतावाद की कविता को सामान्यत छायावाद के नाम से अभिहित किया गया है। सामान्य तोर पर 1918 से लेकर 1938 तक का समय छायावाद के नाम से जाना जाता है, लेकिन छायावाद इसके पहले ही आरम्भ हो गया था। सत्याग्रह की असफलता और जीवनयापन की कठिनाइयों के फलस्वरूप उत्पन्न निराशा तथा पलायन की प्रवृत्ति ने छायावाद को जन्म दिया। व्यक्तिवाद की प्रधानता, प्रकृति–चित्रण, नारी सोन्दर्य वेदना ओर निराशा, स्वच्छन्तावाद एवं रहस्यवाद आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। लेकिन कल्पना की अति ने छायावाद को हमारे जीवन से दूर हटा हटा दिया, और वही इसके पतन का कारण भी बना।

आगे चलकर काव्य की स्थिरता में पतन आरम्भ हो जाता है। छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ। निश्चय ही जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद, और दर्शन के क्षेत्र में द्वन्द्वात्मक भोतिकवाद है, वही साहित्यिक क्षेत्र मे प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है– दूसरे शब्दों मे मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोंण के अनुसार निर्मित काव्यधारा प्रगतिवाद है। उस समय यह देखा गया कि छायावाद तथा रहस्यवाद के रूप में कवि लोग जीवन की कठोर भूमि से भाग चुके थे, उन्हें न राष्ट्र की चिन्ता थी ओर न दीन–दुखियों की। उन्हे वास्तविक जीवन मे निराशा ही निराशा दिखती थी। मार्क्सवाद का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ रहा था। फलत. गद्य साहित्य की भाँति पद्य साहित्य में भी प्रगतिवाद ने अपने पाँव पसारे और कवि लोग रहस्यमय आकाश से पृथ्वी पर लोट आये ओर शोषितों तथा अत्याचार पीड़ितों का चित्रण हेय को गेय कहने लगे। वेदना एवं निराशा, क्रान्ति की भावना मानवतावाद, नारी चित्रण, सामाजिक जीवन का चित्रण आदि इसकी प्रमुख विशेषताएं है।

लेकिन प्रगतिवादी कविता भी अपने में एकांगीपन लिए हुए थी, फैशन और फरमायश के लिए लिखी गयी प्रगतिवादी कविताएं उत्कृष्ट साहित्य की कोटि में नहीं आ सकीं। सामाजिकता की प्रधानता होते हुए भी प्रगतिवाद जीवन के केवल भौतिक पक्ष का ही अभ्युत्थान करने की कोशिश किया जिसके कारण इसकी नींव कमजोर पड़ गयी।

1 **तारसप्तक और प्रयोगवाद :**

प्रगतिवाद के ही समानान्तर हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद की परिणति घोर अहंवादी, स्वार्थ प्रेरित एवं असंतुलित रूप में होने लगी। कविता की इस विद्रूप प्रवृत्ति का अभी तक अन्तिम रूप से नामकरण नहीं हो पाया।

सन् 1943 ई0 में स0 ही वात्सायन अज्ञेय के सम्पादकत्व में "तार सप्तक" का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इस कृति के नाम से ही इस बात का पता चलता है कि सात (7) संख्या का प्रयोग किसी उद्देश्य विशेष को लेकर हुआ है। गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा एवं अज्ञेय इन सात कवियों की यह प्रमुख देन है। "तार-सप्तक" का प्रकाशन भले ही 1943 ई0 में हुआ, लेकिन उसमें संकलित कविताएं उस युग की उपज है, जब देश में छिड़ा स्वाधीनता संघर्ष एक निर्णायक दौर में प्रवेश कर चुका था। इसमें समाहित आशावादिता, सामूहिक और व्यक्तिगत निराशाओ, पीड़ाओं को काफी सीमा तक विगलित कर रही थी, साथ ही साथ एक नये प्रकाश और सौन्दर्य के रूप को उभार रही थी। अज्ञेय सम्पादन एवं संकलनकर्ता थे।

"तार–सप्तक" के सम्पादकीय वक्तव्य में अज्ञेय ने कहा है कि– "सात कवि एक दूसरे से परिचित हैं, लेकिन, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे कविता के किसी एक "स्कूल" के कवि हैं, या कि साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के रहस्य या समर्थक हैं, बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नही हैं, किसी मंजिल प पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं , –राही नहीं, राहों के अन्वेषी"---[1]

इन सातों कवियों में मतेक्य नहीं है। जीवन, समाज, धर्म, राजनीति, काव्य–वस्तु, भाषा–शेली, छन्द ओर तुक के बारे में उनकी अलग–अलग राय हे।

कवि की जिम्मेदारियों से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है। यह भेद इस सीमा तक है कि जगत के ऐसे सर्वमान्य ओर स्वयंसिद्व मौलिक सत्यों को भी वे समानरूप से स्वीकार नहीं करते-- जैसें लोकतंत्र की आवश्यकता, उद्योगों का समाजीकरण, यांत्रिक युद्ध की उपयोगिता, वनस्पति घी की बुराई, अथवा कानन बाला अथवा सहगल के गानों की उत्कृष्टता इत्यादि, वे सभी कवि परस्पर एक दूसरे पर, एक दूसरे की रूचियों, कृतियों और आशाओं, विश्वासों पर, एक दूसरे के मित्रों ओर कुत्तों पर भी हँसते हैं। "तार–सप्तक" किसी गुट का प्रकाशन नहीं हे, क्योकि संग्रहीत सात कवियों के साढ़े सात अलग–अलग गुट हैं, उनके साढ़े सात व्यक्तित्व । यही कारण है कि ऐसा बहुत कम है जो निरपवाद रूप से सभी कवियों के बारे में कहा जा सके। ये सभी मन के इतने भिन्न हैं कि सबको किसी एक सूत्र में गूँथने का प्रयास व्यर्थ ही होगा। हिन्दी कविता के इतिहास में "तार–सप्तक" कई मायनों में एक अविस्मरणीय

---

1 दूसरा सप्तक – सं0 अज्ञेय, 1951 पृ0सं0 5

घटना है। प्रगतिवाद के दोर में यह मान लिया गया था कि कविता का अन्तिम सत्य पा लिया गया हे ओर अब केवल उसी की पुनरावृत्ति करना है। लेकिन "तार–सप्तक" ने कवि को सतत अन्वेषी और प्रगतिशील कह आगे खींचता रहा –

"आत्मवत् हो जाय
ऐसे जिस मनस्वी की मनीषा
वह हमारा मित्र है–
माता–पिता–पत्नी सुहृद पीछे रहे हैं छूट
उन सबके अकेले अग्र में जो चल रहा है
ज्वलत तारक सा
वही तो आत्मा का मित्र है–––"[1]

"तार–सप्तक" हिन्दी कविता की अविस्मरणीय घटना इसलिए है कि यह अविस्मरणीय होना, कविता में उपस्थित होने वाले बुनियादी बदलाव, के कारण ही नहीं है, बल्कि उसकी सामूहिक योजना, संकलन, प्रकाशन, और प्रभाव के कारण भी है। मुख्य बात यह कि यह वास्तविक और तीखे अर्थो में एक युगान्तकारी परिवर्तन का सचेत और सटीक उदाहरण है।

दूर से जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखते हैं तो हर मोड़ पर यह व्यवस्था और सामूहिकता स्पष्ट नजर आती है। इसमें चाहे उलटवासियों की बात हो, चाहे नाथ सिद्वों की बात हो, या छन्द प्रबन्ध में काव्य रचने वाले रासो कवि, चाहे भक्ति थे चारो मार्गो को अपनी–अपनी प्रतिभा से विकसित

---

1 तार–सप्तक, प्रकाशन– 1943 सं0 अज्ञेय संकलित कविता, गजानन माधव मुक्तिबोध आत्मा के मित्र मेरे पृ0सं0 11, भारतीय ज्ञानपीठ काशी।

करने वाले भक्त कवि हो, चाहे रीति–कालीन श्रृंगारिक कवि हों। सभी एक सामूहिक योजना का हिस्सा दिखाई पड़ते हैं। भारतेन्दु मण्डल, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, वगैरह के रूप में आधुनिक हिन्दी कविता की जो क्रमबद्व व्यवस्था इतिहासकारों और समीक्षकों ने तय की है, या उसे स्वीकृत किया है, उससे यह बात बिल्कुल प्रमाणित हो जाती है कि हिन्दी कविता आदि से अन्त तक सामूहिक प्रयासों की योजनाबद्व रचना रही है।

"तार–सप्तक" अपनी योजना से लेकर कविता की बुनियादी प्रतिपत्तियों के आधार पर एक सचेत सहयोगी प्रयास है। यही सहयोगी प्रयास उसे एक अनहोनी घटना का रूप देता है और इसी प्रयास की सफलता उसे अविस्मरणीय बनाती है। मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन आदि सात कवियों का मण्डल एक नयी प्रणाली खोजने का प्रयास करता रहा है।

अभिव्यक्ति की ऐसी प्रणाली जिसके द्वाा अपनी बात को पाठकों तक आसानी से पहुँचायी जा सके। "तार सप्तक" के अधिकांश सभी कवियों में "नये के प्रति" एक निष्ठा है, उत्सुकता है, चाहे वह विषय वस्तु हो अथवा अभिव्यक्ति का प्रयोग। लगभग हर काल मे प्रयोगशीलता प्राप्त होती है, लेकिन अज्ञेय ने उसे सर्वथा नये परिप्रेक्ष्य में परखा है और भविष्य की नयी कविता के एक नये मानदण्ड के रूप में उभारने का अथक प्रयास किया है।

"तार–सप्तक" के प्रकाशन का विरोध और स्वागत दोनों हुआ। जो शास्त्रीय समीक्षा और काव्य रसास्वादन के पक्षपाती थे। उन्होंने "तार–सप्तक" से ऐसे–ऐसे काव्य–खण्ड उदाहरण के रूप मे खोजने का प्रयास किये जो रूखेपन, भदेसपन, अनगढ़ता और रसहीनता से युक्त थे। रामधारी सिंह "दिनकर" ने तार–सप्तक की अपनी समीक्षा में उसके महत्तव को स्वीकार किया था लेकिन उसकी बहुतेरी आलोचना भी की थी।

सन् 1951 ई0 में "दूसरा-सप्तक" प्रकाशित हुआ। अज्ञेय जी संपादन एवं संकलनकर्ता थे। भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी द्वा यह भाग भी प्रकाशित हुआ।

भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि सात कवियों का इस अंक में उल्लेखनीय योगदान रहा । यह देखा गया कि "तार-सप्तक" के प्रकाशन से अनेकानेक विवाद उत्पन्न हुए , जिसके कारण "दूसरा सप्तक" की भूमिका में अज्ञेय ने बहुत सारे विवादों का निपटारा करने का प्रयास किया।

"दूसरा-सप्तक" के छठे प्रमुख कवि के रूप में रघुवीर सहाय आते हैं। "दूसरा-सप्तक" के प्रकाशन के साथ ही रघुवीर सहाय की बहुत सारी कविताएं प्रकाशित हुई।

अपनी काव्य यात्रा में इन्होंने बच्चन और माथुर को याद किया है। अज्ञेय और शमशेर बहादुर सिंह की रचनाओं से भी सहाय ने बहुत कुछ सीखा है। वे सर्वत्र सामाजिक यथार्थ तक पहुँचने के लिए वेज्ञानिक तरीका अपनाते है। यह उनकी मार्क्सवादी चेतना है।

वे शमशेर बहादुर सिंह के इस वक्तव्य को स्वीकार करते हैं कि-"जिंदगी में तीन चीजों/ बड़ी जरूरत है। आक्सीजन, मार्क्सवाद और अपनी वह शक्ल जो हम जनता में देखते हैं"---1

---

1 दूसरा सप्तक की भूमिका सं0 अज्ञेय 1951 भातीय ज्ञानपीठ काशी, रघुवीर सहाय का वक्तव्य , पृ0 138

"बसन्त" पहला पानी, प्रभाती, याचना, गजल, भला, संशय, कोशिश, अनिश्चय, लापरवाही, समझोता, एकोऽहं बहुस्याम, मुँह–अँधेरे, सायंकाल, आदि (14) चोदह कविताएं प्रकाशित हुईं, जो कि रघुवीर सहाय की बिल्कुल आरम्भिक कविताएं मानी जाती हैं। सहाय की ये कविताएं प्रकृति की कविताएं हैं।

> "वन की रानी हरियाली–सा भोला अन्तर
> सरसों के फूलों सी जिसकी खिली जवानी,
> पकी फसल सा गरूआ गदराया जिसका तन,
> अपने प्रिय का आता देख लजायी जाती,
> गरम गुलाबी शरमाहट सा हलका जाड़ा
> स्निग्ध गेहुएं गालों पर कानों तक चढ़ती लाली जेसा
> फेल रहा हे।" ---[1]

जीवन के जीते–जागते यथार्थ का सहज चित्रण रघुवीर सहाय की "दूसरा–सप्तक" की कविताओं मे प्राप्त होता हे। अपनी इन कविताओं में जीवनोपयोगी विशेषताओं को प्रकट करते हुए सच्चे, सामाजिक यथार्थ के प्रति अपना लगाव व्यक्त करते हैं। सामाजिक विषमता एवं अन्याय का वे आरम्भ से ही विरोध करते रहें। "दूसरा–सप्तक" की सहाय की ये कविताएं, रोमाण्टिक भावभूमि को तेयार करती हैं, लेकिन बदलते परिवेश को यथार्थ और जीवनानुभव की बहुत सारी गेर–रोमाण्टिक दृष्टि भी दिखाई देती हे। प्रकृति उनके लिए पलायन की शरण–स्थली नहीं, बल्कि उनके रोजमर्रा के यथार्थ जीवन में हिस्सा लेती हुई, तनाव मुक्ति तथा मानवीय संवदेना को जीवित रखने का कारण बनी हे।

---

1 दूसरा सप्तक "सं0 अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी – 1951 पृ0– 141

"तुम अप्रस्तुत ही रहोगे क्या मरण पर्यन्त ?
जब निकट होगा तुम्हारा बिना बुलाया अन्त
आ रहा होगा विगत सुस्पष्ट तुमको याद,
मन तुम्हारा स्वस्थ होगा बहुत दिनों के बाद।"---[1]

"दूसरा सप्तक" की रघुवीर सहाय की कविताएं प्रयोगवादी एवं नयी कविता की मौलिकताओं को समेटकर उनके अन्य संग्रहों के लिए एक सशक्त मार्ग प्रस्तुत करती है।

सन् 1959 ई0 में "तार-सप्तक" का तीसरा भाग भी भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। अज्ञेय जी ही इस भाग के भी संपादन एवं संकलनकर्ता थे। प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चोधरी, मदन वात्सायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजय देव नारायण साही, सर्वेश्वर, दयाल सक्सेना, इन सात प्रमुख कवियों की देन "तीसरा सप्तक" है। अज्ञेय जी के मतानुसार "तीसरा-सप्तक" के कवि रचनात्मक स्तर पर"प्रोढ़ि" प्राप्तकर चुके थे।

सन् 1979 ई0 में"तार सप्तक" का चोथा भाग भी प्रकाशित हो चुका था। अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्दकिशोर आचार्य, समुन राजे, श्रीराम वर्मा, राजेन्द्र किशोर आदि सात कवियों के सक्रिय सहयोग से यह सप्तक अस्तित्व में आया। इस संकलन के सातों कवियों कवियों ने भी अन्य सप्तकों के कवियों की तरह एक नवीन शेली, बिम्ब-विधान एवं नये प्रयोगों की तलाश करते हुए "नयी कविता के मेदान में अपने को उतारने में सफल होते है।

---

1 दूसरा सप्तक स0 अज्ञेय भारतीय ज्ञान पीठ काशी कविता संशय, पृ0 148

"तार–सप्तक" कविता की अपूर्ण आकांक्षा को पूरा करने में काफी सफल हुआ। इसमें जो सुख–दु.ख, हर्ष–विषाद, संघर्ष–पराजय, घुटन–टूटन आह्लाद है, वह सब कवि का अपना सर्वप्रथम है, किसी और का बाद में। यह भी निश्चित है कि "तार–सप्तक" आज के युग में केवल एक सुदूर की घटना ही मालूम पड़ती है, जो प्रत्यय और पद "तार सप्तक" के कवियों ने गढ़ने की कोशिश की, वे सब आगे चलकर बहुत आधे–अधूरे ही मालूम पड़े। यही कारण है कि "तार–सप्तक" को किन्हीं अर्थों में एक प्रस्थान बिन्दु मानकर हम आज तक की कविता का एक लेखा–जोखा तो कर सकते हैं, लेकिन तार–सप्तक को साहित्य, इतिहास की एक घटना मानना ही उचित है। "तार सप्तक" के कवियों की भाषा–शैली एवं प्रयोगों को बहुत महत्वपूर्ण न मानने पर भी इतना अवश्य मानना होगा कि तार–सप्तक की नीव पर ही "प्रयोगवाद" एवं नयी कविता का भव्य भवन निर्मित हुआ। "तार–सप्तक" के द्वारा प्रयोगवाद और नयी कविता को क्रमशः अस्तित्व में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

प्रयोगवाद :

हिन्दी कविता में छायावाद के बाद काव्य की स्थिरता में कुछ पतन आरम्भ हो जाता है। छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवाद का उदय हुआ, लेकिन इसी के साथ ही कुछ इस प्रकार की रचनाएं भी उसी समय रची गयी, जिन्हें आगे चलकर (1943) के बाद प्रयोगवादी रचनाओं के नाम से जाना जाने लगा। वास्तव में प्रयोगवाद शब्द का प्रचलन "अज्ञेय" द्वारा सम्पादित "तार–सप्तक" (1943) के बाद ही हुआ, और प्रयोगवाद का नामकरण "नन्द दुलारे बाजपेयी" ने किया।

"तार–सप्तक" और उसके आगे की रचनाओं को प्रयोगवादी रचनाएं इसीलिए कहा गया कि उक्त रचनाओं की व्याख्या और पक्ष समर्थन करते हुए "अज्ञेय" ने बार–बार प्रयोग शब्द प्रयुक्त किया था। इन नयी रचनाओं के शिल्प की विशेषता को लक्ष्य करके उन्होंने कहा है कि–

"प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किया है। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया है या अभेद्य मान लिया गया है"---[1]

यह निश्चित है कि "अज्ञेय" ने "प्रयोगवाद" शब्द का प्रयोग न करके केवल "प्रयोग" शब्द ही प्रयुक्त किया है। लेकिन उनकी रचनाओं के लिए, जिसमें सर्वथा नये-नये प्रयोगों के लिए पूर्ण जगह है, और जिनके लिए "प्रयोग" शब्द का बड़े आग्रह के साथ बार-बार प्रयोग हुआ है, प्रयोगवादी रचनाएं कहना किसी भी प्रकार से असंगत नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य साहित्यिक चिन्तन धारा ने हमारे अन्दर परखने और देखने की जो- प्रवृत्ति विकसित की है, उसकी प्रेरणा से प्रयोग-प्रधान रचनाओं को "प्रयोगवाद" कहा गया। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी और डा0 नगेन्द्र ने भी प्रयोग प्रधान रचनाओं को प्रयोगवाद कहा। हिन्दी में प्रयोग शब्द की प्रेरणा भी पाश्चात्य साहित्य से प्राप्त हुई है। टी0एस0इलियट ने इस शब्द के लिए"एक्सपैरीमेन्टेशन" शब्द प्रयुक्त किया है। प्रयोगवाद और नयी कविता के अन्तर्गत आने वाले कवि मूल रूप से टी0एस0 इलियट औ ग्रीट्स आदि से प्रेरित हैं। अज्ञेय ने "तार-सप्तक" में बार-बार "प्रयोग" शब्द का प्रयोग किया है जो "एक्सपेरिमेंटेशन का समानार्थक है।

आरम्भ में "प्रयोगवाद" नाम लेकर विवाद था, लेकिन अब कोई विवाद नहीं है। यह अवश्य है कि आरम्भ में प्रतीकवाद, प्रपद्यवाद, नकेनवाद जैसे नाम भी प्रयोगवाद के समानान्तर प्रचलित हो गये थे। नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश ने अपने नाम के प्रथम अक्षर पर इस काव्य धारा को "नकेनवाद" नाम दिया।

डा0 गणपति चन्द्र गुप्त प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद तथा नयी कविता इन तीनों नामों को इस काव्य धारा के विकास की तीन अवस्थाएं स्वीकार की है। उनकी यही मान्यता रही है कि विल्कुल प्रारम्भ में जब कवियों का दृष्टिकोंण एवं लक्ष्य स्पष्ट नहीं था; नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गयी थी, तो इसे "प्रयोगवाद" के नाम से अभिहित किया गया और इसी आन्दोलन के कुछ लोगों ने "स्व0 नलिन विलोचन शर्मा" के नेतृत्व में प्रयोग को अपना साध्य स्वीकार करते हुए अपनी "कविताओं" के लिए "प्रपद्यवाद" का प्रयोग किया। यहीं पर दूसरी तरफ डा0 जगदीश गुप्ता लक्ष्मीकान्त वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसे अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान करते हुए "नयी कविता" नाम का प्रचार किया।

वास्तव में जिस विचारधारा को "प्रयोगवाद" के नाम से अभिहित किया गया है, वह प्रयोग के यौगिक तथा विस्तृत अर्थ से सम्बद्व न होकर एक विशेष धारा की कविता के लिए रूढ़ हो गया हे और छायावाद की तरह ही चल पडने के कारण ग्रहण किया गया है। उस रामय की कविताएं विभिन्न प्रयोगों एवं नयी शैली को लेकर लिखी गयी हैं।

"प्रयोगवादी" कविता के विषय में दो विचारधाराएं प्रचलित हैं, कुछ विद्वानों का यह मानना है कि प्रयोगवादी कविता का मूल उद्देश्य उस मध्यमवर्ग की अनुभूतियों का चित्रण है, जो दूसरे महायुद्ध के कारण अत्यन्त दयनीय स्थिति में थी। सामाजिक तथा आर्थिक सभी दृष्टियों से उसकी दशा बदतर थी। "प्रयोगवादी कविता" ऐसी ही अवरूद्व परिस्थिति से घिरे हुए समाज की देन है। लेकिन ऐसी कविता और उसका कलाकार उक्त स्वभाव के प्रति विद्रोह तथा असंतोष की भावना को लेकर नहीं आया, बल्कि युद्ध में पराजित योद्धा की भाँति समर्पण का सहारा लेकर चला है। वह केवल अपनी ही वैयक्तिक अनुभूतियों और कुण्ठाओं का चित्रण प्रस्तुत करता रहा है।

"तार–राप्तक" और प्रतीक पत्रिका को देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इनमें संग्रहीत कवियों के अनुभव का क्षेत्र, दृष्टिकोंण और कथन एक जैसे नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ तो ऐसे हैं जो कि विचारों से समाजवादी हैं और अपने संस्कारों से व्यक्तिवादी– जैसे शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन। लेकिन कुछ ऐसे हैं जो विचारों और अपनी क्रियाओं दोनों से समाजवादी हैं – जैसे– राम विलास शर्मा और गजानन माधव मुक्तिबोध ।

"आत्मवत् हो जाय
ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा
वह हमारा मित्र है
माता–पिता पत्नी–सुहृद–पीछे रहे हैं छूट
उन सबके अकेले अग्र में जो चल रहा है
ज्वलंत तारक सा
वही तो आत्मा का मित्र है
मेरे हृदय का चित्र है"––– [1]

कुछ प्रयोगवादी कवियों का दृष्टिकोंण ऐसा है, जो प्रगतिशील कविता के द्वारा व्यक्त होते हुए जीवन मूल्यों और सामाजिक प्रश्नों को असत्य या सत्याभास मानकर, अपने व्यक्तिगत जीवन में तड़पने वाली गहरी संवेदनाओं को ही चित्रित करना चाहते हैं। निश्चय ही ये सभी मध्यम वर्ग के हैं। जिन कवियों ने समाजवादी विश्वासों को अपने संस्कारों में ढालकर कविताएं लिखी हैं, वे सचमुच जनवादी कवि हैं। लेकिन जो ऐसा करने में असमर्थ रहे हैं, वे अपने व्यक्तिगत सुख–दु:खों की संवेदनाओं को ही अपने काव्य का सत्य मानकर उन्हें नये–नये माध्यमों द्वारा व्यक्त करने की कोशिश की है। प्रयोगवाद के आलोचकों ने प्रयोगवाद

---

1 तार–सप्तक – सं0 अज्ञेय – 1943 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी
संकलित कविता– मुक्तिबोध पृ0सं0 9

की चर्चा करते समय मुख्य रूप से इन्हीं कवियों को ध्यान में रखा है, क्योंकि समाजवादी विश्वासों वाले कवि प्रगतिशील कविता के ही क्षेत्र के कवि स्वीकार किये जाते हैं।

दूसरी तरफ कुछ विद्वानों की ऐसी भी धारणा हैं कि प्रयोगवादी कविता का उद्देश्य कलाकारों तथा पाठकों को प्रगतिवाद के आकर्षण से दूर हटाना है, जिस तरह प्रथम महायुद्ध के उपरान्त यूरोप के इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस आदि देशों में साम्यवाद की क्रान्तिकारी विचारधारा की तरफ से जनता का ध्यान हटाने के लिए वहाँ के आभिजात्य वर्ग के कलाकारों ने नवीन काव्य प्रणाली का जन्म दिया था और इसके जन्मदाता टी0एस0 इलियट हैं उसी प्रकार भारत में भी कुछ अभिजात्य वर्ग के कलाकारों ने प्रयोगवाद जैसी नवीन प्रणाली का जन्म दिया जो बाद में चलकर नयी कविता का रूप धारण कर लिया।

कुछ साहित्यकारों ने "प्रयोगवाद" और "नयी कविता" को भिन्न–भिन्न माना है। लेकिन वास्तविक तौर पर यदि देखा जाय तो ये दोनों ही एक ही काव्यधारा के विकास की दो अवस्थाएं हैं। सन् 1943 से 1953 तक कविता में जो नवीन प्रयोग हुए "नयी कविता" उन्हीं का परिणाम है। प्रयोगवाद उस कविता धारा की आरम्भिक अवस्था है और नयी कविता उसकी विकसित अवस्था है। प्रयोगवाद के जो उन्नायक है, वे ही नयी कविता के कर्णधार हैं।

वास्तव में सन् 1943 से 1953 तक का समय "प्रयोगकाल (प्रयोगवाद), 1953 के बाद का समय "नयी कविता" के नाम से जाना जाता है। अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, आदि प्रमुख प्रयोगवादी कवि हैं।

2 **नयी कविता :**

"नयी कविता" नामकरण का श्रेय अज्ञेय को है। "नयी कविता" का विधिवत आरम्भ "डा0 जगदीश गुप्त" के प्रथम एवं डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के संयुक्त सम्पादकत्व में प्रकाशित "नयी कविता" पत्रिका सन् 1954 से होता है। इसके पूर्व श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा और डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्मिलित सम्पादकत्व में "नये–पत्ते" का प्रकाशन सन् 1953 में हो चुका थो। सन् 1955 ई0 में डा0 धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सहयोग से "निकष" पत्रिका का आरम्भ हो गया था। गिरिजा कुमार माथुर रचित "नयी कविता सीमाएं और संभावनाएं" नामक आलोचनात्मक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। गजानन माधव मुक्तिबोध– "नयो कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबन्ध" नामक पुस्तक की रचना की। परिणामस्वरूप यह सर्वस्वीकृत हुआ कि नयी कविता की काव्य यात्रा का प्रारम्भ एक विशेष स्थान से न होकर चतुर्दिक हुआ।

"डा0 जगदीश गुप्त" "नयी कविता" संकलन के माध्यम से "नयी–कविता" के अग्रसारक के रूप में अभी भी रचना तत्पर हैं। डा0 लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "नयी कविता के प्रतिमान" निश्चित किये। पुनः डा0 "लक्ष्मीकान्त" वर्मा ने अपनी समीक्षा पुस्तक "नये प्रतिमान पुराने निकष" में ताजी कविता की वकालत की है। नयी कविता के लिए "डा0 जगदीश गुप्त" और "डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी" का योगदान सर्वाधिक महत्चपूर्ण हैं। इन विद्वान द्वय ने अपनी विद्वतापूर्ण समीक्षाओं द्वारा नयी कविता के विरोधियों को उचित उत्तर दिया। अपने संतुलित और नवीन विचारों द्वारा नयी–कविता के साथ उठने वाली नकली आन्दोलनों की भीड़ को तितर–बितर किया। वस्तुतः नयी कविता ने प्रयोगवाद को बिखरने से बचाया। अब नयी कविता को लगभग पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है।

"पाँचवे दशक" के जो प्रयोगवादी कवि "राहों के अन्वेषी" थे, छठे दशक तक आते–आते उन्हें एक राह मिल गयी थी। कविता का यह क्रम जारी रहा। पुनः 1960 के बाद जो कविताएं लिखी गयीं, उन्हें साठोत्तरी कविता एवं वर्तमान में जिन कविताओं का सृजन हो रहा है, उन्हें "समकालीन" और "आधुनिक कविता" के नाम से अभिहित किया जा रहा है।

आज की कविता में आम आदमी के लिए आग्रह है। उसको समझने की चेष्टा है और उसकी जिन्दगी में परिवर्तन लाने की प्रबल इच्छा है। आज की कविता में आम आदमी केवल व्यवस्था और समाज से ही नहीं लड़ रहा है बल्कि वह अपने आप से भी लड़ रहा है। इस दृष्टिकोंण से उसका मोर्चा न किसी व्यक्ति से है, न किसी वर्ग से है, न व्यवस्था से है, बल्कि अपने आपसे है। आदमी जिस जिन्दगी को आज भी जी रहा है, वह बेमानी है, ऊब से भरी हुई है। वह केवल मरी हुई जिन्दगी को जीवित रखने का एक रास्ता है। आज की कविताएं जनवादी दौरे से गुजर रही हैं।

3. नयी कविता तथा रघुवीर सहाय :

रघुवीर सहाय की काव्य यात्रा का आरम्भ "दूसरा सप्तक" 1951 के प्रकाशन से लेकर नयी कविता 1954 के प्रकाशन के बीच से होता है। उनकी प्रथम काव्य रचना "आदिम संगीत" शीर्षक से "आजकल" के अगस्त 1947 के अंक में प्रकाशित हुआ था। सन् 1951 में प्रकाशित "दूसरा सप्तक" में अज्ञेय ने रघुवीर सहाय की कविताओं को भी स्थान दिया है। "सप्तक" में प्रकाशित इन कविताओं के कारण अपनी गहन संवेदनाशीलता एवं विशिष्ट भाषिक संरचना के कारण वे हिन्दी साहित्य में विशेष चर्चित हुए। तत्पश्चात रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा में अनवरत एवं बहुमुखी रचना संसार का विस्तार होता है।

4. **रघुवीर सहाय की सृजन यात्रा :**

सन् 1946 से 1951 तक का वह समय था। जब रघुवीर सहाय ने अपनी कलम उठाई। यह समय एक स्वप्न के साकार होने और निराशा से आशा की ओर उन्मुख होने का समय था। इन्होंने अपने लेखन के द्वारा प्राणवन्त चेतना फूँकी, जिसमें कोई सन्देह ही नहीं है। रघुवीर सहाय ने जीवन को जिस यथार्थ की निगाहों से देखा, वैसी ही सहज और अपील करनेवाली अभिव्यक्ति दी है। उनकी कविताएं स्वाभाविक और सरल होती हुई भी पैनी तथा पाठक की संवेदना को झकझोर देने वाली है–

"मूर्ख मूर्ख सब हो गये मेरी ओर
छोड़कर कायरता
लिख दिया गया स्कूलों में सुभाषित
मरता– क्या न करता"---[1]

जिस समय साहित्य के क्षेत्र में रघुवीर सहाय ने प्रवेश किया। उस समय कविता की कोख में प्रयोगवाद, प्रगतिवाद और नयी कविता जैसी प्रवृत्तियाँ करवट ले रहीं थी। लेकिन रघुवीर सहाय ने हर प्रकार से किसी वाद, प्रवृत्ति विशेष, या खेमे के घेरे में नहीं बाँधा। अपने जीवन की शुरूआत उन्होंने प्रत्रकारिता से की। सन् 1951 ई0 में "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल में आकर अपने कार्य को आगे बढ़ाया, जिसे सभी लोग स्वीकार करते हैं।

अज्ञेय जी ने सहाय जी की प्रतिभा को बहुत पहले ही पहचान लिया था। उन्होंने सन् 1952 ई0 में उन्हें "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल के लिए

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल दिल्ली, पृ0 44

आमन्त्रित किया। अज्ञेय द्वारा सम्पादित द्वय मासिक प्रतीक (पावस अंक) में पहली बार उनकी लम्बी कविता "सायंकाल" छपी और श्री सहाय की पहली मुक्त छन्द की कविता —नयावर्ष" जो कि सन् 1948 ई0 में "कान्यकुब्ज कालेज" की पत्रिका में छपी। मई 1953 ई0 में वे आकाशवाणी के समाचार विभाग में उपसंपादक बने। मार्च 1957 ई0 में उन्होंने आकाशवाणी से त्याग पत्र दे दिया। सितम्बर 1957 ई0 तक अपना मुक्त लेखन करते रहे। मुक्त लेखन करते हुए लखनऊ से निकलने वाली पत्रिका "युग चेतना" के दिल्ली प्रतिनिधि रहे। "युग चेतना" के जून—जुलाई अंक में उनकी "हमारी हिन्दी" कविता छपी। इस कविता को लेकर लखनऊ के सरकारी हिन्दी सलाहकारों में हलचल मच गयी। विद्या निवास मिश्र उन दिनों सूचना—विभाग में उप निदेशक थे। उन्होंने पत्रिका की सरकारी खरीद की 400 प्रतियाँ खरीदने से मना कर दिया। शिव सिंह "सरोज" ने "स्वतंत्र—भारत" में इस पत्रिका की प्रतियाँ जलाने की धमकी दी, लेकिन यशपाल ने कवि का समर्थन किया और उसी वर्ष 1957 ई0 में बद्री विशाल पित्ती के निमंत्रण पर अक्टूबर में "कल्पना" के सम्पादक मण्डल के सदस्य होकर रघुवीर सहाय हैदराबाद चले गये।

पुनः 1958 ई0 में कमला देवी चट्टोपाध्याय और कपिला वात्स्यायन ने फरवरी 1958 ई0 में स्थापित एशिया थियेटर इंस्टीट्यूट (नेशनल स्कूल आफ ड्रामा) में रिसर्च आफीसर के रूप में विदेशी नाट्य विशेषज्ञों और देशी छात्रों के साथ काम करने के लिए दिल्ली बुलाया। सन् 1959 ई0 में अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित अंग्रेजी त्रयमासिक पत्रिका "वाक्" में सहायक सम्पादक का काम किया।

सन् 1960 ई0 में इनका पहला कविता—कहानी संग्रह "सीढ़ियों पर धूप में" भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी से प्रकाशित हुआ। श्री सहाय "सुन्दर लाल" के नाम से 1960 से 1963 ई0 तक "दिल्ली की डायरी" नाम से "धर्मयुग" में

एक पाक्षिक स्तम्भ लिखते रहे। उसी समय दूरदर्शन का उद्घाटन होने पर नियमित व्याख्यात्मक वार्ताओं का आरम्भ करने के लिए उन्हें चुना गया। बाद में चलकर अगस्त 1963 ई0 में श्री सहाय आकाशवाणी से अलग हुए और दैनिक "नवभारत टाइम्स" में विशेष संवाददाता बने। 1965 ई0 में भारत–पाक युद्ध के बाद भारत–अधिकृत पाकिस्तानी गाँवों की सहाय जी ने यात्रा की। इसी पृष्ठभूमि को लेकर सीमा के पार का आदमी" शीर्षक कहानी (रास्ता इधर से है) लिखी। सन् 1967 ई0 में इनका कविता संग्रह "आत्म हतया के विरूद्व" प्रकाशित हुआ। (सन् 1968 ई0 में "नवभारत टाइम्स" से स्थानान्तरित होकर मार्च सन् 1968ई0) में "नवभारत टाइम्स" से स्थानान्तरित होकर मार्च 1968 ई0 में समाचार सम्पादक के रूप में "दिनमान" में नियुक्त हुए। उसी समय दूरदर्शन में पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर व्याख्या के साप्ताहिक कार्यक्रम की परिकल्पना दी। जब सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय ने सितम्बर 1969 ई0 में विदेश से लौटकर "दिनमान" से अपना त्यागपत्र दे दिया तब श्री सहाय दिनमान के कार्यकारी सम्पादक बन गये। बाद में 1970 ई0 में वे दिनमान के स्थायी सम्पादक बन गये। सन् 1972 ई0 में श्री सहाय का पहला स्वतन्त्र कहानी संग्रह "रास्ता–इधर से है" प्रकाशित हुआ। सन् 1974 ई0 में रघुवीर सहाय ने "विश्व आर्थिक सम्बन्ध" नामक गोष्ठी में भारतीय पत्रकारों के प्रतिनिधि के रूप में तोक्यों और बैकाक की यात्रा की। 1975 ई0 में उनका कविता संग्रह "हँसो–हँसो जल्दी हँसो" प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् "दिल्ली मेरा परदेश" शीर्षक से 1960 से 1963 के बीच "धर्मयुग" में "दिल्ली की डायरी" के अन्तर्गत उनकी लिखी गयी रचनात्मक टिप्पणियों का प्रकाशन हुआ। सन् 1978 ई0 में उनका निबन्ध संग्रह "लिखने का कारण" प्रकाशित हुआ। सन् 1979 ई0 में श्री सहाय शेक्सपीयर के नाटक "मैकबेथ" का "वरनमवन" शीर्षक से पद्यानुवाद किया और 1980 ई0 शेक्सपीयर के "ट्वेल्थ नाइट" का हिन्दी पद्य में एवं "लोर्का का हाउस आफ

वर्नार्डा एल्वा" का उर्दू गद्य में अनुवाद किया। यही नाटक इसी वर्ष स्टूडियो "वन" द्वारा "अमाल–अल्लाना" के निर्देशन में "विरजीस कदर का कुनबा" के नाम से खेला गया।

श्री सहाय जी 1983 ई0 में "दिनमान" से अलग हुए। दिनमान में लिखे गये सम्पादकीय और लेखों के उनके तीन संकलन छपे– वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे", "सागर .भंवरे और तरंग, ऊबे हुए सुखी"। उनके तीन हंगरी नाटक भी पदर्शित हुए। सन् 1984 ई0 में कविता–संग्रह "लोग भूल गये हैं" प्रकाशित हुआ और उस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्रदान किया गया. उसी समय "जनसत्ता" में "अर्थात" कालम लिखने की शुरूआत भी सहाय जी ने की। सन् 1985 ई0 में पोल्सर उपन्यासकार इवो आंद्रिच के उपन्यास "द्रीनी चुप्रिया" के हिन्दी अनुवाद "द्रीना नदी का पुल" प्रकाशित करने का श्रेय श्री सहाय को है। यथार्थ सम्बन्धी लेखों के संकलन "यथार्थ–यथास्थिति नहीं" का सम्पादन भी सहाय जी ने किया। सन् 1989 ई0 में उनका कविता–संग्रह "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" प्रकाशित हुआ। 30 दिसम्बर 1990 को शाम साढ़े सात बजे ही श्री सहाय का देहान्त हो गया। उनकी कुछ अन्तिम कविताएं राजकमल प्रकाशन से "एक समय था" कविता संग्रह में सन् 1995 ई0 में प्रकाशित हुआ। काव्य के साथ ही साथ गद्य के क्षेत्र में प्रवेश करके एवं नाटक, उपन्यास, कहानी कविता आदि, विविध विधाओं का अनुवाद जीवन और साहित्य में सहाय जी के विविध मुखी और गहरी पैठ को रेखांकित करते हैं।

काव्य संसार

क) सीढ़ियों पर धूप में·

"सीढ़ियों पर धूप में" रघुवीर सहाय का प्रथम कविता–कहानी संग्रह है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1960 ई0 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी"

से हुआ। इस संग्रह में रघुवीर सहाय की "दूसरा सप्तक" की कविताएं "समझौता" और बसन्त को भी संकलित किया गया है। इसके अतिरिक्त मेरा एक जीवन है, पानी के संस्मरण, हमने यह देखा , तोड़ो, धीर-धर गया अगर, माँग रहे हैं जीवन, दुनिया, झेल लेगें, अगर कहीं मैं तोता होता, प्रभु की दया, पढ़िए गीता, थके हैं, हकीम, घड़ी, जो अब कहने को करते हैं, आज फिर शुरू हुआ, धूप, नारी, इतने में किसी ने, आदि कविताएं इस संग्रह में संकलित हैं, जो कि रघुवीर सहाय की स्वाभाविकता एवं जीवन की वास्तविकता को प्रकट करने की उनकी क्षमता पर प्रकाश डालती है। ये कविताएं जीवन के सुख-दुख, एवं सभी समस्याओं, उतार-चढ़ाव, गरीबी-अमीरी, सफलता असफलता, एवं प्रकृति का एक जीवित दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। ये कविताएं एवं इसमें संकलित कहानियाँ बहुत ही मर्मस्पर्शी, संवेदनशील और जीवन के पट को सहजता से स्पर्श करती हैं। सहाय कविता सृजन को व्यावहारिक तथा सकारात्मक सृजनशीलता का प्रतिनिधि मानते थे, जो उनके साहित्य में हर तरह से मुखरित हुई है। रघुवीर सहाय ने इस संग्रह में जीवन के सहज पक्षों को और सुखद अनुभूतियों को बहुत ही स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है।

"सीढ़ियों पर धूप में" की भूमिका में ही "अज्ञेय" जी ने लिखा है कि -

"अपने छायावादी समवयस्कों के बीच "बच्च्न" की भाषा जैसे- एक अलग आस्वाद रखती थीं, उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ़ नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह छोड़, साधारण घरों की सीढ़ियों पर धूप में" बैठकर प्रसन्न हैं। यह स्वस्थ भाव उनकी कविताओं को स्निग्ध मर्मस्पर्शिता दे देता है- जाड़ों के घाम की तरह उसमें तात्क्षणिक गरमाई भी है और एक ऊपर खुलापन भी"----[1]

---

1. "सीढ़ियों पर धूप में" की भूमिका - अज्ञेय का वक्तव्य

"सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की कविताएं रघुवीर सहाय की मानवीय संवेदना एवं जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं–

"सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे– दो चार को छोड़ कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन कर्म, कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाएं
और मेरे उपार्जन, दान व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेगें– ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा तन्त्रीनाद–कवित्त रस में राग में रंग में, मेरा
यह ममत्व"–––[1]

जीवन के घात–प्रतिघात को इस संग्रह की कविताएं प्रस्तुत करती हैं।

अशोक बाजपेयी ने "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की समीक्षा करते हुए लिखा है कि "कविता को कवि के अमित जीने (इम्मेन्स लिविंग) का साक्ष्य होना चाहिए".. क्योंकि कविता यदि जीने के कर्म को, उसकी मानवीयता और गरिमा को शक्तिपूर्वक प्रस्तुत और परिभाषित नहीं करती तो उसका कौन सा कर्तव्य हो सकता है ? यही कारण है कि "वह मानव अस्तित्व के अंतः सलिल हो रहे उप्सों को फिर से प्रकाश में लाये, हम ऊबें और थके और उखड़े हुओं को अपने जीने की क्रिया की गहराई और विशदता पर कविता के माध्यम से बल देकर हममें उस कर्म के लिए नया रस, नया महत्त्व बोध उत्पन्न करें ताकि हम जीवन में अर्थ, उद्देश्य ओर मूल्य की खोज ओर प्रतिष्ठा कर सकें––– रघुवीर सहाय अपनी सीढ़ियों पर धूप में संग्रह की कविताओं में ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं"–––[2]

---

1. सीढ़ियों पर धूप में" प्रकाशन– 1960 रघुवीर सहाय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, कविता– "मेरा एक जीवन है" पृ0सं0 88
2. विवेक के रंग– अशोक वाजपेयी पृ0सं0 127–128

नि:सन्देह साधारण जीवन को घेरे हुए बहुत छोटी–छोटी घटनाओं में रघुवीर सहाय जीवन की खोज करते हैं और जीवन के यथार्थ को इन्हीं घटनाओं में रघुवीर सहाय उभारने की कोशिश करते हैं। वे जीवन को उसकी स्वाभाविकता में पाना चाहते हैं। यह स्वाभाविकता जीवन को सम्पूर्णता में जीने का प्रयास करने वाले व्यक्ति के संवेदनशील मन की स्वाभाविकता है। रघुवीर सहाय "सीढ़ियों पर धूप" में संग्रह की कविताएं एक विशेष सहजता के रूप के साथ लिखने की कोशिश की है जो कि कविता रचने की परम्परित कलात्मकता से अलग हटकर एक खास तरह की "कला" मुक्त कविता लिखने की कोशिश की है। इन सभी कविताओं में उनकी मानवीय संवेदना एवं प्रकृति प्रेम के भावों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जीवन को सहज अनुभूति एवं सच्चे यथार्थ की तलाश, में रघुवीर सहाय अपने इस संग्रह की कविताओं को सृजित किया है–

"आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मैंने एक छोटी सी सरल कविता पढ़ी
आज मैंने सूरज को डूबते हुए देर तक देखा
जी भर आज मैंने शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी, किलक मेरे कन्धे चढ़ी
आज मैंने आदि से अन्त तक, एक पूरा गान किया
आज फिर शुरू हुआ जीवन"–––[1]

जीवन की बिल्कुल स्वाभाविक एवं रचनात्मक स्थितियों के द्वारा यह कविता रची गयी है। जिसके परिणामस्वरूप जीवन में "नया रस" तथा नया महत्त्वबोध उत्पन्न होता है।

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– पृ0 1960 रघुवीर सहाय "आज फिर शुरू हुआ" पृ0–165

पूरी दिनचर्या से कविता में जिन सामान्य स्थितियों का चुनाव किया गया है। उसके प्रति कवि की केवल आत्मीयता ही कविता में महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सबसे महत्वपूर्ण यह है कि यहाँ पर जीवन की सामान्यताओं के बीच जीवन की स्वाभाविक रचनाशीलता की सार्थक पकड़।

डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी यह स्वीकार करते हैं कि "जीवन वैसे फिर प्रकृति में शुरू होता है और रचना का क्षण कैसे जीवन में बार-बार अवतरित होता है। यही इस कविता में मुख्य रूप से अभिव्यक्त किया गया है---[1]

"सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की "बौर" "आओ नहाएं"
जभी पानी बरसता है "रूमाल" तथा पानी शीर्षक कविताएं
रघुवीर सहाय की सहजता एवं प्रकृति प्रेम को ही प्रकट करती है-

> "कितने सही हैं ये गुलाब
> कुछ कसे हुए और कुछ झरने -झरने को
> और हल्की सी हवा में और भी, जोखम से
> निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[2]

जीवन एवं प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रघुवीर सहाय की इस संग्रह की कविताओं में प्राप्त होता है। प्राकृतिक अवयवों से रघुवीर सहाय भी अपनी कविता को सृजित किया है, जिसमें जीवन और जगत के यथार्थ की सफल झाँकी प्राप्त होती है। इस संग्रह की कविताओं में जीवन की स्वाभाविक स्थितियों का चित्रण ही नहीं, अपितु उन स्थितियों से अपने आत्मीय रिश्तों की तलाश को परिभाषित करने का श्री सहाय ने पूरा प्रयास किया है।

---

1 कविता यात्रा. रत्नाकर से रघुवीर सहाय- पृ0सं0 78

3. सीढ़ियों पर धूप में - पृ0 1960 रघुवीर सहाय "धूप" पृ0सं0 168

इस संग्रह की "बौर" कविता के अन्तर्गत "नीम के बौर की सहज गन्ध में कवि एक और सुख का परिचय पाता है–

"नीम में बौर आया
इसकी एक सहज गन्ध होती है
मन को खोल देती है गंध वह
जब मतिमन्द होती है
प्राणों ने एक और सुख का परिचय पाया"---[1]

अपनी "रूमाल" कविता में कवि को अपने छूटे हुए उस साधारण रूमाल की याद आती है जिससे उसने "अपना जूता" नाक, पसीना और कलम की निब पोंछी थी--- * जिसके कारण वह उससे बहुत जुड़ा हुआ था; "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह में संकलित रघुवीर सहाय की इन कविताओं की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि चाहे तो कोई "पानी", "नीम" तथा रूमाल को प्रतीक के रूप में ग्रहण कर सकता है। लेकिन कविता में इसकी बिल्कुल अपेक्षा नहीं है, बल्कि प्रतीक हुए बगैर कविता नये सन्दर्भो में बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। कदम-कदम पर प्रतीक अन्वेषकों की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे चीजों को महज चीजों की तरह ले ही नहीं सकते। "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की कविताएं केवल प्रतीक रूप में नहीं, अपितु जीवन की वास्तविकताओं को सामने प्रस्तुत करती हैं।

अपने पाठकों को स्वयं सम्बोधित करते हुए रघुवीर सहाय ने एक कविता में यह बयान दिया कि -"ये मेरे बच्चे हैं, कोई प्रतीक नहीं। इस कविता में। मैं हूँ मैं। कोई रूपक नहीं---।"[2]

---

1. "सीढ़ियों पर धूप में" पृ0 1960 रघुवीर सहाय "बौर" पृ0सं0 104
2. आत्महत्या के विरुद्धः प्र0 1967 रघुवीर सहाय, पृ0-80

स्भाविकता की खोज में जीवन की साधारण स्थितियों के बीच कविता संभव करने में सर्जन प्रक्रिया के दौरान रघुवीर सहाय की सहज आत्म स्वीकार की प्रवृत्ति तथा अपनी सीमा के यथार्थ की पहचान के महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है–

"यही मैं हूँ
और जब भी मैं यही होता हूँ
थका या उन्हीं के से वस्त्र पहने, जो मुझे प्रिय है
दु:खी मन में उतर आती है पिता की छवि
अभी तक जिन्हें कष्टों से नहीं निष्कृति
उन्हीं अपने पिता की मैं अनुकृति है
यही मैं हूँ।---[1]

निश्चय ही "यही मैं हूँ के बोध का प्रभाव रघुवीर सहाय की अधिकांश कविताओं में है। लेकिन इसके साथ ही साथ यह कविता उनके काव्य की एक और महत्वपूर्ण प्रवृत्ति– मानवीय करूणा को भी दृष्टिगत करती है। "यह करूणा सिर्फ असन्तुष्ट खड़े व्यक्ति की करूणा नहीं है, बल्कि सामाजिक जीवन से जुड़े मुश्किल में फँसे उस व्यक्ति की करूणा है, जिसमें समाज को बदलने की इच्छा और कोशिश भी है। यही कारण है कि इस करूणा में "मर्मस्पर्शी दर्द और शक्ति अर्जित करने की आकांक्षा अधिक हैं"---[2]

इसी करूणा द्वारा शक्ति प्राप्त करने की बात बाद में अशोक बाजपेयी और मंगलेश डबराल ने भी उठाई है और रघुवीर सहाय ने उसे स्वीकार किया है। रघुवीर सहाय से एक भेंटवार्ता में प्रश्न करते हुए कहा गया है कि "सीढ़ियों पर धूप में

---

1. सीढ़ियों पर धूप में प्र0 1960 रघुवीर सहाय, यही मैं हूँ" पृ0सं0 85

2 आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ– नामवर सिंह पृ0– 145

एक करूणा थी, पर एक मानवीय शक्ति और सुन्दरता से होकर थी।" ---[1]

सीढ़ियों पर धूप में" रांग्रह की कविताओं में जो करूणा है, उसका स्वरूप रचनात्मक है, जीवन संघर्ष में ताकत हासिल करनेसे जुड़ा हुआ है। शक्ति दो, कविता में रघुवीर सहाय लिखते हैं:

"शक्ति दो, बल दो, हे पिता
जब दु:ख के भार से मन थकने को आय
और यह नहीं दो तो यही कहो
अपने पुत्रों और छोटे भाइयों के लिए यही कहो-
कैसे तुमने किया होगा अपनी पीढ़ी में क्या उपाय
केसे सहा होगा, पिता कैसे तुम बचे होंगे
तुमसे मिला है जो विक्षत जीवन का हमें दाय
उसे क्या करें
तुमने जो दी है अनाहत जिजीविषा
उसे क्या करें-? ---[2]

यातना की भयानक स्थितियों के बीच यह जो अनाहत जिजीविषा है वह करूणा में सुन्दरता उत्पन्न कती है और समय तथा स्थान के अनुसार उनके इस संग्रह की कविताएं प्रासंगिक भाव उत्पन्न करती हैं।

"इतने में किसी ने" कविता में रघुवीर सहाय लिखते हैं-

"नवयुग आजादी का, नवयुग की आजादी।
इतने में किसी ने टोककर जैसे डपट दिया
"देख, सुन, समझ, अरे घर घुस जनवादी"
चौंक देखा कोई नहीं, सुना केवल ढप् ढप्

---

1. लिखने का कारण-प्र0 1978 रघुवीर सहाय पृ0 153-154
2 सीढ़ियों पर धूप में - प्र0 1960 रघुवीर सहाय "शक्ति दो" पृ0सं0 86

आँगन में गेहूँ का कुड़ा फटका रही
सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी---[1]

बदलते युग परिवेश में होने वाले नैतिक पतन का इस संग्रह की कविताएं स्पष्ट भाव मुखरित करती हैं। रघुवीर सहाय स्वयं एक नियमित एवं कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति होने के कारण सदैव समय के महत्त्व को समझते रहे है, और समय के सदुपयोग के प्रति अपनी सदैव आवाज उठाते रहे हैं। उनके मतानुसार ऐसा करने वाला व्यक्ति ही सचमुच अपने जीवन में सफल हो सकता है। अपनी "घड़ी" कविता में वे प्रश्न करते हुए कहते हैं कि-

"समय की गति क्या तुम्हारे हाथ में हैं, ऐ घड़ी
हमें रहती है हमेशा एक तरह की हड़बड़ी
वह तुम्हारी ही वजह से क्या
कि हमही आलसी हैं ?---[2]

श्री सहाय व्यर्थ की रूढ़ियां एवं आडम्बरों को समाप्त करने पर बल दिये हैं। एक नयी सामाजिक चेतना को उभारने का प्रयास रघुवीर सहाय के इस संग्रह की कविताओं में प्राप्त होता है। जो कि जीवन की वास्तविकताओं को सामने लाती हैं "तोड़ो" कविता में कवि लिखता है-

"तोड़ों- तोड़ो तोड़ो
ये ऊसर बन्जर तोड़ो
ये चरती परती तोड़ो
सब खेत बनाकर छोड़ो

---

1 सीढ़ियों पर धूप में- प्र0 1960, रघुवीर सहाय- "इतने में किसी ने" पृ0सं0 174

2 वही " " "घड़ी" प्र0सं0 157

मिट्टी में रस होगा ही जब वह पोसेगी बीज को
हम इसको क्या कर डाले इस अपने मन की खीज को
गोड़ो–गोड़ो–गोड़ो---[1]

सामाजिक अव्यवस्था के खिलाफ अपनी आवाज उठाकर रघुवीर सहाय शोषण एवं उत्पीड़न के शिकार लोगों को अपनी व्यवस्था के अनुसार उस अव्यवस्था को समाप्त कर देने के लिए तैयार करते हैं।

प्रकृति के चित्रण में कवि जीवन के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास किया है– जैसे–

"कौंध। दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर: घना ताल: ऊपर झुकी आम की डाल
बयार: खिड़की पर खड़े आ गयी फुहार
रात: उजली रेती के पार, सहसा दिखी
शान्त नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।---[2]

इस पानी के संस्मरण के द्वारा कवि जीवन के संस्मरण को प्रकट करता है। जिसमें कि तरह–तरह के उतार–चढ़ावों का समावेश है। अपनी अधिकांश प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में रघुवीर सहाय ने अपने प्रेम के अनुभव को भी अभिव्यक्त किया है। पूँजीवादी व्यवस्था एवं शोषण की व्यवस्था में सहाय नारी (जिससे वे प्यार करते हैं) का, विषम जीवन स्थितियों के बीच विडम्बनाओं का शिकार हो जाना नियति है। "पढ़िये गीता" कविता में जिस तरह इस नियति को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है– वह व्यंग्य अपने प्रभाव में करूणा की सृष्टि करता है –

---

1 सीढ़ियों पर धूप मे" प्र0 1960 रघुवीर सहाय- "तोड़ो" पृ0सं0 112

2 वहीं " पानी के संस्मरण पृ0सं0–101

"पढ़िये गीता

बनिये सीता
फिर इन सब में लगा पलीता
किसी मूर्ख की हो परिणीता
निज घर बार बसाइये"---[1]

निम्न मध्यवर्गीय नारी की पूरी जीवन गाथा एवं उसकी शोषित उपेक्षित स्थिति को इस संग्रह की कई कविताओं में अभिव्यक्त किया गया है–

"नारी विचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है
लपककर झपककर
अन्त में चित है---[2]

"सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की कविताएं आगे के संग्रहों के लिए एक मार्ग तैयार करती हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है– कि "यह कविता संवेदनात्मक स्तर पर मानों अगले संकलन "आत्महत्या के विरूद्व" की भूमिका के तौर पर काम करती है"---[3]

---

1. सीढ़ियों पर धूप में"– प्र0 1960 पढ़िए गीता" पृ0सं0 148
2. वही " "नारी" पृ0सं0 172
3 कविता यात्रा रत्नाकर से रघुवीर सहाय – पृ0सं0 82

ख) **"आत्म हत्या के विरूद्ध"** :

रघुवीर सहाय का काव्य संग्रह आत्म हत्या के विरूद्ध का प्रकाशन सन् 1967 ई0 में हुआ। सन् 1976 ई0 में इस संग्रह का दूसरा और सन् 1985 ई0 में इस संग्रह का तीसरा या संस्करण राजकमल प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित हुआ। रघुवीर सहाय का यह सर्वाधिक चर्चित कविता संग्रह कवि के अपने व्यक्तित्व की खोज की एक बीहड़ यात्रा है। मनुष्य से नंगे बदन संस्पर्श करने के लिए "सोढ़ियों पर धूप में कवि ने अपने को लैस किया था, बाद में कवि का वही साक्षात्कार "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताओं में एक चुनौती बनकर उभरा है। रघुवीर सहाय बनी बनाई वास्तविकता और पिटी–पिटाई दृष्टि हमेशा विरोधी रहे हैं। अपने को किसी भी कीमत पर सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की लगातार कोशिश के साथ रघुवीर सहाय ने पिछले दौर से निकलकर "आत्म हत्या के विरूद्ध" में एक व्यापकतर संसार में प्रवेश करने की कोशिश की है। इस संसार में भीड़ का जंगल है, जिसमें कवि एक साथ अपने को खो देना और पा लेना चाहता है। कवि इस संसार में नाचता नहीं, चीखता नहीं, और सिर्फ बयान भी नहीं करता है। वह इस जंगल में भली–भाँति फँसा हुआ है, लेकिन उसमें से निकलना किन्हीं भी सामाजिक–राजनीतिक शर्तो पर उसे बिल्कुल मान्य नहीं है।

> "बहुत दिन हुए तब मैंने कहा था लिखूँगा नहीं
> किसी के आदेश से
> आज भी कहता हूँ
> किन्तु आज पहले से कुछ और अधिक बार
> बिना कहे रहता हूँ
> क्योंकि आज भाषा ही मेरी एक मुश्किल नहीं रही।"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय प्र0 1970– कविता: स्याधीन व्यक्ति पृ0सं0 15

भारत भूषण अग्रवाल– ने यह विश्लेषित किया है कि– "भीड़ से घिरा एक व्यक्ति– जो भीड़ बनने से इन्कार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है– रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व है–––[1]

रघुवीर सहाय का रचना संसार जितना निजी है, उतना ही हम सबका है– एक गहरे काव्य और अराजनैतिक अर्थ में पूर्णतया जनवादी है।

रघुवीर सहाय की कविता में हत्या और इसके समानार्थक शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। यह शब्द इतनी बार प्रयुक्त हुआ है कि आत्म हत्या के विरूद्व का कवि वास्तव में ही हत्या के विरूद्व है। यह सर्वविदित है कि आज की परिस्थितियाँ बहुत ही भयावह है। ऐसी परिस्थितियों के बीच में मामूली आदमी और ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मारा जा रहा है, और आश्चर्य की बात यह है कि उस मामूली आदमी को यह नहीं मालूम है कि उसकी हत्या होगी। समाज के सभी उपस्थित लोग बिल्कुल मौन हैं– खामोश हैं हत्यारा एक निश्चित समय पर आता है और तौलकर चाकू मारता है, पुनः सभी लोगों को धक्का देते हुए वह हत्या करके निकल जाता है। सब अबाक खड़े रहते हैं।

> "रोज–रोज थोड़ा–थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड
> तिल–तिल खिसकता है शहर की तरफ
> फरमाइशी संभोग में सुनो एक उखड़ी साँस की
> साँय–साँय इस महान देश में क्या करें, कहाँ जाँय।
> घबराते लड़के गदराती औरत लेकर–––[2]

रघुवीर सहाय के काव्य संग्रह "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविता में "हत्या" शब्द एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हत्या केवल उसी की नहीं होती है,

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व की भूमिका– रघुवीर सहाय प्र0 1967– कविताः स्वाधीन व्यक्ति, पृ0सं0 15
2. आत्म हत्या के विरूद्व––– रघुवीर सहाय– कविता "भीड़ में मैं" पृ0सं0 22

जो चाकू या छूरे से मा़ा जाता है बल्कि उसकी भी हत्या होती है जो ट्रक से दबकर या बिना दवा के और बिना सिफारिश के मर जाता है। ऐसे मरने वालों की संख्या बहुत ज्यादा है जो रोज–रोज थोड़ा–थोड़ा मर रहे हैं। जब आदमी की लालसा मरती है, उसकी स्वाधीनता छीनी जाती है, उसका सत्य कुचला जाता है, उसकी आवाज को प्रतिबन्धित किया जाता है तो वह आदमी ऊपर से जिन्दा रहते हुए भी भीतर से बिल्कुल मर जाता है। उसकी एक प्रकार से हत्या ही हो जाती है। रघुवीर सहाय के इस कविता व संग्रह में कदम–कदम पर रोज थोड़ा थोड़ा मरते इस आदमी की पीड़ा महसूस की जा सकती है।

"बीस बरस बीत गये, लालसा मनुष्य की तिल–तिल कर मिट गयी
अब नहीं हो सकता कोई लेखक महान
पहले तो बाम्हन होंगे फिर ठाकुर होंगे
फिर बारी आयेगी चमारों की
तब तक चमार कायस्थ न बन गये होंगे"[1]

रघुवीर सहाय की "रामदास" कविता आज की उस क्रूर अमानवीय स्थिति को नंगे चित्र की तरह सामने रख देती है जिसमें कि हत्या जैसी असाधारण और भयानक घटना भी एक सहज कर्म हो गयी है। "आत्म हत्या के विरूद्व" कविता की पंक्तियाँ मन्द गति से आगे बढ़ती है, जैसे कोई कथा कही जा रही हो। कहीं कोई उत्तेजना, कोई आक्रोश या कोई रूदन नहीं है। कहीं कोई–भय या दहशत पैदा करने वाला शब्द नहीं है। इस कविता की हर पाँचवी पंक्ति में "बार–बार हत्या होगी शब्द की आवृत्ति एक भीषण से भीषण दुर्घटना को एक सामान्य दिनचर्या में परिणत कर देती है। हत्या चाहे रामदास की हो या खुशीराम की। पक्ष–विपक्ष बिल्कुल स्पष्ट है–

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व ––– कविता– "एक अधेड़ भारतीय आत्मा" पृ0सं0 78

"मारो–मारो–मारो–शोर था मारो
एक ओर साहब था
एक ओर मैं था
मेरा पुत्र और भाई था
मेरे पास आकर खड़ा हुआ एक राही था"----[1]

इस होने वाली हत्या की कोई फरियाद नहीं है। क्योकि सचमुच जो मनुष्य मरा, उसके पास–भाषा न थी। ऐसी स्थिति में जब उसका प्रतिनिधि उसकी हत्या की करूण कथा सुनाने का प्रयास करता है– तो–

"हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिंचियाकर
कहती है
अशिव है– अशोभन है, मिथ्या है।"----[2]

रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताओं में "लालसा" और "स्वाधीनता" जैसे महत्वपूर्ण शब्दों का भी सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। आदमी को लालसा और उसकी स्वाधीनता एक भारी चट्टान के नीचे दबी छटपटा रही है। ज्यों ही वह अपने बचपन की आजादी छीनकर लाने का संकल्प करता है, उसी समय तुरन्त ही उसका कत्ल कर दिया जाता है। इस आतंक की भयावहता का चित्र रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में खींचा है।

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, सं0 1967 कविता– मेरा प्रतिनिधि पृ0सं0 18–19
2. वही " " पृ0सं0–18

"आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह की कविताओं में रघुवीर सहाय ने घुटन और यातना की सजीव झाँकी प्रस्तुत करने की कोशिश की है। घुटन और यातना की यह स्थितियाँ समाज में शोषक वर्ग के द्वारा उत्पन्न की गयी है। सत्ता और समाज में परिवर्तन के साथ इस घुटन और यातना के साथ ही सामूहिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। रघुवीर सहाय ने इस मुक्ति के लिए अपनी कविताओं में जबरदस्त आवाज उठाई है। रघुवीर सहाय की कोशिश रचना में यथार्थ को सिर्फ प्रस्तुत कर देने भर से ही नहीं है, बल्कि उनकी ज्यादा कोशिश इस बात की रही है कि यथार्थ का जो रूप कवि का काव्यानुभव बना है, उसे पाठक की संवेदना के स्तर पर सम्पूर्णता के साथ उतार दें। "आत्म हत्या के विरूद्व" की पहली ही कविता में "नेता क्षमा करें" में रघुवीर सहाय उस जनता के साथअपने यथार्थ रिश्ते भी स्थिति तथा एक कवि की हैसियत से उसे सर्जनात्मक बनाने के अपने प्रयास को स्पष्ट करते हुए देश के नेताओं और लोगों की उन परम्परित झूठी और सर्जनात्मक अपेक्षाओं को पूरा न कर पाने के लिए क्षमा याचना करते हैं :-

"मैंने कोशिश की थी कि कुछ कहूँ उनसे
लेकिन जब कहा तुमको प्यार करता हूँ
मेरे शब्द एक लहरियाता दोगाना बन
उकडूँ बैठे लोगों पर भिन-भिनाने लगे।"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह की कविताएं सच्चे अर्थो में रोजमर्रा की जानी-पहचानी दुनिया के हमारे अनुभव को कुछ अधिक गहरा और सार्थक बनाती है। रघुवीर सहाय स्वयं अपने वक्तव्य में कहा है कि- "साहित्येतर हथियारों से। सबसे मुश्किल और एक ही सही रास्ता है कि मैं सब सेनाओं में लडूँ- किसी

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय प्र0 1967- "नेता क्षमा करें" पृ0सं0 32

में ढाल सहित, किसी में निष्कवच होकर– मगर अपने को अन्त में मरने सिर्फ अपने मोर्चे पर दूँ– अपने भाषा के, शिल्प के ओर उस दोतरफा जिम्मेदारी के मोर्चे पर जिसे साहित्य कहते हैं।[1]

"आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओं में सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों, कार्यो, परिणतियों, दृष्टिकोणों विचारों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आधार बनाकर उनके भीतर से व्यक्ति, समुदाय और देश की संभवतः पूरे युग की आत्मा हो पहचानने का प्रयास है।

रघुवीर सहाय ने "आत्म हत्या के विरूद्व" काव्य संग्रह में आम जनता की उन यंत्रणाओं को परिभाषित करने की कोशिश की हे, जो इस भ्रष्ट बुर्जुआ लोकतंत्र की विसंगतियों का शिकार है। इस संग्रह की सभी कविताएं केवल राजनैतिक ही नहीं हैं, बल्कि कुछ वैयक्तिक कविताएं भी हैं, जिसकी सतह का सम्बन्ध "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की कविताओं से है। रघुवीर सहाय के "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओं में "खड़ी स्त्री" "चढ़ती स्त्री" "एक लड़की" तथा "अभी तक खड़ी स्त्री" आदि छोटी–छोटी कविताओं में स्त्रियों के शोषित जीवन की विडम्बना की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गयी है –

"ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तों के बीच
खड़ी हैं वह
ओंठ नम
और भरा–भरा सा चेहरा लिये
बदली की रोशनी सी नीचे को देखती"----[2]

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ0सं0 –8
2. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय प्र0 1967 "अभी तक खड़ी स्त्री" पृ0सं0 55

कवि के लिए चिन्ता का विषय यह है कि वर्तमान सामाजिक स्थितियों के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओं से घिरी हुई है लेकिन उसके लिए सबसे ज्यादा चिन्ता करने की बात यह है कि वह स्त्री अभी तक अपनी व्यथा को स्वयं नहीं जान पायी। यदि वह अपनी व्यथा को जान लेती तो उसके कारणों को खोजने का प्रयास भी करती। रघुवीर सहाय का अपनी इस कविता-संग्रह में आग्रह यह है कि शोषण का शिकार पहले अपनी स्थिति की पहचान करें, फिर अपनी मुक्ति के लिए शोषक वर्ग के विरूद्व खड़ा हो, क्योकि यह निश्चित है कि शोषक वर्ग के विरूद्व निर्णायक लड़ाई अन्ततः शोषित वर्ग स्वयं ही लड़ता है। रघुवीर सहाय "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओं में वर्तमान समाज में स्त्री की नियति तथा उसकी गुलाम स्थिति को लेकर बहुत ही क्षुब्ध थे। लेकिन अपनी कविताओं के विरूद्व एक संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। अपने "आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह में "फूल और शूल" सनीचर और "हमारी हिन्दी" जैसी व्यंग्यधर्मी कविताओं के माध्यम से नकली दस्तावेज का पर्दाफाश किया है। रघुवीर सहाय को देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा किया जाने वाला अन्याय, बिल्कुल स्वीकार नहीं है। यही बात उनकी कविताओं का बार-बार काव्य विषय बनता है। आज के युग में आम जनता के सन्दर्भ में लिये गये निर्णयों मेंउसकी कहीं उसमें भागीदारी नहीं है शोषक वर्ग के हितों की हिफाजल करने वाले, शासन का अत्याचार झेलते हुए आम जनता बार-बार आत्म हत्या की स्थितियाँ झेलती है। लेकिन इस "सफरिंग" के साथ ही इस संग्रह की तमाम कविताओं में आत्म हत्या की इन स्थितियों के विरोध में खड़े होने की एक निरन्तर छटपटाहट भी प्राप्त होती है। यही वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ रघुवीर सहाय का यथार्थ चित्रण एक महत्वपूर्ण सर्जनात्मक प्रक्रिया से अपना सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।

संवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय के इस संग्रह की कविताएं यथार्थ का बिल्कुल नग्न चित्रण प्रस्तुत करती है। उनकी कविताएं विसंगत यथार्थ को बदलने के

प्रयासों से जुड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। यही कारण है कि इस संग्रह की कविताएं शोषित वर्ग की आन्तरिक पीड़ा और घुटन के साथ ही उसके अन्दर जीवन की इच्छा की भी प्रेरणा प्रदान करती है। संग्रह की लम्बी कविताओं में घुटन के आत्यान्तिक प्रसंगों के बीच "छुओ मेरे बच्चे का मुँह" तथा "चिट्ठी लिखते हुए छुटकी ने पूछा" जैसे जीवन से जुड़े हुए रचनात्मक प्रसंग भी हैं जो कविता में तनाव से मुक्ति के लिए रखे गये हैं–

"छुओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नहीं जैसा विज्ञापन में छपा
ओंठ नहीं
मुँह
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नहीं– बोला मेरा भाई मुझे पाँव तले
रौंदकर, अंग्रेजी---[1]

रघुवीर सहाय के "आत्म हत्या के विरूद्ध" संग्रह की कविताएं मामूली अभावग्रस्तता और उपेक्षित जिन्दगी का सफल चित्रण प्रस्तुत करती हैं। भीख का अन्न खाती हुई दूध मुही बच्ची, पैदल सड़क पार करता हुआ काला–काला नंगा बच्चा, सहमी–डरी लड़की, रिक्शा खींचता मजदूर, अपने दर्द के साथ अकेली औरत, खाँसता हुआ फल वाला, सड़क पार करता हुआ पतला दुबला बोंदा आदमी, लंगड़ा बूढ़ा, लाठी टेक भीख माँगता हुआ बुड्ढा आदि की उपेक्षित जिन्दगी की सफल झाँकी प्राप्त होती है। भटकता मंत्री, पिटे हुए नेता, पिटे अनुचर, हाँफते डकारते, पिटा हुआ दलपति, मक्कार मंत्री, ठस कार्यकर्ता, डकारता कवि आदि सभी से साक्षात्कार आत्म हत्या के विरूद्ध की कविताओं में

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय प्र0 1967 "आत्म हत्या के विरूद्ध" पृ0सं0 86

होता है। जनता विधायक, सचिव, पुलिस, डाकटर, मुख्यमंत्री, चित्रगुप्त सभा, जिलाधीश, पत्रकार, गृहमंत्री संसद आदि सभी का सबूत प्रापत होता है।

"पुलकित उपराष्ट्र कवि
जन गंगातट पर बैठे
घिसते थे चन्दन
किसको तिलाकित करे
आज नहीं जानते
वैसे लोहिया के यहाँ आने जाने लगे हैं"---[1]

अपनी आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताओं में सहाय ने समाजवादी ढोंग, भाई भतीजावाद, सुविधा की राजनीति, संसदीय प्रणाली का मखौल, बुद्विजीवियों का निरर्थक विद्रोह, हंसोड़ों तथा मसखरों की चापलूसी और हें हें करती हुई भीड़ सब कुछ जैसे एक निसंसग अन्दाज में व्यक्त करने की कोशिश की है। रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताओं में किसी राजनीतिक मतवाद की गन्ध नहीं प्राप्त होती है। वे न तो किसी दल का समर्थन करती है और न तो किसी वाद का प्रचार ही करती है।

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 75

ग) हँसो-हँसों-जल्दी हँसों :

हँसो हँसो जल्दी हँसों" रघुवीर सहाय का तीसरा काव्य संग्रह है। जिसका प्रकाशन 1975 ई0 में हुआ। इस संग्रह की कविताएं भी "आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह की कविताओं की तरह छोटी है, लेकिन उनमें अपना एक अलग ही भाव छिपा है। इस संग्रह में लगभग साठ छोटी-छोटी कविताओं को संकति किया गया है। इन कविताओं में नैतिकता के क्षरण और गहराते राजनीतिक सांस्कृतिक संकट का क्षुब्ध परिवेश बहुत आसानी से देखा जा सकता है।

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" काव्य संग्रह की साठोत्तरी दौर की कविताएं समाज में उपस्थित मनुष्य विरोधी यथार्थ को पूर्णरूप से उभारने में सहायक सिद्व होती हैं। "आत्म हत्या के विरूद्व" की कविताओं में यह प्रकट करने की कोशिश की गयी है कि सामाजिक अव्यवस्था एवं विसंगतियों के विरूद्व एक व्यक्ति खड़ा होता है, लेकिन सामाजिक सहयोग के अभाव में थोड़ी देर के लिए वह अकेला पड़ जाता है, लेकिन "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओं में बुर्जुआ लोकतंत्र के भीतर आंतक और दहशत के बल पर टिकी हुई व्यवस्था में एक स्वाधीन मनुष्य के रूप में जीने की स्थितियों को खत्म होते चले जाने का अकेलापन है। इस अकेलेपन की जड़ में जो दहशत और आतंक हैं, वह "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओं में अनेक बार व्यक्त हुआ है-

"हत्यारे पालम से आकर उतरे हैं
पालम पर
बच्चे उनसे काफी दूर बैठे हैं
पालम पर"---[1]

---

1. हँसो हँसों जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 "फूल माला हाथों में" पृ0सं0 -70

लेकिन इन भयावह और डरावनी परिस्थितियों के बीच रहकर भी रघुवीर सहाय जरा सा भी भयभीत नहीं होते हैं। वे इन परिस्थितियों से दूर हटकर कहीं छिपना भी नहीं चाहते हैं, बल्कि वे ऐसा प्रयास करते हैं कि ये विनाशकारी परिस्थितियाँ समूल नष्ट हो जायं। अपनी कविता को माध्यम बनाकर वे इन परिस्थितियों के बीच उतरते हैं:

"इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता
कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं माँगती
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो"---[1]

आपातकाल लागू होने के ठीक पहले ही आने वाले सभी खतरों का रघुवीर सहाय ने अनुभव किया था, जिसके कारण "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" की कविताओं में आतंक भरे समाज और उनके दमन के जो तरीके हैं उनका सफल चित्रण प्राप्त होता है। समाज में शोषक वर्ग के द्वारा शोषितों के ऊपर होने वाले अत्याचार एवं उनके अधिकारों का हनन इस संग्रह की कविताओं में सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है। शोषक वर्ग भारतीय जनता के समस्त अधिकारों को छीन लेने के प्रयास में है। एक तरफ तो यह शोषक वर्ग भोग की संस्कृति में पहले से भी अधिक लिप्त हो जाने वाला है, और दूसरी तरफ स्थिति ऐसी उत्पन्न हो रही है कि भारतीय जनता को खुद से जुड़ी हुई किसी भी चीज के बारे में मात्र निवेदन करने के अतिरिक्त कुछ भी कहने का अधिकार नहीं बचने वाला है।

---

1 "हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आने वाला खतरा" पृ0सं0 10

"मैं सब जानता हूँ पर बोलता नहीं
मेरा डर मेरा सच एक आश्चर्य है
पुलिस के दिमाग में वह रहस्य रहने दो
वे मेरे शब्दों की ताक में बैठे हैं
जहाँ सुना नहीं उनका गलत अर्थ लिया और मुझे मारा"---[1]

इन भयावह परिस्थितियों के बीच भी विडम्बना तो यह है कि सत्ताधारी वर्ग के जिन लोगों ने लोकतंत्र के लिए यह खतरा उत्पन्न किया है, वहीं लोग संकट को प्रकट करने वाले संचार तथा अन्य माध्यमों द्वारा इस बात की भी पुनरावृत्ति करते हुए बिल्कुल नहीं थकते हैं कि लोकतंत्र तथा देश पर खतरा उत्पन्न हो गया है। आपात काल के दौरान भी यहीं स्थिति उत्पन्न हुई। आपातकाल के दौरान अपने मौलिक अधिकारों से वंचित जनता न तो विरोध में कोई वक्तव्य दे सकती थी न सभा कर सकती थी। अखबारों पर भी सेंसर लागू कर दिया गया था। दूसरी न्यूज एजेंसियों को समाप्त करके सरकारी न्यूज एजेंसी "समाचार" लागू कर दिया गया था ताकि उस पर सीधा नियंत्रण रहे-

"तबसे मैंने समझ लिया है आकाशवाणी में बन ठन
बैठें हैं जो खबरों वाले वे सब हैं जन के दुश्मन
उनको शक था दिखला देते अगर कहीं छत्तिस इंसान
साधारण जन अपने-अपने लड़के को लेता पहचान
ऐसी दुर्भावना लिये हैं जन के प्रति जो टेलीविजन,
नाम दूरदर्शन है उसका काम किन्तु दुर्दशन"---[2]

---

1. हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय प्र0 1975 "दो अर्थ का भय" पृ0सं0 4
2. वहीं " " "टेलीविजन" पृ0सं0 47

रघुवीर सहाय देश में आने वाली भयावह से भयावह और आतंककारी स्थितियों के बीच भी किसी निराशा में नहीं फँसते हैं, और वे इस लज्जित एवं पराजित दौर में किसी भी कीमत पर अपने को बेचने के लिए तैयार नहीं है। वे ऐसी स्थिति में भी खुशामदी और चाटुकार लोगों से अलग स्वाधीन और निर्भय व्यक्ति की तलाश करते हैं। साथ ही वे ऐसे अभावग्रस्त लोगों की खोज भी करते हैं जो इस मानसिकता को पीछे छाड़ आये हैं कि वे निर्धन अपनी वास्तविक स्थितियों के कारणों को जानते हुए मुक्ति के लिए प्रयास करने वाले हैं, ऐसे निर्धनों की रघुवीर सहाय तलाश करते हैं---

"धरती के अन्दर का पानी
हमकों बाहर लाने दो
अपनी धरती अपना पानी
अपनी रोटी खाने दो"---[1]

रघुवीर सहाय की सिर्फ यही कोशिश नहीं थी कि किसी यथार्थ को केवल अभिव्यक्त भर कर दिया जाय, बल्कि उनकी कोशिश इस बात की रही कि संवेदना के स्तर पर उस यथार्थ को बहुत ही तीव्रता से महसूस भी कराया जाय। "हँसो-हँसों जल्दी हँसो" संग्रह की कविताएं सामाजिक अव्यवस्था में स्त्रियाँ और बच्चे जिस आत्यंतिक शोषण, पाशविकता और परवशता के शिकार है, उसकी सफल झाँकी प्रस्तुत करती हैं। आपातकाल लागू होने के पूर्व ही आने वाले सभी खतरों को अनुभव करके रघुवीर सहाय ने पहले ही इंगित किया था -

---

1. हँसो हँसो-जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय प्र0 1975 "टेलीविजन" पृ0सं0 6

"एक दिन इसी तरह आयेगा –रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी -रमेश
क्रोध होगा पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय –रमेश
खतरा होगा खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा –रमेश"---[1]

यह विशेष रूप से रेखांकित करने की चीज है कि मुक्तिबोध की कविता में जिस प्रकार एक अबोध शिशु आता है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविता में "एक लड़का" "एक लड़की" और "एक स्त्री" आती है। रघुवीर सहाय के प्रस्तुत संग्रह की कविता में जो लड़का आता है, वह तो मात्र एक सामान्य लड़का ही दिखाई देता है, लेकिन कवि की दृष्टि में वह आने वाले भविष्य का और नयी पीढ़ी का प्रतीक है। उसके मरने में कवि को भविष्य का मरना दिखाई देता है, और उसकी उपेक्षा में एक पूरी पीढ़ी की उपेक्षा; जैसे कि एक चिनगारी असमय ही बुझ रही हो–

"एक दिन मेरे अपने जीवन में ही खत्म होने वाला
है यह खेल
इस घर की दीवार पर मेरी तस्वीर होगी
बच्चे आयेंगे पर मेरी कल्पना में नहीं अपने
समय से आयेंगे
और उनकी बोली में उनका तर्क नहीं होगा
जिसको आज सुनता हूँ"---[2]

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आने वाला खतरा" पृ0सं0 10
2. वही " " "जीने का खेल" पृ0सं0 2

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि रघुवीर सहाय की "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओं में जो "स्त्री" और "लड़की" आती है वह छायावादी कविताओं की नारी से बिल्कुल भिन्न है। छायावादी काव्य की नारी अलौकिक रूप सम्पन्न थी। उसमें उल्लास और प्रेम था। उसमें आशा थी, लेकिन "हँसो हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताओं में जो "स्त्री" आती है वह बहुत ही बदनसीब है। वह शोषण एवं अत्याचार का शिकार तो है, लेकिन वह एक मरती-खपती सच्चाई भी है। "औरत की जिन्दगी" "किले में औरत" "बड़ी हो रही है लड़की" आदि कविताएं औरत के दर्द को उभारती है-

"उस दिन बुढ़िया बीमार पड़ी
मर्दों ने कहा औरतों की बीमारी है
वह बुढ़िया औरत के रहस्य
उन बीस जनों के और तपन की गठरी बन
कोने में खटिया पर जा करके पहुड़ रही
वह पहुड़ी रही साल भर तक फिर गुजर गयी
औरतें उठी घर धोया मर्द गये बाहर
अर्थी लेकर"---[1]

"हँसो-हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताएं भी "आत्म हत्या के विरूद्ध" की तरह/ ही मामूली अभावग्रस्त जिन्दगी का चित्र प्रकट करती हैं। "पैदल चलता हुआ आदमी" सहमी डरी लड़की, अपने दर्द के साथ अकेली औरत", खाँसता हुआ फल वाला, आदि इस संग्रह की कविताएं सामाजिक बदहाली एवं शोषकों के चंगुल में पिसते लोगों का

---

1. हँसों-हँसो जल्दी हँसो" - रघुवीर सहाय प्र0 1975 "किले में औरत" पृ0सं0 22

चित्र प्रस्तुत करती हैं– कालानंगा बच्चा, रिक्शा खींचता मजदूर" आदि कविताएं अभाव ग्रस्त जिन्दगी, जीने वाले लोगों का चित्रण करती है–

"काला नंगा बच्चा पैदलबीच सड़क पर जाता था
और सामने से कोई मोटर दौड़ाये लाता था।
तभी झपटकर मैंने बच्चे को रास्ते से खींच लिया
मेरे मन ने कहा कि यह तो तुमने बिल्कुल ठीक किया
वहीं देखकर एक भिखारी मैंने उससे यों पूछा
क्या यह साथ तुम्हारे है? वह पलभर ठिठका बोला हाँ"----[1]

रघुवीर सहाय के संग्रह "हँसों–हँसों जल्दी हँसो" की "रामदास" कविता आज की उस क्रूर अमानवीय स्थिति को नंगेचित्र की तरह सामने उपस्थित कर देती है, जिसमें "हत्या" जैसी जघन्य, असाधारण और भयानक घटना भी एक अत्यन्त सहज घटना हो गयी है। मामूली आदमी और ईमानदार आदमी हर जगह मारा जा रहा है। "रामदास" कविता में हत्यारा आता है और तौलकर चाकू मारता है सभी लोगों की उपस्थिति के बावजूद वह हत्या करके सबको ठेलकर आराम से निकल जाता है। इस हत्या की फरियाद कोई सुनने वाला नहीं है, और रामदास की (डेड बाडी) अनिश्चित समय तक पड़ी रह जाती है–

"भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो–देखो बार–बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी"----[2]

---

1. हँसो–हँसों जल्दी हँसों –रघुवीर सहाय प्र0 1975 "काला नंगा बच्चा पैदल" पृ0सं0 55
2. वही " " "रामदास" पृ0सं0 28

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो" संग्रह की कविताएं निराला की कविताओं के भाव को प्रकट करती है, जिसमें कि निराला जी ने भी अभावग्रस्त और पतनोन्मुख जीवन की तस्वीर प्रस्तुत की है। निर्धन जनता के शोषण एवं उतपीड़न से सहाय बहुत क्षुब्ध थे और वे इस दुर्व्यवस्था के शिकार लोगों के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट की है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे"–––[1]

इस संग्रह की कविताओं में गरीबी एवं लाचारी से बदहाली की स्थिति को प्राप्त लोगों को सचित्र प्रकट करने का प्रयास दिखाई देता हैं। "भीख माँगती हुई लड़की" सूखे और झुर्रियों से युक्त लोगों के इस संग्रह की कविताओं में स्थान मिला है–

"वह लड़की भीख माँगती थी दबी–ढँकी
एकाएक दूसरी भिखारिन को वहाँ देख
वह उस पर झपटी
इतनी थोड़ी देर को विनय
इतनी थोड़ी देर को क्रोध
जर्जर कर रहा है उसके शरीर को"–––[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 पृ0सं0 16

2. वही " " हैं" कविता पृ0सं0 69

इसके अतिरिक्त वर्तमान व्यवस्था में गरीबी में पलते हुए बच्चों की असुरक्षित जिन्दगी (आमार सोनार दिल्ली, 'व्यवस्था द्वारा उनके इस्तेमाल (फूल माला हाथों में, उनकी निराशा जन्य ऊब (दर्द ; तथा एक बार फिर उनका डरावना भविष्य (जीने का खेल (साक्षात्कार इन संग्रहों की कहीं कई कविताओं से प्राप्त होता है–

"जो लड़की वह खड़ी है कमजोर
सांस लेती भारी बस्ता लिये
काले पावों ठिठकर
क्या तुम उसके सिर पर लदी
उसके माँ बाप की तरसती
जिंदगी देख सकते हो
एक क्षण मे ?"---[1]

स्त्रियों और बच्चों की शोषित जिन्दगी की विडम्बनाओं को लेकर "हँसो–हँसों जल्दी हँसों" संग्रह की कविताएं इसलिए और महत्त्वपूर्ण है कि वे हमें जिस व्यापक मानवीय करूणा के संसार में ले जाती है, वह संसार की कवि के आत्म दया के विरुद्ध होने के कारण भावुकतावाद के दायरे में नहीं फँसता बल्कि मानवीय करूणा की रचनात्मकता को एक नयी गति प्रदान करता है– रघुवीर सहाय ने स्वयं ही कहा है–

"मैं खुद जानना चाहूँगा कि क्या इन कविताओं को पढ़कर पाठक एक तरह की पीड़ा के विलास में डूब जाते हैं जिसमें आत्म पीड़न का या परपीड़न का सुख मिलने लगता है। यानि यह होता है कि उनमें जो भी चरित्र है (वे) उनकी खोज करना चाहते हैं, उनके पास जाना चाहते हैं, उनको छूना समझना देखना चाहते हैं, क्योंकि उनके लिए ये वास्तविक हो जाते हैं"---[2]

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 "आमार सोनार" दिल्ली पृ0सं0 62

"हँसो–हँसो जल्दी हँसो-संग्रह की कुछ कविताएं ऐसी भी है कि जिनमें कविता की एक नयी शैली को जन्म देने की कोशिश की गयी है। "तैरते होटल में मस्ती के आठ दिन" अगर विज्ञापन शैली में एक सशक्त कविता है तो "राष्ट्रीय प्रतिज्ञा" तथा बाराबंकी आदि कविताओं में खोखली घोषणाओं ओर नारों की भाषा को व्यक्त किया गया है।

*****

घ) **"लोग भूल गये हैं"** :

"लोग भूल गये है" रघुवीर सहाय का चौथा काव्य संग्रह है। इस संग्रह का पहला संस्करण सन् 1982 ई0 में राजकमल प्रकाशन (प्रा0लि0) नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसके अब तक तीन संस्करण निकल चुके हैं। "लोग भूल गये है" कविता संग्रह के लिए रघुवीर सहाय को सन् 1984 ई0 में राष्ट्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इस काव्य संग्रह में तिरसठ (63) छोटी बड़ी कविताएं संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताएं कवि के निरन्तर बढ़ते हुए अनुभवों के पीछे उसकी सामाजिक चेतना के विकास का भी संकेत देती हैं। कवि की चिन्ता है कि उस विकास के बिना कविता को सृजन करने का कोई मतलब ही नहीं है। इस संग्रह में कला क्या है? विचित्र सभा, नन्हीं लड़की, भविष्य, मेरी दुनिया, हिंसा, नशे में दया, मनुष्य मछली युद्ध, स्त्री, औरत का सीना लोग भूल गये हैं, दयाशंकर, अधेड़ औरत, बलात्कार, संघर्ष, हिन्दी, रोग, आजादी, स्वच्छन्द लेखक, आदि कविताएं हैं। इन कविताओं के माध्यम से सहाय ने पतनशील समाज का चित्रण किया है। आज के समाज के प्रति उनकी दृष्टि विरोध की है, किन्तु वे अपने समाज के प्रति अपने काव्यानुभव से यह जानते हैं कि जो रचना पाठक के मन में पतन के विरूद्ध विकल्प जाग्रत नहीं करती, वह न तो साहित्य की उपलब्धि होती है और न समाज की। आत्महत्या के विरूद्ध की परम्परा में वे उस शक्ति को बचा रखने के लिए आतुर हैं, जो उन्होंने "दूसरा सप्तक" और "सीढ़ियों पर धूप में" पायी थी, और जिस पर आये हुए खतरे को "हँसो-हँसो जल्दी हँसो" में दिखाने का प्रयास किया है। कवि की यही मान्यता है कि यही खोज नये समाज में न्याय और बराबरी की सच्ची लोकतंत्रीय समझ और आकांक्षा जगाती है, ऐसे समाज की रचना के लिए साहित्यिक और साहित्येतर क्षेत्रों में संघर्ष का आधार बनाती हैं, जहाँ पर जन की यह शक्ति पतनोन्मुख संस्कृति के माध्यमों द्वारा भ्रष्ट की जा रही है" वहाँ पर कवि चेतावनी देता है।

इस संग्रह की कविताओं में, जिन नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को लोगों ने भुला दिया है और संस्कृति के सभी नियमों की उपेक्षा करने का प्रयास किया है, उसी की याद दिलाने की कवि ने भरसक कोशिश की है–

"कला और क्या है, सिवाय इस देह मन आत्मा कें
बाकी समाज है जिसको हम जानकर समझकर
बताते हैं औरों को, वे हमें बताते हैं
वे जो प्रत्येक दिन चक्की में पिसने से करते हैं शुरू
और सोने को जाते हैं
क्योंकि कि यह व्यवस्था उन्हें मार डालना नहीं चाहती।"----[1]

जहाँ कहीं न्याय और समानता की मान्यताएं शेष तो रहती हैं, लेकिन उन्हें लोग समझ नहीं पाते हैं और उसके महत्तव से अनभिज्ञ रह जाते हैं, तो कवि ने इस संग्रह की कविताओं में उन मान्यताओं से परिचय, कराने का प्रयास किया है। कवि न्याय और समता को बचाने के लिए भ्रष्ट संस्कृति को तोड़ने का प्रयास करता है और तोड़ने के लिए, तोड़ने के व्यावसायिक उद्देश्य का विरोध करता है। पीड़ा को पहचानने की कोशिश वह ऐसे करता है कि उसी समय उसका सामाजिक अर्थ भी प्रकट हो जाय। "लोग भूल गये हैं" संग्रह की कविताएं सामाजिक नैतिकता को बचाने का संदेश प्रस्तुत करती हैं, और समाज में व्याप्त वैषम्य को समूल नष्ट करने के लिए भी एक अलग प्रेरणा प्रदान करती हैं। व्यक्ति को अपनी सही पहचान कराने में एवं उससे अवगत कराने में बहुत ही सहायक सिद्ध होती हैं। वस्तुतः ये कविताएं लोगों को भ्रष्टाचार एवं अन्याय के विरूद्ध खड़े होने में एक शक्ति प्रदान करती हैं–

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय प्र0 1982, कला क्या है, पृ0सं0 12

"यह भी दिखा था कि जनता संगठित होकर
आलोचना नहीं कर पा रही है
और बन्दूक हाथ से चली गयी है
मैं नहीं जानता कि रघुपति का क्या हुआ"---[1]

रघुवीर सहाय का मानना है कि आज के कवि का अपनी परीक्षा के लिए समाज के सम्मुख उपस्थित होना अनिवार्य है। क्योंकि आज समाज में अपने अस्तित्व को एवं समाज से अपने रिश्ते को समझने में बहुत ही संशय की स्थिति उत्पन्न हो रही है। वे यह भी बयान करते हैं कि आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने मानवीय रिश्तों को बिगाड़ने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले जन मानवीय अधिकार की हर लड़ाई को एक पराजय बनता हुआ पाते हैं। संघर्ष की रणनीतियाँ और चुनौतियाँ उन्हीं के आदर्शों की पूर्ति करती दिखाई दे रही है जिनके विरूद्ध संघर्ष है, क्योंकि संघर्ष का आधार नये मानवीय रिश्तों की खोज नहीं रह गया। न्याय और बराबरी के लिए हम जिस समाज की कल्पना करते हैं। उसमें मानवीय रिश्तों की क्या आकृति होगी, यह तो किसी भी समाज के लिए संघर्ष के दौरान ही बिल्कुल तय होना चाहिए। रघुवीर सहाय इस संग्रह की कविताओं में मानवीय रिश्तों को बार-बार खोज करने का प्रयास करते हैं और उनको जाँचने, सुधारने का भी प्रयास करते हैं। सहाय इस संग्रह की कविताओं के माध्यम से यह दृढ़ आस्था व्यक्त करते हैं कि लोग न्याय और बराबरी के आदर्श को नहीं भूलते हैं। इतिहास के किसी दौर में कुछ लोग अवश्य ही इन्हें भूल जाते हैं, लेकिन इन्हें याद कराने के लिए बहुत सारे लोग बचे रहते है।

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ०सं० 15
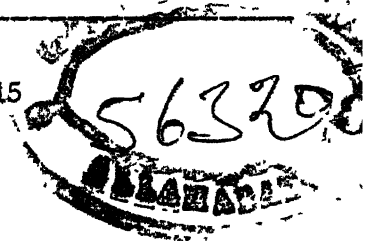
"लोग भूल गये हैं" के दूसरे संस्करण की भूमिका लिखते समय भी रघुवीर सहाय यह प्रतिपादित करते हैं कि– "लोग न्याय और बराबरी के जन्मजात आदर्श को नहीं भूलते, इतिहास के किसी दौर में कुछ लोग इन्हें अवश्य भूल जाते हैं, पर उन्हें याद कराने के लिए उनसे भी कहीं बड़ी संख्या में लोग जीवित रहते हैं"---[1]

समाज में व्याप्त पतन–शोषण एवं उत्पीड़न की विभीषिका से सन्तप्त मानवता का चित्रण इस संग्रह में प्राप्त होता है। साथ ही इस भयंकर स्थिति में जो लोग इसका विरोध करने का प्रयास करते हैं– उसे बड़ी ही आसानी से शक्ति के माध्यम से दबा दिया जाता है–

होगा ही अत्याचार और होता रहेगा
यह केवल इतना सच है कि हारे हैं
हारे हैं हार भी रहे हैं हम बार–बार
इस वक्त आज अभी फिर हारे
और यह स्वीकार करना कि हारे हैं
हर बार ताकत नहीं दे रहा है"---[2]

समाज में व्याप्त पतन की स्थिति एवं उसके विरोध में खड़ी होने वाली जनशक्ति का संहार "लोग भूल गये है" काव्य संग्रह में दिखाई पड़ता है। पूँजीवादी एवं शोषण व्यवस्था के मध्य सामान्य जनता पीस रही है, और उसके दर्द को सुनने वाला कोई नहीं है। शोषण एवं उत्पीड़न के शिकार हुए लोगों को स्वयं इसके कारणों की जानकारी बहुत देर में होती है और जब वे उसका विरोध करने के लिए खड़े होते हें तो उन्हें बिल्कुल दबा दिया जाता हैं–

---

1. लोग भूल गये है– दूसरा संस्करण की भूमिका –रघुवीर सहाय, पृ0सं0 8
2. वही " " "भविष्य" पृ0सं0 22

"देखो जिनको मारा है उनके चेहरों को
उन पर कोई रंग नहीं है
पर सौदागर जरा देर में उनमें कोई रंग डालकर
उनको कपड़े पहना देंगे चिकनाए आवरण पृष्ठ पर"---[1]

समाज में चारों तरफ शोषण एवं नैतिकता के ह्रास के परिणामस्वरूप सामाजिक ढाँचा बिल्कुल टूटा हुआ दिखाई पड़ता है। मामूली आदमी की कोई पूछ नहीं है और उसे अपनी जीविका के लिए भी तरसना पड़ रहा है। लेकिन वह इस अव्यवस्था का विरोध करते हुए एवं शासन की पोल खोलने का जब प्रयास करता है, तो ऐसी स्थिति में उसे आगे नहीं बढ़ने दिया जाता है-

"काम खोजता हुआ
कुछ न सोचता हुआ
कुछ न बोलता हुआ
वह चला गया युवक
हाथ में लिये बुरूश
भेद खोलता हुआ"---[2]

सांस्कृतिक मान्यताओं के विघटन से एवं समाज की दयनीय स्थिति जिसमें कि सामान्य जनता का भविष्य बिल्कुल खतरे से युक्त दिखाई देता है, ऐसी दशा में "लोग भूल गये है" संग्रह की कविताओं में इस दुव्यर्वस्था के विनाश के लिए लोग खड़े होते हैं, लेकिन उन्हें बीच में ही दबा दिया जाता है, का चित्रण प्राप्त होता है। ऐसी अव्यवस्था के अन्तर्गत जो लोग पल रहे हैं, उनका न तो

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय प्र0 1982 "रंगो का हमला" पृ0सं0 19
2 वही " "एक दिन रेल में" पृ0सं0 20

आने वाला दिन ही सुखद प्रतीत होता है, क्योंकि इन्हें विरोध करने का भी भरपूर अवसर नहीं प्राप्त होता है।

अपने अन्य संग्रह की कविताओं की तरह रघुवीर सहाय प्रस्तुत संग्रह में भी औरतों की पीड़ा का चित्रण करने का प्रयास किया है। लेकिन इन चित्रों में औरत के प्रति होने वाले अत्याचार के खिलाफ, एक लड़ाई की तैयारी प्रस्तुत क्.रते हैं। संग्रह की कविताएं औरत का वैषम्य पूर्ण दर्जा, दमन एवं उसकी असहाय स्थिति की सफल झाँकी प्रस्तुत करती हैं–

"वह जो था अन्त में आदर था
वह था उसका सीना आँखों के सामने
उसकी अकेली असहाय
और गैर बराबर औरत
का वह सर्वस्व था और मेरे बहुत पास"---[1]

इस संग्रह की कविताओं में औरत की जो मुस्कान एवं खुशी दिखाई देती है, वह मात्र उसकी बाह्य खुशी ही मालूम पड़ती है। उसकी पीठ और उसका सीना यह प्रकट करते हैं कि अब उस दर्द के विरूद्र खड़े होने की बारी आयी है, लेकिन ऐसा समय आने पर भी इस पुरूष प्रधान समाज में उसे इस तरह दबोच दिया जाता कि वह अपने दर्द के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस भी नहीं करती है–

"पर उसका चेहरा उसका विद्रोह है
यह कितनी कम औरतें जान पाती हैं,
इस भ्रम में भूली हुई कि वह भविष्य है
वह घुटने मोड़कर करवट लेट जाती है"---[2]

---

1. लोग भूल गये हैं– "रघुवीर सहाय प्र0 1982 पृ0सं0 44
2. वही " कवित. "स्त्री" पृ0सं0 42

समाज में न्याय एवं समानता की स्थिति तभी आ सकती है जबकि समाज में व्याप्त अत्याचार एवं विषमता को समाप्त करके, समानता और नैतिकता से युक्त स्थिति उत्पन्न हो।

बलशाली लोग हमेशा से कमजोर वर्गो का शोषण करते रहे हैं। गरीबों एवं असहायों के ऊपर सशक्त लोगों ने तरह-तरह के अत्याचार करके उन्हें पंगु बना दिया है-

रघुवीर सहाय व्यक्त करते हैं-

"ताकतवर लोग खोजते हैं कमजोर को
एक तरफ अस्पताल, झोपड़ी हजार वर्ष से
वंचित जाति वर्ग लाश लुटे लोग
ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दें और
और दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
कागज पर उनकी तसवीर आके
जन के मन भय भरे"---[1]

आज पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषक वर्ग केवल अपनी सुख-सुविधा एवं फायदे की बात सोचता है, और किसी से उनका कोई सरोकार नहीं है। सुविधा भोगी वर्ग हर तरह से समाज का दोहन कर लेना चाहता है-

"देखो अपने बच्चे के दु:ख को देखो
जब उनकी देह में तुम देखते होगे अपने को देखना
वहीं मुद्राएं जो तुम्हारी हैं बार-बार उन पर आ जाती हैं
हड्डियाँ जिससे वे बने हैं- एक परिवार की
और बचपन के गुद्गुदे हाथ की हल्की सी झलक भी

---

1. लोग भूल गये हैं -रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली, पृ0सं0 38

नाच गाना और भोग विलास
फुरसती वर्ग के लड़के-लड़कियों के शगल बनते हैं
फिर इनका रोब घट जाता है और ये समाज में वही कहीं पैठ
जाते हैं बिखराव बरबादी और हिंसा बनकर"---[1]

रघुवीर सहाय न्याय और समानता के आद्यन्त पोषक रहे हैं उनके लिए सामाजिक असामनता एवं अन्याय किसी भी दशा में मान्य नहीं हैं। जिस तरह प्रेमचन्द सामाजिक वैषम्य का चित्रण करते हुए "गोदान" में मध्यवर्गीय जनता को शोषकों के विरूद्व खड़े होकर अपनी लड़ाई लड़ने के लिए एक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं उसी प्रकार रघुवीर सहाय शोषण के विरूद्व जनता को खड़ा होने की प्रेरणा देते हैं, उनको यह विश्वास है कि आज असहाय जनता के ऊपर जो प्रहार हो रहा है, उस दुव्यर्वस्था का सतत प्रयास से समूल नाश हो सकता है और आने वाली पीढ़ी को इस दर्द से छुटकारा मिल सकता है-

"बच्चों की रोटी की सोच में पड़ गया मेरा मन
कितना आसान था प्रेम छोड़ पैसे की शरण में आ जाना
प्रेम जो समाज में न्याय की लड़ाई है
पैसा जो सिर्फ है मुआवजा मौत का।"---[2]

पतनोन्मुख संस्कृति में आजादी प्राप्त होने पर भी हम दासता की अनुभूति से मुक्त नहीं है, और हिन्दी को भी राष्ट्रभाषा का पूर्ण गौरव नहीं प्राप्त हो पाया है, साथ ही साथ गुलामी की भावना हमारे अन्दर अभी व्याप्त है। सहाय की दृष्टि इस सच की ओर गयी है कि हिन्दी की दासता को भी पूर्णतया समाप्त करने की जरूरत है।

---

1. लोग भूल गये है- रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली पृ0-सं0 49
2. वही " " पृ0सं0 67

"जो इस पाखण्ड को मिटायेगा
हिन्दी की दासता मिटायेगा
वह जन वही होगा जो हिन्दी बोलकर
रख देगा हिरदै निरक्षर का खोलकर"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्ध" और "हँसो-हँसों जल्दी हँसो" में मानवता की सहज पीड़ा एवं शोषितों की दयनीय स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए, सहाय "लोग भूल गये हैं" सग्रह की कविताओं में उस पीड़ा की समाप्ति के लिए एक रणक्षेत्र की नींव तैयार करने की कोशिश करते हैं, जिससे कि सही न्याय और समानता की स्थिति उत्पन्न की जा सके। भले आज हम आजाद हैं, लेकिन वास्तविक आजादी तभी मान्य होगी जब समाज में सर्वत्र सन्तुलित न्याय और समानता की स्थिति व्याप्त होगी। समाज के शोषित और पीड़ित लोग अपनी पीड़ा से मुक्ति का प्रयास करते हैं, वे एक लड़ाई लड़ने के लिए तैयार होते हैं, लेकिन शोषक वर्ग इतना शक्तिशाली है कि असहाय एवं पीड़ित लोगों को झुक जाना पड़ता है। सहाय शोषण वं उत्पीड़न के विरूद्व सतत संघर्ष करते जाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। मनुष्य अपनी पुरानी संस्कृति एवं मर्यादा को जो भूल बैठा है उसे स्वयं अपने अधिकारों एवं कर्तव्यो की जानकारी नहीं है, ऐसी दशा में पतन की स्थिति ही पैदा हो सकती है। आने वाले शासक वर्ग पतनशील संस्कृति को जहाँ पर अन्याय और विषमता का ही बोलबाला है, अपना आदर्श स्वीकार करते हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य एवं मामूली आदमी का हित कहाँ संभव हो सकता है? वह तभी संभव है, जब इस अन्याय एवं विषम स्थिति का लगातार विरोध होगा-

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय प्र0 1982 राजकमल दिल्ली, पृ0सं0 78

"दुनिया ऐसे दौर से गुजर रही है जिसमें
हर नया शासक पुराने के पापों को आदर्श मानता
और जनवंचित जन जो कुछ भी करते हैं काम धाम राग रंग
वह ऐसे शासक के विरूद्ध ही होता है"---[1]

ऐसी स्थिति में पूर्वजों के द्वारा स्वीकृत मान्यताओं एवं न्याय के सिद्धान्तों को अपनाया जाना भी अति आवश्यक है। समाज की बदहाली की स्थिति में जिसमें कि लोग मानवता एवं मानवीय मूल्यों को भूल बैठे हैं, उसे पुनः याद करके अपने अधिकारों के लिए एक लड़ाई लड़नी होगी, जिसे कि "लोग भूल गये हैं" संग्रह में रघुवीर सहाय बहुत ही प्रभावशाली ढंग से उभारने का प्रयास किये हैं-

"और सुधारो
घर में रह सकते नहीं हो मगर सारा दिन
कुछ दुःख बाहर से ले आयेंगे तुम्हारे घर उस घर के लोग
और लोगों को भी बार-बार घर से बाहर जाना होगा"---[2]

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय प्र0 1982 "लोग भूल गये हैं" पृ0सं0 48
2. वही " " पृ0सं0 49

(ड.) कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ

कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" रघुवीर सहाय का पाँचवाँ काव्य-संग्रह है। सन् 1989 ई0 में इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन राजकमल प्रकाशन (प्रा0लि0) नयी दिल्ली से हुआ। इस संग्रह में रघुवीर सहाय की छोटी-छोटी 68 कविताएं संकलित हैं। यह कहा जाता है कि आमतौर पर हिन्दी का हर कवि उम्र के हर अगले पड़ाव पर थका, ऊबा और ठस जान पड़ता है, लेकिन "कुछ पते कुछ चिट्ठियों" का कवि इससे कुछ भिन्न दिखाई पड़ता है- इस संग्रह की पहली ही कविता "उनहार" में कवि कहता है-

"यह किताब अधिक संगठित है
भावों के मुकाबले
जो कभी टहलते कभी मंडराते हुए
आते हैं इसमें पन्नों में से होकर
पन्नों से नहीं"---[1]

काव्यानुभव और सामाजिक चेतना-इन दो को अलग-अलग खानों में न बाँटने और व्यक्ति एवं कवि को एक समग्र इकाई बनाने की पुरानी प्रतिज्ञा के अनुसार इस संग्रह तक कवि की विकासोन्मुख प्रवृत्ति दिखाई देती है। रघुवीर सहाय में प्रखर ऐन्द्रिक संवेदन एवं प्रखर राजनीतिक सामाजिक चेतना का सम्मिश्रण है, यही कारण है कि इनकी कविताओं में यथार्थ न कोरा सतही यथार्थ रहने पाता है, और न तो नकारात्मकता का ही पर्याय बनने पाता है। "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" कविता संग्रह इस बात की याद फिर से दिलाता है कि सहाय ने आग्रहपूर्वक सच्चाइयों की चिकनी "काव्यात्मक" सतह को अस्वीकार किया है- और जहाँ औरों को कविता नहीं दिखती है, वहाँ उन्होंने कविता की पहचान करने की कोशिश की है-

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ -रघुवीर सहाय प्र0 1989 "उनहार" पृ0सं0 11

"तब, उसे बिना बतलाए कविता कैसे हो
जब भाषा कवि को लोगों से ही लेनी है
वे लोग तो नहीं लिखते कविता भाषा में
उनकी भाषा जो है, विचार दे जाती है।"---[1]

अपने को निरन्तरता मे नया करते जाने वाले अपनी रचना प्रक्रिया के प्रति सजग और आत्मचेता इस कलाकार के "नागर मन की भाव प्रवणता, सूक्ष्मदर्शिता और तटस्थ निर्ममता अब किसी नये परिचय के लिए तरसती नहीं है। सहज सौंदर्य और सूक्ष्म अनुभूति से निर्मित रघुवीर सहाय का काव्य संसार जितना निजी है उतना ही हम सबका है- एक गहरे और अराजनैतिक अर्थ में वे पूर्णतया जनवादी है।

<u>भारष भूषण अग्रवाल</u> ने रघुवीर सहाय के साहित्यिक व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- "भीड़ से घिरा एक व्यक्ति जो भीड़ बनने से इंकार करता है और उससे भाग जाने को गलत समझता है, रघुवीर सहाय का साहित्यिक व्यक्तित्व है।"[2]

लोग भूल गये हैं" संग्रह की कविताएं लिखते समय सामाजिक चेतना और रचनात्मक अभिव्यक्ति के जिस दौर के बीच से कवि अपनी कविताएं लेकर पाठकों के सामने अपनी परीक्षा के लिए उपस्थित हुआ था, उसका वह दौर अभी तक समाप्त नहीं हुआ है, भाषा के अनेक प्रकारों पर व्यावसायिक और राजनैतिक कब्जे ने भाषा की रचनात्मकता को अनेक प्रकार से विकृत और कुण्ठित किया है। नई प्रतिभा को सामाजिक चेतना के विषय में बलपूर्वक अशिक्षित

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ, रघुवीर सहाय प्र0 1989 "आज की कविता" पृ0सं013
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ-रघुवीर सहाय प्र0 1989 पृ0सं0 7

करके मनुष्यों के बीच साझेदारी के सम्बन्ध तोड़े हैं। वे प्रत्येक अनुभव को एक सनसनी और प्रत्येक मनुष्य को एक वस्तु बनाते चले जाते हैं। यह ध्वंश व्यापार की प्रक्रिया प्रतिभा को लगातार लुभाता और पथभ्रष्ट करता रहता है। रचनात्मकता के विरूद्व इतना बड़ा अभियान आजादी के बाद दासता की पहली बार एकत्र शक्तियों ने चलाया है.

"सच क्या है?
बीते समय का सच क्या है?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया"----[1]

जिस तरह रचनात्मकता और आजादी एक ही मानवीय आकांक्षा के पर्याय है, उसी प्रकार समता की लड़ाई और कविता भी एक ही मानवीय उत्कर्ष के पर्याय हैं। आज के बदलते परिवेश में जहाँ पर शोषण एवं उत्पीड़न का साम्राज्य व्याप्त है, और उसके विरोध में खड़े होने पर हमें जो पराजय प्राप्त हो रही है, उसमें पीछे मुड़कर देखें तो स्वयं हमें अपनी भूल का पता चलता है। इतिहास और परम्परा की विकृति के द्वारा एक बनावटी इतिहास का निर्माण और आने वाली पीढ़ी की प्रायोजित अशिक्षा ही हमारी पराजय का कारण है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह में फिर दोहराते हैं कि वह रचना जो पाठक या श्रोता के मन में पतन का विकल्प जागृत नहीं करती है, तो उससे न तो साहित्य की ही उपलब्धि होती है और न तो समाज की ही। और वह रचना वास्तविक रचना नहीं होती है–

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0स0–21

"कोई कभी भोर
ताजगी की नवीन परिभाषा लाती है
साहित्य के बगैर
जरा देर जूझकर मेरे इस विस्मय से
दिन की प्रभा में खो जाती है"---[1]

इन्हीं सभी बातों के जवाब में रघुवीर सहाय ने "कुछ पते कुछ चिट्ठियां" की कविताओं का सृजन किया। सामाजिक विषमता एवं शोषण के द्वारा विकृत संस्कृति में लोग जहाँ पर एकत्र होकर विरोध करने की शक्ति तैयार करते हैं, लेकिन उन्हें पराजय प्राप्त होती है, का सबूत "लोग भूल गये हैं" संग्रह में प्रतिपादित किया गया है। वही आगे चलकर "कुछ पते कुछ चिटिठयाँ" कविता संग्रह में कवि फिर लोगों को एक नया संदेश देने का प्रयास करता है, जहाँ पर भ्रष्ट समाज एवं शोषण के विरूद्व पुन. खड़ा होने की बात का सुझाव है। जिससे कि समाज में सच्ची समानता एवं न्याय का वातावरण विकसित हो सके। रघुवीर सहाय ने इस संग्रह में चिट्ठियों के रूप में जो अमर संदेश लिखने का प्रयास किया है, वे चिट्ठियाँ डाक से नहीं भेजी जा सकती है, क्योंकि पते बदलते रहते हैं। इस संग्रह में संकलित कविताएं कोई व्यक्तिगत सन्देश नहीं है, और न तो गश्ती परिपत्र। ये कविताएं हर आदमी के पास पहुँचने और बोली या पढ़ी जाने पर चिट्ठियाँ बनती हैं।

जीवन मूल्यों के अवमूल्यन, अन्धानुकरण और फैशन के तौर पर हम जिस नकारात्मक तथाकथित संस्कृति को बौद्विक और व्यावहारिक स्तर पर अपना रहे हैं उनकी कचोट और कपट का स्वर उनकी कविताओं में जगह-जगह मुखरित हुआ है-

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 88

"नारी, चिडियाँ, देश जागरण
बच्चा, प्रकृति, दुःख वासना
अलग-अलग डब्बों में मेरी
पीड़ाएं मत बन्द कीजिए
जिन्हें एक में मिला जुलाकर,
मैंने की थी ये रचनाएं।"---[1]

गरीबी एवं असहाय अवस्था में जीने के कारण समाज में एक वर्ग जिसकी दशा बहुत ही बदतर हो गयी है, सहाय की कविताओं के मुख्य विषय हैं। "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह की "अखबार वाला" कविता में कवि ने दो जून रोटी के लिए संघर्षशील अखबार वाले रामू की स्थिति को हमारे सामने उपस्थित करने का पूर्ण प्रयास किया है-

"धधकती धूप में रामू खड़ा है
खड़ा भुल भुल में बदलता पाँव रह- रह
बेचता अखबार जिसमें बड़े सौदे हो रहे हैं।"---[2]

औरतों के साथ होने वाले अत्याचार एवं उनकी पीड़ा को कवि ने अपने प्रत्येक संग्रह में सर्वाधिक स्थान दिया है। औरतों के साथ होने वाली उपेक्षा नीति एवं वैषम्य की भावना को वे कदापि स्वीकार नहीं करते "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह की कविता में भी रघुवीर सहाय औरतों के दर्द को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। "दयावती का कुनबा" कविता में उन्होंने लाचार औरत की मर्म व्यथा को उभारने की पूरी कोशिश की है-

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय पृ0सं0 78
2. वही " " पृ0सं0 75

"इच्छाएं दाब कर बदलकर स्वभाव को
जैसे ससुराल में पसन्द था
रोगों को झेलकर, दिखलाकर सगुन
चार बच्चे पैदा किये"---[1]

रघुवीर सहाय की "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह तथा अन्य संग्रहों की कविताओं के पढ़ने से निराला, शमशेर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन आदि की किसी न किसी पड़ाव पर अवश्य ही याद आती हैं। रघुवीर सहाय की कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह की कविताएं समाज में एक नये समताशील समाज के लिए लालायित हैं। जिसे कविता पैदा तो नहीं कर सकती है लेकिन उससे पहचनवा सकती है कि मनुष्य के लिए इस समय किस तरह के यथार्थ की आवश्यकता है। उनकी यूरोप में कविता 1,2,3, और यूरोप में कविता 4, वहाँ की संस्कृति का चित्रण करती है।

"प्रकृति कठोर है आदमी हिंसक है
यही है यूरोप का रहस्य
सभ्यता मेजों पर गोश्त ही गोश्त है
और छुरी काटे में नम्रता"---[2]

प्रस्तुत "संग्रह की अपनी कविताओं के माध्यम से एक अमर संदेश प्रस्तुत करते हुए लोगों को यह आशा दिलाते है कि आगे आने वाले समय में वे शोषकों के विरूद्व होने वाली लड़ाई में सफल हो सकते है। वे आशावान हैं कि सामाजिक विषमता एवं अन्याय को दूर करने में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। इस नये

---

1. "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ"- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 63
2 वही, " " पृ0सं0 60

समाज में व्यक्ति अपने-अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का समुचित उपयोग करने का अवसर प्राप्त कर सकेगा-

"मेरी कविता में ऊषा के
भीतर मेरी मृत्यु भी लिखी
चिड़िया के भीतर है मेरी
राष्ट्र भावना, बच्चों में दुःख
माना सब कुछ गबड़- सबड़ हे,
पर मैंने यों ही देखा था"---[1]

(च) "एक समय था" .

रघुवीर सहाय का यह अन्तिम कविता संग्रह है जो उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुआ है। सुरेश शर्मा इस संग्रह के संकलन और सम्पादनकर्ता है। राजकमल प्रकाशन (प्रा०लि०) नयी दिल्ली से इस अन्तिम कविता संग्रह का प्रथम संस्करण सन् 1995 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस अन्तिम संग्रह में रघुवीर सहाय के पुत्र बसन्त सहाय एवं उनकी पत्नी विमलेश्वरी सहाय (बट्टू जी) की बहुत सक्रिय भूमिका रही है। इस संग्रह में अधिकांश कविताएं रघुवीर सहाय के जीवन के आखिरी चार पाँच वर्षो की है जो कि अप्रकाशित और असंकलित रह गयीं थीं। इसमें संकलित कुछ कविताएं सातवें दशक की भी हैं जो छपने से रह गयी थीं। इन कविताओं को शामिल कर लेने के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि रघुवीर सहाय की कविता का अपना अद्वितीय संसार रहा है।

सहाय जी के निधन के बाद (30 दिसम्बर 1990) उनके लेखन-कारखाने के तमाम कागजों, डायरियों और चिट पुर्जो पर दर्ज उनके आलेख को पढ़ने की कोशिश की गयी, जिसमें ज्यादातर कविताएं समाहित थीं। यह

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ०सं० 78

संग्रह उन्हीं कविताओं का संकलन है। रघुवीर सहाय की काव्य-सर्जन प्रक्रिया शुरू के वर्षो में सुनियोजित थी। "आत्म हत्या के विरूद्व" की लम्बी कविताओं के कई प्रारूप व्यवस्थित रूप से लिखे मिलते हैं। लेकिन धीरे-धीरे उनकी काव्य-रचना-प्रक्रिया की यह व्यवस्था टूटने लगती है। उन्हें जहाँ भी और जब भी काव्य सत्य हासिल होता है, वे तुरन्त उसे वहीं दर्ज कर लेते हैं। बाद में इन काव्य टुकड़ों को जस का तस रहने देकर या बड़ा या छोटा करके वे कविताएं संभव बनाते हैं। अपने जीवन के अन्तिम वर्षो में रघुवीर सहाय जी ने रचने की यह प्रक्रिया अपनाई है। यही कारण है कि ये कविताएं किसी कापी में लिखी हुई नहीं मिलीं। ये निमंत्रण पत्रों की सादी-पीठ, लिफाफों के रिक्त स्थान, दूतावासों के सूचना पत्रों, यहाँ तक कि सिगरेट की डिब्बियों पर भी लिखी हुई प्राप्त हुईं। रघुवीर सहाय इस रचना प्रक्रिया के प्रति हमेशा सक्रिय रहे।

उनके पड़े हुए चिट-पुर्जो को एकत्रित करके, सुरेश शर्मा ने "एक समय था" संग्रह के नाम से संकलित एवं सम्पादित किया। इस संकलन को तैयार करते समय रघुवीर सहाय की पत्नी विमलेश्वरी सहाय अर्थात् वट्टू जी का पूर्ण सहयोग रहा। श्री अशोक बाजपेयी का भी यह आग्रह था कि "रघुवीर सहाय रचनावली" में शामिल करने के पूर्व इन अन्तिम कविताओं का संकलन पहले प्रकाशित हो। श्रीमती शीला सन्धू ने सहाय जी की अन्तिम कविताओं के संग्रह को प्रकाशित करना एक कर्तव्य की तरह स्वीकार किया। उनकी दोनों पुत्रियाँ मंजरी जोशी और हेमा जोशी ने भी अपने पूर्ण सहयोग से इन अन्तिम कविताओं को एक काव्य संग्रह का रूप देने में मदद की। "एक समय था" की कविताओं से स्पष्ट होता है कि रचनाकालकेअन्तिम चरण में जाकर रघुवीर सहाय की ये कविताएँ पहले जैसी चित्रमय नहीं रहीं, फिर उनकी निरलंकार शैली में मूर्तिमत्ता अब भी विद्यमान

है। वह पारदर्शिता– जो उनकी कविता की विशिष्टता रही है अधिक उत्कट सघन और तीक्ष्ण हुई है। भाववाची को– जैसे गुलामी, रक्षा, मौका, पराजय, उन्नति, नौकरी, योजना, मुठभेड़, इतिहास, इच्छा, आशा, मुआवजा, खतरा, मान्यता, भविष्य, ईर्ष्या, रहस्य बिना किसी लालित्य और नाटकीयता का सहारा लिये, रघुवीर सहाय कुछ अलग ढंग से देखने की कोशिश करते हैं–

"टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
उनके कल और परसों के आँसुओं का
प्रमाण मेरे पास लाओ
मूझे शक है ये टूटते समाज में
हिस्सा लेने आये हैं, उसे टूटने से रोकने नहीं।"[1]

तमाम बिखरी सामग्रियों में क्या है ? इसके विषय में सहाय स्वयं कहते हैं–" जिस सबन्ध की बात सोचकर मैंने कुछ कर डालने का उपक्रम किया है वह है क्या? अर्थात् मेरे रद्दी कागजों के ढेर में छिपे मेरे असंबद्ध जीवन के संग्रहीत उन प्रमाणों में से जो अभी तक पहचानकर ठिकाने नहीं लगा दिये गये हैं, वे किस ठौर पहुँचकर किसी अधूरे महाकाव्य का अंग बन जायेंगे।"———[2]

लेकिन रघुवीर सहाय के चिट–पुर्जो में छिपा महाकाव्य परम्परित महाकाव्य नहीं है। सुरेश शर्मा इन अन्तिम कविताओं को संकलित करते समय यह कहते हैं कि रघुवीर सहाय के चिट पुर्जो में छिपे तत्व एक महाकाव्य का ही भाव मुखरित करते हैं।

उनका कहना है कि "महाकाव्य कहने से लोगों को भ्रम हो सकता है कि "रामचरित मानस" जैसी कोई बात मेरे मन में है तो ऐसा नहीं। महाभारत जैसी तो हो सकती है। दरअसल महाकाव्य की मेरी कल्पना महाभारत की ही है——— "नया महाभारत

---

1 एक समय था–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 51

2. वही पृ0सं0 7

तो ऐसे ही पात्रों से बनेगा जैसे मेरे पास हैं। राह चलते– बिल्कुल ठीक–ठाक कहें तो बस में बैठे, सभा में भाषण सुनते, कभी–कभी कविता सुनते हुए ही कागज पर जो गोदगाद करने लगता हूँ, वह किसी न किसी पात्र का या तो एकालाप होता है या संवाद। अवसर होने पर वह कथाकार की व्याख्या भी हो सकता है। वही सब लिखा हुआ तो असंबद्ध महाभारत है।---[1]

रघुवीर सहाय के छोटे–छोटे कागजों पर दर्ज असम्बद्ध महाभारत के कथित "एकालाप" और "संवाद" एक दूसरे से विच्छिन्न नहीं है। उनमें सम्बन्ध और निरन्तरता है। उनमें एक विराट परिदृश्य के अलग–अलग हिस्सों को पहचानकर उसे समष्टि रूप में पहचानने की कोशिश है।

अपनी टिप्पणी के अन्त में रघुवीर सहाय चिट पुर्जो की सामग्रियों को एकान्विति स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "इस तरह समय–समय पर लिखी असम्बद्ध टिप्पणियाँ और अधूरे वाक्य सब कहीं न कहीं एक धारा प्रवाह वक्तव्य के या वर्णन के अंश हैं। यह विश्वास मुझे इस संग्रह को बढ़ाते जाने और इसमें से चुनकर वे अंश पहचानते रहने की शक्ति प्रदान करता है जिनसे कि इन टिप्पणियों का भाव स्पष्ट होता है"---[2]

रघुवीर सहाय की एक ललित एवं प्रभावशाली टिप्पणी के ये अंश इस संग्रह की कविताओं की पृष्ठभूमि और उनकी प्रक्रिया को स्पस्ट कर देते हैं। अपने अन्तिम दिनों की एक अप्रकाशित कविता में भी सहाय अपनी इन तितर–बितर सामग्रियों का फिर से पढ़ने ओर उन्हें व्यवस्थित करने की इच्छा व्यक्त करते हैं–

---

1. एक समय था– सुरेश शर्मा का वक्तव्य, पृ0सं0 7
2. वही – रघुवीर सहाय का वक्तव्य, पृ0सं0 8

"मुझे एक लम्बी–लम्बी–लम्बी छुट्टी दो
मैं अपने कागजों को संभालूँगा
कितनी तरह के ऊबड़–खाबड़ कागज हैं ये
इनके बीच से पिरोकर अपने दर्द को निकालूँगा
बाहर–भय है भय है भय है
जाने क्यों आशा है कि इनको फिर से सजाने से भय
मिट जायेगा"–––[1]

रघुवीर सहाय की अचानक मृत्यु ने उन्हें अपने इनकागजों को संभालने का अवसर नहीं दिया। उन्हें आशा थी कि इन "ऊबड़–खाबड़" कागजों की सामग्रियाँ उन्हें भय त्रस्त मनःस्थिति से मुक्ति प्रदान करेंगी और वे जीवन के लिए एक नयी ताकत हासिल करने में सफल हो सकेंगे। "एक समय था" कविता संग्रह इन्हीं "ऊबड़–खाबड़" कागजों में दर्ज उनकी कविताओं को यथासंभव व्यवस्थित करके प्रस्तुत किया गया है।

इन कविताओं का संकलन और सम्पादन करते समय सुरेश शर्मा ने यह महसूस किया कि सहाय जी की ये अन्तिम कविताएं उनके सम्पूर्ण कविता लेखन का उपसंहार हैं। ऐसा लगता है कि जैसे इन कविताओं में वे अतीत के अपने सारे किये हुए पर टिप्पणी कर रहे हैं और अपने समय के संघर्ष की परिणति भी बता रहे हैं।

इस संग्रह की शुरूआत उन कविताओं से होती है जिनमें समाप्त होती बीसवीं सदी के सीमान्त पर भारतीय मनुष्य की जिन्दगी का हाल वर्णित है। विदेशी कम्पनियों के फैलाते जाल के बीच कम होनी आजादी की आवाज इन

---

1 एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 8

कविताओं में सुनाई देती है। इस व्यवस्था में जीने के लिए अनन्त समझौते करने को विवश स्वाधीन आदमी के आत्म हनन की तकलीफ है। इसके बाद औरतें और बच्चे सब अपमानित और असुरक्षित है। इनकी अन्तिम कविताएं यह सिद्ध करती हैं कि कविता नैतिक बयान है। ऐसा बयान जो अत्याचार और अन्याय की बहुत महीन बारीक छायाओं को भी अनदेखे नहीं जाने देती। उनकी इन अन्तिम कविताओं में नेक दिली से उपजी या करूणा के चीकट में लिपटी अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि नैतिक और स्वाभाविक संवदेनाओं का एक स्वाभाविक प्रवाह दिखाई देता है, इनमें अत्याचार एवं गैर बराबरी के विरूद्ध संघर्ष का भाव प्रकट होता है–

"मैं हर अन्याय पर ऐसे मुस्कराता हूँ
जैसे मैं उसके विरूद्ध हूँ
किन्तु मौन रहता है बोलते तुम हो
और तुम लौटते हो यह समझकर कि
मौन भी रहना एक किस्म का विरोध है"---[1]

अपने अन्य संग्रहों की कविताओं की तरह रघुवीर सहाय इस अन्तिम कविता संग्रह में औरतों के अधिकारों एवं उनकी समानता के लिए प्रयत्नशील हैं। उन पर होने वाले अत्याचार को वे किसी भी स्थिति में सहन करने के लिए तैयार नहीं है– "मुस्कान" औरत की पीठ" और "स्त्री का भय" आदि कविताएं इस अन्तिम कविता संग्रह में संकलित होकर औरतों के दर्द को उभारती हैं–

"औरत की पीठ उसका इतिहास है
उस पर जुल्म का असर वहाँ देखो
अपने सीने को अगर उसने छिपा रखा हो"---[2]

---

1 एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 72

2 वही " पृ0सं0 106

समाज में व्याप्त–शोषण एवं पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ सहाय हमेशा आवाज उठाते रहे। मामूली एवं अभावग्रस्त लोगों की जिन्दगी का सफल चित्रण करके इन्होंने अपने काव्य के गौरव को बढ़ाया है। अन्तिम कविता संग्रह में भी सामाजिक वैषम्य एवं अन्याय के विरूद्ध रघुवीर सहाय अपनी लड़ाई लड़ते हैं और लोगों को यह आशा दिलाते हैं कि सामाजिक असमानता एवं अन्याय के दूर होने पर ही एक स्वस्थ समाज की स्थापना हो सकती है।

प्रस्तुत कविता संग्रह की अधिकांश कविताओं में ज्यादातर उन दृश्यों की भरमार है, जिसके माहौल में आतंक व्याप्त हे। इस संग्रह के अन्त में पत्नी विमलेश्वरी सहाय और मृत्यु सम्बन्धी बहुत सारी कविताएं संकलित हैं। ये सभी कविताएं सहाय जी के दूसरे काव्य संग्रहों में अलग से नहीं दिखाई पड़ते हैं। पत्नी के अकेलेपन, तेजी से भागती उम्र, तथा उसकी असहायता पर कवि ने अपना बहुत कुछ भाव व्यक्त किया है।

"हम दोनों अभी तक चलते–फिरते हैं
लोग बाग आते हैं हमारे पास
हम–भी मिलते जुलते रहते हैं
एक हौल बैठ गया है, मगर मन में
कि यह सब बेकार है
हममें से किसी को न जाने कब
जाना पड़ जा सकता है
हम दोनों अकेले रह जाने को
तैयार नहीं"———[1]

---

1. एक समय था – रघुवीर सहाय, पृ०सं० 144

"<u>एक समय था</u>" के अन्त में सहाय की मृत्यु सम्बन्धी कविताएं हैं। अपने मित्रों या परिवार में सहाय जी कभी अपनी मृत्यु की चर्चा नहीं करते थे। लेकिन जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में उन्हें अपनी मृत्यु का गहरा बोध था कि वे तेजी से मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं। इसलिए घूम-फिरकर वे लगातार मृत्यु पर ही लिखते हैं।

*****

अध्याय – द्वितीय

राजनीतिक चेतना

अध्याय – द्वितीय

राजनीतिक चेतना

1. स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य

2. रघुवीर सहाय की राजनीतिक चेतना– नेहरूवाद, लोहियावादी, समजावाद, साम्यवाद, गाँधीवाद।

3. स्वतंत्र भारत में लोकतंत्र : विविध सन्दर्भ

4. आपातकालीन मुखरता

5. 1975 के पश्चात भारतीय राजनीतिक स्थिति: विविध प्रसंग

6. राष्ट्रभाषा हिन्दी और रघुवीर सहाय

﴾1-﴿ स्वतन्त्रतापूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक परिदृश्य :

रघुवीर सहाय ने जब हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया, उस समय देश में आजादी के लिए अनेकानेक प्रयास जारी थे। यद्यपि एक कवि के रूप में सहाय की पहचान सन् 1951 में प्रकाशित "दूसरा तार सप्तक"से होती है, लेकिन इसके पहले ही उनकी काव्य रचना शुरू हो गयी थी। उन्होंने 1946 ई0 में लिखना शुरू किया ओर पहली बार उनकी कविता "आदिम संगीत" शीर्षक से "आजकल" के अगस्त 1947 के अंक में प्रकाशित हुई थी। यह आजादी के बिल्कुल पूर्व का समय हे। उसके बाद उनकी रचनाएं क्रमश. प्रकाशित हुईं। सदियों से दासता की बेड़ियों में जकड़े–भारत वर्ष की जो दुर्दशा अंग्रेजों द्वारा की गयी, एवं देश को खोखला करने की जो भूमिका अंग्रेजों ने निभाई है, उसको सहाय जी ने अपनी आरम्भिक कविताओं में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य ﴾स्वतंत्रता से पूर्व﴿ इस स्थिति में पहुँच चुका था कि अंग्रेजों को सत्ता छोड़ने के लिए मजबूर किया जा रहा था। अंग्रेजी सत्ता की नींव लड़खड़ा रही थी। यद्यपि अंग्रेज शासक भारत के स्वतंत्रता प्रेमियों को तरह–तरह से प्रलोभन देकर बने रहना चाहते थे, लेकिन वे असफल सिद्व होते हैं। उन्हे सत्ता छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। यद्यपि अंग्रेज जाते–जाते ऐसी चाल अवश्य चले जिससे भारत का पाकिस्तान में विभाजन हो गया। अंग्रेजों को भारत छोड़कर जाना पड़ा। रघुवीर सहाय ने अपनी कुछ प्रकाशित कविताओं में तत्कालीन स्वतंत्रता पूर्व के परिदृश्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है –

"आज धरा नेएक बार सूरज का फेरा लगा लिया है
आज शेष हो गया वर्ष भर समय कि जिसमें
धरा और सुन्दर बन सकती थी पल–पल में,
कुछ समय लगेगा सुख के दिन आते–आते
आओ हम मिहनत निबटा लें गाते–गाते
इस जीवन
जिसमें आशाएं है, सपने हैं रो–रोकर
हम नहीं करेंगे तिरस्कार" ---[1]

अंग्रेज ने स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को खोखला करके जिस स्थिति में छोड़ गये थे ओर उनको हटाने के लिए भारतीयों ने जो अथक प्रयास किया है, उसकी भी बहुत कुछ झलक रघुवीर सहाय कविताओं में प्राप्त होती है। स्वतंत्रता के पूर्व ऐसी स्थिति सामने आ रही थी कि देश को आजादी मिलना बहुत ही मुश्किल है। एक अनिश्चय की स्थिति व्याप्त थी, लेकिन अनवरत संघर्षो से स्वतंत्रता प्रेमियों ने आजादी को हाँसिल करके अनिश्चय और सन्देह की स्थिति को समाप्त कर दिया। सहाय जी ने इन तत्त्वो को अपनी कविताओं में उभारने का प्रयास किया है –

"दुनिया अपनी तिरछी कीली पे घूमती रही है
एक के बाद एक –ऊँची नीची धरती पे उजले दिन
मेली रातें, गयी हें बीत, लढ़कती हुई, शोर करती हुई
जेसे रेलगाड़ी के निकल जाने पे तकवाहा किसान
खेत के तीर मड़ेया में तनिक घूम
एक क्षण नेचे की निगरानी को बाये हुए मुँह से हटा
उसको देखता हे ऐसे
मेंने देखा हे उन्हें धूप में बेठे–बेठे।

---

1 प्रदीप, दिसम्बर – 1948

जब कभी पीछे से कन्धे पे हाथ रख के मेरे
चौंका कर मुझको निमंत्रण देने आया है अतीत
अपने पुरखों के इस अतीत की धूएं
जैसी लपकती हुई परछाइयों को"---[1]

सहाय जी सर्वथा गुलामी के विरोधी रहे हैं ओर जीवन के चतुर्मुखी विकास के लिए स्वतंत्रता को अति आवश्यक माना है। इसलिए आजादी मिल जाने के बाद भी देश में तरह-तरह की राजनीतिक समस्याएं थी, जिनसे प्रभावित होकर तत्कालीन समाज ओर पतन की स्थिति को प्राप्त हो गया, उसकी भी एक झाँकी सहाय की कविताओं मे प्राप्त होती है। उनकी असली काव्य-यात्रा का आरम्भ ही स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ही होता है, इसलिए तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य एवं स्वातंत्र्य संघर्ष का जीता-जागता सबूत रघुवीर सहाय की कविताओं में प्राप्त होता है। उन्होंने स्वतंत्रता को आधार बनाकर बड़े उत्साह के साथ अपनी कविताओं एवं गद्य रचनाओं में आजादी के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है। "दिल्ली मेरा परदेश" की भूमिका में उन्होंने स्वयं कहा है कि -

"मेरे जैसे कई लेखकों के लिए जो आजादी के वर्ष 1947 में लिखना शुरू कर चुके थे, उसके बाद के करीब दस वर्ष एक तरह के उत्साह के वर्ष थे। उत्साह सबमें था, पर हम कुछ अलग ही थे। हम लोग राष्ट्र के नाम पर स्थापित किये जाने वाले हर किस्म के दकियानूसीपन की आलोचना बिना भय के कर सकते थे। हमें अस्पष्ट सही, विश्वास था कि राष्ट्र को हम

---

1 दूसरा तार-सप्तक- संपादक अज्ञेय, रघुवीर सहाय की कविता "अनिश्चय" पृ0सं0-151

ही बना रहे हैं, हमसे पिछली पीढ़ी के लोग तो केवल कालक्रम के संयोग से अधिकारी स्थानों पर हैं, उनकी सृजन शक्ति क्षय हो रही है, और वे एक नये राष्ट्र की रचना का संकल्प सिर्फ दोहरा रहे हैं। हम इसके विपरीत प्रयोग कर रहे हैं, दुनिया को और अपने देश को समझ रहे हैं और कुछ नयी प्रतीतियाँ और संवेदनाएं विकसित कर रहे हैं जो आगे रचनात्मक शक्तियों के काम आयेंगी।" ----[1]

उन्नीस वर्षीय रघुवीर सहाय ने सन् 1948 में अपनी कविताओं को जिस डायरी में संकलित करने का प्रयास किया है, उसे उन्होंने "सपने और सबेरा" शीर्षक से अभिहित किया है। यह शीर्षक बहुत कुछ अर्थों में उस मन:स्थिति को व्यक्त करता है जो स्वतंत्रता संघर्ष के उत्तरार्द्ध के वर्षो में बनी थी। यह निश्चित है कि आजादी मिलने के पूर्व, आजादी को पाने के जो सपने थे, आजादी मिलने के बाद उससे संयुक्त आजादी हॉसिल कर लेने का जो सबेरा था, उसे उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है–

"परिणय की पीड़ा के अतिरिक्त धरा पर दु:ख है बहुतेरे
दु.ख वातायन खोलो, आँसू के परदे सरकाकर देखो
कितने दु:खग्रस्त अभागों से अब तक हम ये आँखे फेरे

उनके हित यह आँसू सिरजो
उनके सुख के सपने देखो
मेरे स्वर में अपना स्वर दे
उन स्वर हीनों की जय बोलो"---[2]

---

1 "दिल्ली मेरा परदेस" की भूमिका में रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ0–2 प्रकाशन मेकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि0 दिल्ली–1974

2 रघुवीर सहाय की अप्रकाशित – डायरी से " रचना तिथि 2–10–1947

सहाय की डायरी में जहाँ "सपने और सबेरा" शीर्षक लिखा गया है, वहाँ पहले सुबह लिखकर काटा गया है, इसके बाद सबेरा लिखा गया है। इस प्रकार यह "सबेरा" तत्काल किसी सुखद स्वप्न भंग के बाद का नहीं है, बल्कि अच्छे स्वप्न के बाद का सहज सबेरा है, जिससे कुछ करने का दायित्व, उत्साह तथा प्रमाण जुड़ा हुआ है। "विश्ववाणी" के जून 1948 अंक में रघुवीर सहाय की जो कविता छपी है, उसका शीर्षक है – "निशा के अतिथि"।

स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् सहाय की मन.स्थिति में जो परिवर्तन आया है, उसे यह कविता स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करती है। कविता के आरम्भ में कवि पहले इस एहसास को व्यक्त करता है कि सुबह हो गयी है ﴾उष्ण रश्मियों से सूरज अब जगा रहा है, और नींद के सपनों की वेला भी खत्म हुई﴿ लेकिन अन्ततः कवि महसूस करता है कि रात्रि–स्वप्न के बीत जाने के बावजूद इस नयी सुबह में सपनों से मुक्त होना संभव नहीं है।

आजादी मिलने के बाद की तत्कालीन राजनीतिक परिवेश जिसके प्रति लोगों को एक आशा लगी थी, का भी चित्रण रघुवीर सहाय की कविता में प्राप्त होता है .–

> मुझे न सपने छोड़ सकेंगे
> यह प्रभात का कर्मक्षेत्र में नेह निमंत्रण
> ठुकराऊँगा नहीं करूँगा नहीं पलायन
> किन्तु स्निग्ध छायाओं में क्षणभर सुस्ताकर
> चलने में कुछ बात और है, हे संजीवन
> पहले आया करते थे, बीती रातों के सपने
> ऊब आते हें आने वाले नये दिनों के"---[1]

---

1 विश्ववाणी– जून 1948, रचना तिथि 24–4–1948

1947 में प्राप्त हुई "स्वतंत्रता" एक नयी आशा और एक नया विश्वास पेदा कर रही थी। अप्रेल–मई 1951 ई0 के "प्रतीक" में सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने स्वतंत्रता के पश्चात् बदलते सन्दर्भ में गेर मार्क्सवादी कवियों के दृष्टिकोंण की व्याख्या की हे जो इस प्रकार हे–

"भारतीय साहित्य की परिस्थितियाँ अब बदल चुकी हैं। भारत की स्वतंत्रता प्राप्त होने के साथ ही साहित्य की ओर आशाएं बँधी। यद्यपि यह अवश्य है कि उसे निष्कंटक विकास के लिए वातावरण तत्काल नहीं नहीं मिल पाया, लेकिन इस प्रकार की आशा की जाने लगी कि हमारे साहित्य तथा उसको जीवित रूप देने वाली हमारी भाषा को जिस राष्ट्र संरक्षण की अपेक्षा है, वह उसे प्राप्त होगा, और हमारे देश में एक नूतन साहित्य परम्परा का आरम्भ होगा। सहाय जी का यह मानना था कि हमारे साहित्यकारों तथा कलाकारों के प्राथमिक उद्योगों, विस्तारों एवं उड़ानों में अवरोध उपस्थित करने वाली दासतामूलक परिस्थितियों का अब कोई भय शेष नहीं रह गया है, जिससे स्वस्थ विकास और सृजन के लिए मार्ग बिल्कुल स्वच्छ हे। आज की परिस्थितियों के प्रभाव में निर्मित साहित्य मे दु.खवाद एवं पीड़ा उस रूप में नहीं मिलेगी जो कि कल के साहित्य की विशेषता थी।"---[1]

---

1 प्रतीक : अप्रेल–मई 1951 पृ0 सं0 37

यहाँ पर श्री त्रिपाठी तत्कालीन साहित्य लेखन की सम्पूर्ण स्थिति को समग्र रूप में तो प्रस्तुत नहीं करते, लेकिन रचनाकारों के एक समुदाय की खास और प्रमुख प्रवृत्ति को अवश्य रेखांकित करते हैं।

"देश को आजादी तो प्राप्त हो गयी थी, लेकिन शासन की रूपरेखा एवं तरह-तरह के कार्यों का संचालन कैसे हो? यह बात तत्कालीन देशप्रेमियों के लिए एक चुनौती का विषय था। देश को प्रत्यक्ष रूप से साम्राज्यवाद से तो मुक्ति मिल गयी थी। दूसरे महायुद्ध के दौरान सोवियत रूस की बहादुर जनता ने फासिज्म को इतनी चोट दी थी कि एशिया, अफ्रीका, लातीनी अमरीका के अन्तर्गत साम्राज्यवादी शक्तियों की अपने उपनिवेशों में स्थिति लड़खड़ाने लगी थी। इस परिस्थिति के फलस्वरूप उपनिवेश राष्ट्रों के स्वाधीनता संग्राम में तेजी आयी। भारत इन राष्ट्रों में सबसे पहले मुक्त होने वाला उपनिवेश था। इसलिए सहाय और उनकी युवा पीढ़ी के लिए एक नये युग में प्रवेश का उत्साह स्वाभाविक ही था। लेकिन सच्चिदानन्द, हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय के शब्दों में- "युद्ध समाप्त होकर भी नहीं हुआ, जो लोग पहले इसलिए लड़े थे कि संघर्ष बन्द हो, उन्हें बाद में इसलिए लड़ना पड़ा कि और कई संघर्ष चालू रखे जाँय।"---[1]

क्योंकि आजादी मिलने के साथ ही देश के शर्मनाक विभाजन के बाद साम्प्रदायिकता की एक आँधी आ गयी, जिसमें सामूहिक कत्ल और बलात्कार की बहुत सारी घटनाएं होने लगी। ये घटनाएं आदमी के भीतर दहशत, अविश्वास और अनास्था पेदा कर रही थीं। यह आजादी के बाद के स्वप्न के तुरन्त बाद ही उभर कर आने वाला कटु यथार्थ था।

---

1 प्रतीक-3 1948 पृ0सं0-119

डा0 नामवर सिंह का विचार रहा है कि –

"पन्द्रह अगस्त 1947 की स्वाधीनता प्राप्ति के साथ स्वतंत्रता संघर्ष का जो नया दौर आरम्भ हुआ, उसने साहित्य में इस यथार्थ और उस स्वप्न के अन्तर्विरोध को एक नया सन्दर्भ और नया आयाम दे दिया"---[1]

स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद साम्राज्यवादी स्वार्थ ओर अर्द्ध सामन्ती, अर्द्ध–पूँजीवादी सत्ता की राजनीति ने देश की जनता को अपनी जमीन और अपने स्वाभाविक परिवेश से काटकर अपने ही घर में शरणार्थी बनने को मजबूर कर दिया। 30 जनवरी सन् 1948 ई0 को गाँधी जी की हत्या ने भारतीय जनता के भविष्य के प्रति विश्वास पर भयानक चोट पहुँचायी। इस घटना चक्रों के दबाव में पुरान मूल्यों का टूटना एवं नयी मन.स्थिति का बनना स्वाभाविक था। उस समय रचनाकारों का ऐसा भी समूह था, जो आपनिवेशिक स्वतंत्रता को अन्तिम लक्ष्य नहीं मान रहा था, क्योंकि उनके लिए पुरानी साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था से इस नयी शासन व्यवस्था में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं था। यह भी सोचा जा रहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता मिल जाने का तात्पर्य यह नहीं था कि भारत के अर्थ तंत्र का ओपनिवेशिक स्वरूप खत्म हो गया है। ब्रिटिश पूँजी वहाँ पर अब भी अड्डा जमाये थी। इसी तरह सामन्ती अवशेष भी बरकरार था। युद्व ने अर्थतंत्र में असतुंलन उत्पन्न कर दिया था। देश के विभाजन के परिणामस्वरूप जिस तरह उत्पादक शक्तियों का विस्थापन और विश्रृंखलन हुआ, उसने परिस्थिति को और भी बदतर बना दिया था। मुद्रास्फीति से रोजमर्रा की जरूरत की चीजों का अभाव, बेरोजगारी, तथा अकाल के खतरे ने जनता में असंतोष पैदा कर दिया।

---

1 आलोचना – 28 पृ0सं0 66

इन परिस्थितियों के उत्पन्न होने का स्पष्ट कारण यह था कि "साम्राज्यवाद के पुराने शासन यंत्र को ज्यों का त्यों अपना लिया गया था। उसी प्रकार की नोकरशाही थी, वही अदालतें थीं, वही पुलिस थी और दमन के तरीके भी वही थे, जिसके परिणामस्वरूप जनता की सही लोकतांत्रिक सत्ता की स्थापना के लिए शुरू किये गये तेलंगाना के ऐतिहासिक संघर्ष के दबाने के लिए नयी सरकार की फोज और पुलिस ने भारत की शोषित लेकिन क्रान्तिकारी जनता पर नये शासन के आरम्भिक तीन वर्षों में बहुत ही बबर्रता के साथ 1982 बार गोली चलाई, 3784 आदमियों को जान से मारा, और करीब 10,000 को जख्मी किया, 50,000 को जेल में बन्द किया और जेलों के अन्दर 82 राजबन्दियों को गोली से उड़ा दिया।"---[1]

सम्यक् दृष्टि से देखने पर पता चलता हे कि तत्कालीन युग यथार्थ इतना जटिल और बदतर हो गया था कि उसे वेज्ञानिक दृष्टि के अभाव में समझा नहीं जा सकता था। एक तरफ जहाँ पर संसद पर तिरंगे झण्डे का लहराना उत्साहबर्धक दृश्य था, वहीं पर दूसरी तरफ वास्तविक जीवन स्थितियों के और भी बदतर होते चले जाने का बोध गेर मार्क्सवादी दृष्टि के कवियों की कविताओं में प्रवृत्तिगत विरोधाभास को उत्पन्न कर रहा था।

"नयी कविता" के इन खेमों के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय की अपनी एक अलग ही स्थिति है। वे समाजवाद से प्रेरित राजनीति में विश्वास करते थे जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना विकास करने का समुचित अवसर प्राप्त हो। सन् 1950 के आस-पास प्रगतिशील लेखक संघ एवं जीवन यथार्थ से बिल्कुल निकट सम्पर्क होने के कारण सहाय की कविताओं में

---

1 भारत ; वर्तमान और भावी - रजनी पामदत्त- पृ0सं0 287-88

सीधे ही सामाजिक यथार्थ आया। लेकिन प्रगतिशील लेखक की गोष्ठियों में स्थापित किये जाने वाले आलोचना के जो प्रतिमान निर्धारित किये गये, उससे सहाय बिल्कुल असहमत थे। परिणामस्वरूप वे प्रगतिशील लेखक संघ से अपने को अलग करके अपने साथी कृष्णनारायण कक्कड़ तथा नरेश मेहता के साथ लखनउ लेखक संघ की स्थापना में शामिल हुए, "जो कि प्रगतिशील विचारों से जुड़ा अवश्य था लेकिन यांत्रिक नहीं था।"---[1]

अपने इन साथियों के साथ मिलकर सहाय ने लखनऊ लेखक संघ का जो परिपत्र तैयार किया था, उसके प्रथम पृष्ठ पर ही उनका कहना था– "सामाजिक विकास में समाज के अन्य सचेत अंगों की भाँति लेखक का भी दायित्व होता है--- आज हमारे समाज में त्रास और कुण्ठा का वातावरण है, और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में लेखकों का कर्तव्य है कि वे पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ जन चेतना के स्वस्थ विकास का प्रयत्न करें। हम मानते हैं कि कलात्मक सृजन का मूल स्रोत सामाजिक वास्तविकता है और परिवर्तनशील सामाजिक वास्तविकता के प्रति जागरूक रहना कलाकार का कर्तव्य है।--- युद्ध शोषण–भय और आतंक समाज के स्वस्थ विकास में अवरोध उत्पन्न करते हैं। लेखकों का कर्तव्य है कि इन्हें उत्पन्न करने वाली शक्तियों का विरोध करते हुए शान्ति, समृद्धि और विचार स्वातंत्र्य का पथ प्रशस्त करें"---[2]

रघुवीर सहाय यह भी स्वीकार करते हैं कि "शमशेर बहादुर का यह कहना मुझे बराबर याद रहेगा कि जिन्दगी में तीन चीजों की बड़ी सख्त जरूरत है– "आक्सीजन, मार्क्सवाद और वह शक्ल जो हम जनता म देखते है।"---[3]

---

1 कल्पना: अगस्त 1965, पृ0 76

2 "लखनऊ लेखक संघ" के परिपत्र का पहला पृ0 4 फरवरी 1950 को स्वीकृत।

3 "दूसरा तार सप्तक" प्र0 1951 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति एवं राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के अन्त का भ्रम प्रयोगशील कवियों के मस्तिष्क में आशा और उत्साह से युक्त बदलाव लाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ, भले ही उपनिवेशवाद से मुक्ति तथा गणतंत्र की घोषणा के बीच की अवधि में देश तरह-तरह की यंत्रणा के भयानक अनुभवों से गुजर चुका था। लेकिन गणतंत्र की घोषणा, नये संविधान के अमल में आने एवं पंचवर्षीय योजना जैसे विकास कार्यक्रमों के आरम्भ ने जनमानस में विश्वास की एक नयी लहर पैदा कर दिया जिससे वामपंथियों के विचारों में नरमी का बड़ा कारण कम्युनिष्ट पार्टी की नीति में आया परिवर्तन भी था। कलकत्ता में पार्टी की दूसरी कांग्रेस में केन्द्रीय समिति ने बी0टी0 रणदिवे के नेतृत्व में तत्कालीन स्थिति को परिभाषित करते हुए यह विचार सामने प्रस्तुत किया था कि- "माउण्ट विटेन योजना में जनता को जो कुछ भी दिया गया है, वह वास्तविक नहीं है, बल्कि एक झूठी आजादी है।"---[1] इसके विपरीत कुछ लोगों ने इस आजादी को वास्तविक आजादी माना। श्री अजय घोष और श्रीपाद अमृत डांगे आदि के लिए भारत की आजादी झूठी नहीं थी। वे लोग आजादी प्राप्त होने के पश्चात् भारत को सर्वप्रभुता सम्पन्न एवं गणतंत्र के रूप में स्वीकार करते हैं।

तत्कालीन भारत सरकार की विदेश नीति वामपंथियों को प्रतिकूल मालूम पड़ी, उन्हीं दिनों जेलों में बन्द अधिकांश कम्युनिस्ट छोड़े गये थे, और बंगाल तथा मद्रास के वामपथी संगठनों पर से बहुत सारे प्रतिबन्ध हटा लिये गये। एक नये संविधान के द्वारा लोकतांत्रिक अधिकारों की गारंटी एवं बालिग मताधिकार के आधार पर निश्चित आम चुनाव ने एक प्रतीक के रूप में जनमानस को लोकतांत्रिक व्यवस्था का बोध करा दिया था, जिसके परिणामस्वरूप इतिहास में सम्मिलित होने वाली शक्तियों को अपना स्थान भी निर्धारित होता

---

1 डाक्युमेन्ट्स आफ द हिस्ट्री आफ द कम्युनिष्ट पार्टी आफ इण्डिया वाल्यूम -7 पृ0सं0 8

दिखाई पड़ा।

संक्रमण के इस नये मोड़ पर सन् 1951 ई0 में प्रकाशित "दूसरा तार सप्तक" की कविताओं पर इस परिस्थिति का प्रभाव स्वाभाविक था। सहाय की कविताएं "दूसरा तार सप्तक" से प्रकाशित होती हुई अनेक कविता संग्रहों के रूप में सामने आईं। आजादी के तुरन्त बाद इन कविताओं का सृजन हुआ है। इसलिए इन कविताओं पर स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात् की बहुत सारी घटनाओं का समावेश है। स्वतंत्रता के हिमायती सहाय ने अपनी कविताओं में स्वतंत्रता के लिए होने वाले हिंसात्मक और अहिंसात्मक आन्दोलनों को प्रमुख स्थान दिया है। सचमुच ! सहाय हमारे सामाजिक–राजनीतिक जीवन के पिछले 40–45 वर्ष के इतिहास की उलझनों से गुजरकर रचनात्मक अभिव्यक्ति के स्तर पर संघर्ष करते हुए उस जगह आ पहुँचे थे, जहाँ कोई कवि फिर से अपने तमाम पिछले अनुभव पर एक बड़ी नजर डालता है।

> "नवयुग की आजादी का, नव युग की आजादी।
> इतने में किसी ने टोककर जैसे डपट दिया
> "देख, सुन, समझ, अरे घर घूस जनवादी।
> चौंक देखा कोई नहीं, सुना केवल ढप्–ढप्
> आँगन में गेहूँ का कूड़ा–फटका रही
> सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी।"———[1]

सहाय अपने बहुत से समकालीनों से इस बात में महत्वपूर्ण भिन्नता लिए हुए थे कि उन्होंने अपनी आधुनिकता और अपने जनतांत्रिक आदर्शों को एक कहावत की तरह नहीं पा लिया था, बल्कि उन्हें अपने रचनात्मक और सामाजिक व्यवहार में बार–बार खोजते, स्थिर करते, बरतते और बदलते हुए

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय प्र0 1960 भारतीय ज्ञानपीठ काशी पृ0सं0 174

अर्जित किया था। रघुवीर सहायक के रचनाशील व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता शायद उनकी सम्पन्न और आत्म प्रबुद्ध जनतांत्रिक संवेदनशीलता ही थी, लेकिन उनकी शक्ति इस बात में नहीं थी कि वे जनतांत्रिक मूल्यों के "पक्षधर" उद्घोषक या वकील थे, बल्कि उनकी विशेषता इस बात में थी कि उन्होंने इन मूल्यों को निर्दिष्ट और इनके पक्ष को परिभाषित मानकर नहीं नकारा, अपितु सबकी सही छानबीन थी, जिसमें कि जनतंत्र एवं समाजवाद की सही भावना समाहित थी।

सहाय के काव्य-संग्रह आजादी के बाद के सम्पूर्ण विवरणों को प्रस्तुत करते हैं। आजादी मिलने के पश्चात एवं सन् 1950 ई0 में जब हमारे देश का संविधान लागू हुआ, उसी के ठीक बाद 1951 ई0 में दूसरा "तार सप्तक" प्रकाशित हुआ जिसमें सहाय ने अपने राजनीतिक तेवर को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। "आत्म हत्या के विरूद्ध" संग्रह में उनका राजनीतिक और सामाजिक विवरण कुछ और ही उभरा हुआ प्रकट होता है। सरकार की नीति एवं उसके कार्यक्रमों, पंचवर्षीय योजनाओं में निर्धारित तरह-तरह के कार्यक्रमों का जहाँ प्रस्तुतीकरण प्राप्त होता है, वहीं पर पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत दबे हुए लोगों का सफल चित्रण रघुवीर सहाय की कविताओं में प्राप्त होता है, जहाँ पर शोषित वर्ग हमेशा शोषकों के शोषण का शिकार बनकर जी रहा है ओर सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा इस शोषित वर्ग की उपेक्षा की जा रही है –

"कितनी दूर कितनी दूर राजधानी से अकाल
मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आयें

संस्कृति की गुद्‌गुदी, करूणा की झुरझुरी बहस की भुखमरी ले आयें, बहस-बहस तहस-नहस दूब हल्दी अच्छत देख आये देवी-दउता का ठाँव पानी बिना सुना

मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आयें
देख आयें दिग्विजय नारायण सिंह ने
क्या किया भोला राम दास का
अलग–अलग खाती–पकाती इस जाति ने
क्या किया जाति पूछने के बाद प्यास का" ---[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन की विरासत से भी रघुवीर सहाय ने अपनी कोई मिथकीय पहचान नहीं कायम किया। उन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष के तमाम जीवित अंशों को सामाजिक जीवन में पहचानने की कोशिश की। सहाय ने यह पता लगाया कि पहले की बहुत सारी परम्पराओं को अलग–अलग सामाजिक शक्तियाँ किस प्रकार से व्यवहार में ला रही है और यह कि इनके जीवन पोषक तत्वों की रक्षा आज किस प्रकार की जा सकती है। यह बात बिल्कुल भुलाई नहीं जा सकती है। कि रघुवीर सहाय के पश्चिमी पश्चिम परस्ती या पश्चिम विरोध या एक साथ दोनों के कुटिल कुचक्र में फँसने के बजाय ठोस यथार्थ की साकार और विवेकपूर्ण आलोचना से ही अपनी दिशा निर्धारित की।

वे मुक्तिबोध के बाद के सचमुच पहले कवि हैं जिन्होंने हमारे समय के गम्भीर ओर सर्वव्यापी संकट की ऐतिहासिकता को इतनी सम्पूर्णता के साथ सामने रखा है। इस संकट का वर्णन बहुतेरे कवि करते हैं। लेकिन रघुवीर सहाय की कविता एक तरह से इस संकट की प्रखर ओर विस्तृत आलोचना प्रस्तुत करती है। वस्तुतः उनकी कविता प्रतिपादित करती हैं कि आखिर क्या–क्या दाँव पर लगा हुआ है और अभी क्या–क्या बचा हुआ है?

भारतीय समाज और राज्य व्यवस्था को फाँसीवादी पुनर्गठन की भूमिका खास तौर पर पिछले बीस वर्षो में जिस तरह बनकर सामने आयी है, सहाय की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध – रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल दिल्ली पृ0 सं0

कविता की एक नजर लगातार उसकी क्रियाविधि पर रही है। इस कठिन दोर में अपमान और व्यथा का भार उठाये हुए भी वह इसकी अन्तरंग कथा को खोलकर कहती रही है –

"चार बुद्विजीवी घास पर बेठे हुए क्रान्तिवार्ता
हर कोई अपने को विद्रोह न करने के लिए फटकारता
अन्त में बचा एक ठस कार्यकर्ता–पार्टी की शक्ति
घर छोड़ आया अपढ़ बच्चों को शहर में विचरता
विचारता किसी दिन एक प्रबल उथल पुथल
बदल देगी कस्बे की चेतना
बड़े कष्ट से में पिछले कुछ बरसों में
अपने को खींचकर लाया था दर्पण तक
उसमें जब देखा, देखी, एक भीड़
मेरी तरह परिया चिकनायें हुए"---[1]

§2§ **रघुवीर सहायकी राजनीतिक चेतना· नेहरूवाद, लोहियावादी, समाजवाद, साम्यवाद, गाँधीवाद :**
एक जनवादी एव समाजवादी कवि होने के कारण सहाय ने तत्कालीन राजनीतिक सामाजिक ढाँचे को समझने का भरसक प्रयास किया है। उन्होंने नेहरू युग को भलीभाँति देखा और उसकी राजनीतिक, सामाजिक बनावट को जिस तरह समझा: वेसे बहुत कम लोग समझ पाये।

"सन् 1950 और 1960 के बीच नेहरू का प्रभाव अपने शिखर पर था। इस दशक में मध्यवर्ग की आकांक्षाएं तेजी से बढ़ने लगीं, पूँजीपति वर्ग की पूँजी पेदा करने वाली मशीने अपेक्षा से अधिक अच्छे परिणाम देने लगीं और शासक राजनेतिक दल का आत्मविश्वास ओर अहंकार बढ़ा। हालाँकि सामान्यजन इस विकास का खामोश दर्शक बना रहा। अपनी आवाज में ही गुम और

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय 1967 राजकमल दिल्ली पृ0 21–22

आत्म सन्तुष्ट नये लेखन में भी यथार्थ और भ्रम के बीच की अथाह खाई को तब तक पहचाना नहीं गया, जब तक कि राष्ट्र को 1962 ई0 में चीन युद्ध का भारी झटका नहीं लगा। बताते है कि आत्म स्वीकृति के अन्दाज में नेहरू ने यह स्वीकार किया कि अब तक राष्ट्र एक स्वप्न में जीवित था और अब आधुनिकता की ओर धकेला गया है"।---[1]

यद्यपि राजनीतिक कर्म के क्षेत्र में आलोचना की गुंजाइश कम होती है, लेकिन सहाय राजनीति को हमेशा एक आलोचक कर्म की तरह देखा। वे आज के पत्रकारों की तरह यथास्थितिवादी राजनीति के फुटकर विक्रेता नहीं थे। उनका अपना एक समाज दर्शन था और इस समाज दर्शन का उन्होंने लगातार विकास किया। उनकी अपनी वह जमीन रही हे जिसमें किसी का प्रवेश निषिद्व नहीं है। मूलतः सेक्युलर अर्थात लौकिक, विवेक सम्मत, द्वन्द्वात्मक मानववादी और लोक तान्त्रिक चिन्तन प्रणाली में विश्वास करते थे। नेहरू की विचारधाराओं से भी वे परिचित थे।" वे नेहरू के बहुत सारे क्रान्तिकारी विचारों से असहमत ही थे। क्योंकि सहाय जी एक समाजवादी जनवादी साहित्यकार होने के कारण समाजवाद को ही प्रोत्साहन देकर तत्कालीन राजनीतिक परिवेश में फेले वेषम्य का डटकर विरोध प्रस्तुत करते हैं।

राजनीति तो उनके काव्य का प्राण है। वह संवेदना के रूप में उपस्थित हुई हे– जेसा कि–

"यही मेरे लोग हैं
यही मेरा देश है
इसी में रहता हूँ
इन्हीं से कहता हूँ

---

1 इण्डिया सिंस इंडेपेंडेंस– सोशल रिपोर्ट – आल इण्डिया –1947 – 1972

अपने आप और बेकार
लोग–लोग–लोग चारों तरफ हैं हमारे तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके दु:ख अपने आप और बेकार"–––[1]

नेहरू की मृत्यु के कुछ दिनों बाद अक्टूबर 1965 में रघुवीर सहाय ने चीन युद्व के सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि– "उस समय साहित्य में खासी खलबली मची थी, उस समय सबको दो चीजों की चिन्ता थी– देश की और नेहरू की। आज नेहरू नहीं है, पर देश है और पहले से ज्यादा मजबूत है, क्योंकि अब उसे सिर्फ अपनी फिक्र करनी है। नेहरू के अवसान के बाद जो हिन्दी कविता लिखी गयी। उसके बड़े हिस्से में सत्ता और व्यवस्था एक अमूर्त प्रत्यय के रूप में सामने आयी है।"[2] किन्तु सहाय जैसे कवि ने सत्ता की संस्कृति के विविध रूपाकारों को शिनाख्त करने की कोशिश की है। हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार प्रेमचन्द की कहानियाँ समूचे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समाजशास्त्र को विश्लेषित करती है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय की कविताएं स्वतंत्रता के बाद के दशकों के समूचे भारतीय परिवेश की, उसमें आर्थिक, राजनीतिक, विकास के विरोधों स युक्त मानव जीवन के समाजशास्त्र की व्याख्या करती हैं। अपने परिवेश की जिन विसंगतियों को सहाय ने उभारने का प्रयास किया है। उसमें व्यक्ति के चारों ओर असंगत व्यवस्था का ढाँचा, भीड़, संसद, चुनाव, मतदान, जुलूस, मंत्री, अकादमी, पुलिस सबको विषय बनाया है। देश के मूर्धन्य राजनीतिज्ञों नेहरू आदि का भी यह रवेया था कि राजनीति में सभी वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व न हो। रघुवीर सहाय की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0 1967 राजकमल दिल्ली पृ0सं011

2 कल्पना अक्टूबर– 1965

प्रखर चेतना ने इसे समझा था, वे लिखते है– "इह लोकिकवाद का सही अर्थ कभी पूरे भारतीय समाज पर लागू नहीं किया गया, क्योंकि सत्ता के स्थायित्व के हित में यथास्थितिवादी राजनीति में एक वर्ग को पिछड़ा बनाये रखना था और विभाजन की विकृत परिणति को ही आजादी बताते रहना था।"[1]

नेहरू ने जिस राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित होकर नये सामाजिक ढाँचे के पक्ष में थे, उसमें अधिकतर उच्चवर्गीय लोगों का ही समावेश था और वे भी बुर्जुआ लोकतंत्र के समर्थक थे, जो सहाय जी को बिल्कुल मंजूर नहीं रहा है। सहाय जी पर पूर्णरूपेण मार्क्सवादी प्रभाव था। आजादी मिलने के पश्चात् एवं भारत में लोकतंत्र की स्थापना हो जाने के बाद, सहाय जी ने उभरे हुए पूँजीवाद का जमकर विरोध किया, एवं पूँजीपतियों के प्रति अपनी कटुता प्रकट की। समाजवादी विचारों से अभिप्रेरित होने के कारण रघुवीर सहाय ने आम जनता के दर्द को समझते हुए राजनीतिज्ञों को अवगत कराने की अपील की। जब स्वतंत्रता प्राप्ति के एक दशक बीत गया, और दूसरा आम चुनाव भी सम्पन्न हो गया और प्रथम पंचवर्षीय योजना ने भी कोई प्रभाव नहीं दिखाया तो उन्हीं दिनों समाजवादी नेता डा0 राममनोहर लोहियों ने जेल से उत्तर प्रदेश के जेलमंत्री को एक पत्र लिखा। जिसमें क्रमशः एक हरिजन पिता और पुत्र की भुख से मृत्यु की सूचना थी। इसके साथ ही पत्र में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू को राष्ट्रहता कहा गया। सहाय इन सभी विचारधाराओं से प्रभावित होकर अपनी कविताओं की रचना करते हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी कविताओं एवं गद्य रचनाओं में कुलीन वर्ग के राजनेताओं एवं शोषकों के प्रति अपना विरोध अभिव्यक्त करते हैं।

राम मनोहर लोहिया के शिष्यत्व में पले बढ़े रघुवीर सहाय, सदेव से समाजवाद के ही पोषक रहे हैं और देश में लोगों के बीच वैषम्य को समूल नाश करने के पक्ष

में रहे हैं। उनकी राय में पूँजीवाद से शोषण एवं अन्याय को बढ़ावा मिलता है। केवल समाजवाद एवं साम्यवाद के द्वारा ही वैषम्य को दूर किया जा सकता है। देश आजाद भले हो गया है, लेकिन वास्तविक आजादी का अनुभव तभी हो सकता हे जब देश में शोषण एवं वैषम्य की स्थिति को पूर्णतया समाप्त किया जाय। रघुवीर सहाय स्वच्छ एवं स्थायी जनतंत्र के पोषक रहे हैं। "आत्म हत्या के विरूद्ध" की भूमिका में रघुवीर सहाय ने लिखा हे– विराट भीड़ों के समाज को बदलने का आज सिर्फ एक ही साधन हे, वह हे सत्ता का उपयोग जो समुदाय का एक–एक व्यक्ति अलग–अलग निर्णयों से हाथों में देता है"---[1]

वे समाजवाद के नाम पर स्वांग करने वाले राजनेताओं के प्रति अपनी तीखी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं–

> "इस नयी सृष्टि में उठती–गिरती है हे कोई चीज दूर
> घर के भीतर एक थुल–थुल राजनीतिक देह में
> जो भी गतिशील है अपनी ओर से जीने के लिए लड़ता है
> अपराधी से आते हैं राज्यपाल, मुख्यमंत्री विधायक
> बख्शे हुए से जाते हैं
> और एक बहुत–बड़े पिजड़े में जोर से चीख मारता है
> एक मोटा सुग्गा
> जैसे उसी में राजा की जान है"---[2]

सहाय जी गाँधीवाद से भी प्रभावित थे। गाँधी के बहुत सारे सिद्धान्तों को आत्मसात करके वे सच्चे समाजवाद के लिए अपनी दलील प्रस्तुत करते हैं, जिसमें अन्याय एवं वैषम्य को समाप्त करके सबको अपने चतुर्मुखी विकास के लिए समुचित

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध की भूमिका– रघुवीर सहाय का वक्तव्य –

2 वही, पृ0 – 36

अवसर प्रदान किया जाता है। वे उस राजनीति के समर्थक थे जिसकी नींव समाजवाद पर टिकी हो और जिसमें हर वर्ग के लोगों को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। अन्याय, अस्पृश्यता एवं शोषण के वे सख्त खिलाफ रहे हैं। इसलिए उन्हें नेहरू जी के भी विचार पसन्द नहीं थे, क्योंकि नेहरू जी की राजनीति में बुर्जुआ लोकतंत्र (कुलीन एवं श्रेष्ठ लोगा का लोकतंत्र) को मान्यता प्राप्त थी, जबकि लोहिया एवं गाँधी जी की राजनीति में सबको बराबर दर्जा प्रदान करने की कोशिश की गयी थी। गाँधी जी का सर्वोदय स्वयं ही समाजवाद की नींव को प्रशंसा करता रहा। लेकिन गेर जिम्मेदार राजनेताओं ने अन्याय एवं दासता को ही प्रश्रय देने का प्रयास किया, परिणामतः समाज में से दो ऐसे वर्ग सामने आये जिसे शोषक एवं शोषित इन दो रूपों में जाना जाता है। शोषक वर्ग ने अपनी नींव मजबूत करते हुए, धीरे-धीरे बहुत सारे आम आदमियों को अपने शोषण का शिकार बना लिया, जिससे शोषित वर्ग क्रमशः बदतर स्थिति को प्राप्त होता गया। इन सबके पीछे राजनीतिक दाँव पेंच की सशक्त भूमिका थी। गाँधी जी ने अन्याय, शोषण एवं अत्याचार का विरोध करते हुए अहिंसात्मक साधनों का प्रयोग किया है। उनका प्रयास बहुत कुछ समतामूलक समाज की स्थापना थी। इन सभी ततत्वों की स्पष्ट छाप रघुवीर सहाय की रचनाओं में प्राप्त होती है। रघुवीर सहाय जनता को अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध खड़े होने के प्रेरित करते हुए लिखते हैं-

"आज ऐसी ताकतें काम कर रही हैं, जो कि आपकी कोशिशों को खत्म कर देती हैं। एक जगह ऐसी आती है जहाँ पर दहशत जिन्दगी का अनिवार्य अंग बन जाता है"---[1]

---

1 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय प्र0 1978 दिल्ली राजपाल एण्ड सन्स पृ0सं0 155

संसद जो लोकतंत्र को कायम रखने की प्रतिनिधि संस्था है, वह हिन्दुस्तान में ज्यादातर गैर जिम्मेदार और भ्रष्टाचारी प्रतिनिधियों से भरा है। जिसमें सर्वाधिक प्रतिनिधि शोषक शासक दल के हैं, जिनके पूर्वाग्रहों और मूर्खताओं के बीच जनता के सही प्रतिनिधियों की आवाज दबा दी जा रही है। भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए है ये सभी प्रतिनिधि संसद में ऐसी बहसों और माँगों से जुड़े हुए हैं, जो अत्यन्त शर्मनाक है-

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं
सभासद भद-भद-भद कोई नहीं हो सकती राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही नहीं का जा सकता
दूध पिये मुह पोंछे आ बैठे जीवनदानी गोद"---[1]

इसी बात को लेकर लेनिन ने भी अपना विचार व्यक्त किया था कि पूँजीवादी लोकतंत्र मे संसद एक गपशप की केवल एक दुकान रह गयी है, जिसमें बातचीत तथा बहस के जरिये आम आदमी को बेवकूफ बनाया जाता है। पेशेवर मंत्रियों और भ्रष्ट सांसदों की व्यवस्था पोषक विशाल पार्टियाँ जनता को मूर्ख बनाने के लिए "संयुक्त मोर्चा का गठन करती है, जिसमें यह देखा जाता है कि बुर्जुआ लोकतंत्र में सत्तापक्ष और बुर्जुआ प्रतिपक्ष दोनों ही जनता की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते हैं-

"दस मंत्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नहीं
काल रोग का फल है अकाल अनावृष्टि का
यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का
ओढ़ने-बिछाने को, धारणकर
धोती महीन सदानन्द पसरा हुआ"---[2]

---

1 आत्महत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय प्र0 1967 राजकमल -दिल्ली पृ0सं0 28

(3) स्वतंत्र भारत में लोकतंत्रः विविध सन्दर्भ :

भारतीय लोकतंत्र को लक्ष्य करके रघुवीर सहाय ने यह प्रतिपादित करने की कोशिश की हे कि बुर्जुआ लोकतंत्र के उपकरणों के दुरूपयोग से उसके ढाँचे में आम जनता शोषण और यातना की आत्यान्तिक स्थितियां से गुजर रही है। सहाय ने ठीक ही लिखा है कि "लोकतंत्र ने हमें इन्सान की शानदार जिन्दगी और कुत्ते की मौत के बीच चाँप लिया है"---[1]

सहाय ने देश की राजनीतिक स्थिति एवं लोकतंत्र की व्यवस्था एवं अव्यवस्था को पहचानने का भरसक प्रयास किया है-

1947 के बाद भारतीय शासन व्यवस्था में "लोकतांत्रिक ढाँचे को शोषक-शक्तियों के हितों से सम्बद्ध रखने का प्रयास किया गया, परिणामस्वरूप जनता के लोकतंत्र को संभव बनाने के सारे प्रयासों को शोषक वर्गो ने विफल करने का निरन्तर प्रयास किया है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व भी राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग के ही कब्जे में था। इसलिए 1947 के सत्ता हस्तान्तरण के बाद राज-सत्ता की बागडोर इन्हीं लोगों ने संभाली। उनकी यही चेष्टा रही कि हिन्दुस्तान में एक ऐसा लोकतंत्र कायम हो पूँजीपाते-जमींदार वर्ग जो सर्वथा हितेषी हो। इस बात को साकार करने के लिए वे लोग भारत के लोक तांत्रिक ढाँचे को पश्चिम के विकसित देशों के लोकतांत्रिक ढाँचे की नकल में रखा। अपनी रचनाओं में सहाय ने लोकतंत्र के नाम पर लोकतांत्रिक संस्थाओं और उपकरणों को भ्रष्ट करने वाले जनप्रतिनिधियों के अश्लील चरित्र का पर्दाफाश करते हुए उस पर प्रहार किया है:

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध -1967- राजकमल दिल्ली, रघुवीर सहाय का वक्तव्य पृ0सं0 8

"सिहांसन ऊँचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुँह बाये बेठे हें लडके सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया सभाकक्ष
सुनो वहाँ कहता है
मेरा प्रतिनिधि
मेरी हत्या की करूण कथा।"---[1]

आज जो भी लाभकारी योजनाएं बनती हैं। उनमें सामान्य जनता की बहुत कम ही भागीदारी होती है। राजनेता भी अपनी अपनी ढपली अपना–अपना राग अलापते है। उन्हें केवल अपने विकास और स्वार्थ की चिन्ता है। सामान्य जनता से उन्हें कुछ लेना–देना नहीं है। सहाय इस विचारधारा के विरोधी रहे हैं, और उनके अनुसार देश में विकास एवं स्थायी सुख शान्ति तभी स्थापित हो सकती हे जब राजनीति में स्थिरता एवं सफल राजनेताओं का चयन करके संसद और विधान मण्डलों में भेजा जायेगा। सहाय जी यह प्रतिपादित करने की कोशिश करते हें कि राजनीतिक हवा देश की प्राण वायु है। उन्होंने यह माना हे कि सफल एवं सच्चे लोकतांत्रिक वातावरण में ही भारत जैसे विशाल देश का विकास सम्भव है। लेकिन जब तक शोषकों एवं पूँजीपतियों द्वारा सामान्य जनता का शोषण होता रहेगा, तब तक भारतीय लोकतंत्र की सार्थकता नहीं सिद्ध हो सकती है। उन्होंने यह भी पुष्टि की हे कि हमारी वास्तविक आजादी तभी चरितार्थ होगी जब हमारे देश के प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक अधिकारों के

---

1 आत्महत्या के विरूद्ध– 1967 – राजकमल दिल्ली, कविता मेरा प्रतिनिधि पृ0 18

प्रयोग का समुचित अवसर प्राप्त होगा। उन्होंने महर्षि "अरविन्द" की इस विचारधारा की संस्तुति की हे कि "राजनीतिक स्वतंत्रता राष्ट्र की प्राणवायु हे।"---[1]

भारतीय लोकतंत्र की अव्यवस्थाओं का विरोध करने के लिए जब कोई जनशक्ति खड़ी होती है तो उसे रोजी-रोटी से वंचित कर देने की धमकी स सत्ता पक्ष सहमत कर लेता है। "सहाय भारत में लोकतंत्र की इस त्रासदी की ओर संकेत करते हैं -

"लोकतंत्र के लिए इससे अधिक क्षयकारी बात ओर क्या होगी कि प्रत्येक असहमति को रोजी-रोटी के अधिकार से वंचित करने का अदृश्य डर दिखाकर दबाया जाय। पर लूटो और जल्दी अमीर हो की संस्कृति को वही लोकतंत्र चाहिए जहाँ 100 प्रतिशत सहमति हो और विवाद सिर्फ लूट के बँटवारे को लेकर हुआ करे।"---[2]

सहाय की कविताएं एवं गद्य रचनाएं नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता के दोर मे लिखी गयी है। फलत· अपने संग्रहों में उन्होंने तत्कालीन जनतांत्रिक चुनावों की तरफ भी संकेत किया हे ओर सरकार की नीति, आर्थिक दृष्टिकोंण एवं सत्ता लोलुप भ्रष्ट नेताओं का पर्दाफाश किया है। अपने को सफल बनाने के लिए राजनेतागण हर प्रकार के भ्रष्टाचार, बूथ केपचरिंग, सच्चे एवं ईमानदार लोगों की हत्या जेसे जघन्य अपराधों को करने से बिल्कुल नहीं चूकते हैं। "अर्थात्" में इस ओर संकेत है- "आम चुनाव के बाद के माहोल में हारे लोगों की परेशानियाँ समझने वालों की बड़ी कमी दिखाई दे रही है, परेशानियाँ

---

1 आधुनिक भारत का इतिहास- विपिन चन्द्र -प्रथम संस्करण (एनसीईआरटी) दिल्ली पृ0सं0 19

2 अर्थात् - रघुवीर सहाय- संपादक-हेमन्त जोशी 1994 राजकमल प्र0 दिल्ली पृ0सं0 131

बताने वालों की इफरात है। "चुनाव में बूथ कब्जा किया गया, वोट पड़ जाने के बाद मत पत्र का डब्बा खोलकर बदला गया, इंका के पास बेतहासा पैसा था, जीप-वीडियो लाउडस्पीकर सब कुछ जबर्दस्त था , हाँ हम भी बँटे हुए थे, मिली-जुली सरकार का विचार किसी वोटर को जमा नहीं, दोस्तों ने वादा-खिलाफी की, सहानुभूति लहर काम कर रही थी हिन्दू वोट हमसे छिनकर इंका के पास चला गया---"[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द ने "अन्धेर नगरी" ओर "भारत दुर्दशा" में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य के बहुत सारे विवरण जिस प्रकार प्रस्तुत करने की कोशिश की है उसी प्रकार सहाय ने आजादी के बाद (जहाँ पर हम अपने को (स्वतंत्र और जनतंत्र में रहने का दावा करते हैं) के शोषण एवं उत्पीड़न के दृश्य को व्यापक स्तर पर उजागर करने का प्रयत्न किया है। यह शोषण अंग्रेजों द्वारा न होकर अपने ही देश के पूँजीपतियों द्वारा किया जा रहा है। सामान्य जन की अपनी कोई पहचान नहीं है। सहाय जी ने सामाजिक परिवर्तन हेतु भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक माना है- "समाज को बदलने के लिए राजनीतिक दल का संगठन, विचारों का संगठन, उसके अनुरूप ऐसे काम जिनसे कि सत्ता का संतुलन समाज में बदलना शुरू हो या बदल जाए- ऐसे राजनीतिक कर्म के अभाव में एक ऐसा आदमी जिसमें सच्चाई को पकड़ने और अपने शिल्प के साथ- उसकी मुठभेड़ करने को अपना कर्म माना है, वह बहुत अकेला अपूर्ण और असहाय महसूस करता है।"---[2]

---

1 अर्थात्- रघुवीर सहाय संपादक हेमन्त जोशी - राजकमल प्र0 दिल्ली 1994 पृ0सं0 17

2 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय - 1978 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली पृ0सं0 104

भय, आतंक एवं अधिकारों क हनन से साधारण एवं समाज का लाचार आदमी दिन प्रतिदिन लाचार ही होता जा रहा है। कहने के लिए वह समाजवादी लोकतंत्र की व्यवस्था के अन्दर है, लेकिन उसकी जिन्दगी का कोई मूल्य नहीं है। वह शोषण एवं अत्याचार का शिकार बनकर जीता है।

"निकल गली स तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तोलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी"---[1]

वास्तव में हमारे लोकतंत्र पर जिन और जेसे लोगों का कब्जा है, और जिस कब्जे की वजह से लोक कल्याण की जगह आतंक लोक की सृष्टि होती है वह रघुवीर सहाय का मुख्य कथ्य था। अपने इस कथ्य के प्रति रघुवीर सहाय का मोह (यह मोह समकालीन कवियों के लिए स्पृहणीय है) इतना जबरदस्त था कि उनकी कविता निरन्तर एक भयभीत कारूणिक ओर मौन संवाद सा करती प्रतीत होती है। हत्यारा रामदास की हत्या करके सीना तानकर निकल जाता है। उसे पकड़ने वाला कोई नहीं है, क्योंकि हमारा लोकतंत्र ही भ्रष्ट और भीड़ तंत्र हो गया है। जहाँ पर अकिंचन असहाय एवं शोषित वर्ग की फरियाद को सुनने वाला कोई नहीं है। रघुवीर सहाय ने समूचे भ्रष्ट राजनीतिक परिवेश के नंगे दृश्य को अपनी कविताओं मे प्रकट करने का प्रयास किया है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि लोकतंत्र की आज मृत्यु ही हो गयी है और सच्चे लोकतंत्र की जहाँ पर सबको प्रतिनिधित्व का अवसर प्राप्त होता है। उनके अनुसार वही सरकार सर्वोत्तम है। जिसमें कि जनता जिसे हम आम जनता या साधारण जनता कहते हैं,

---

1 हँसों-हँसों जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय
पृ0सं0 27

को भी अपना विकास करने का अवसर प्राप्त होता है। वे सच्चे लोकतंत्र की खूबियो को पूरी तरह समझते रहे है। इसलिए यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि भारत में, संविधान के 42वें संशोधन 1976 के तहत एकधर्म निरपेक्ष, समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की गयी है" लेकिन इस गणराज्य के स्वप्न तभी साकार हो सकते हैं जब देश से शोषण एवं विषमता के भाव दूर करके सबके हित पर समुचित दृष्टिपात किया जायेगा।

"हजार कई हजार हजारो मर गये भूख से
ऐसा कहा
इतनी बड़ी संख्या बतायी कि उतनी बड़ी
आड़ हो गयी
कि कोई देख नहीं पाया कि मैं
उनमें नहीं था"---[1]

स्वतंत्रता के पश्चात् आने वाली सरकारों का लेखा जोखा रघुवीर सहाय के काव्य रचनाओं में दिखाई देता है। परिणामस्वरूप उनकी काव्य दृष्टि सरकार की नीतियों से अछूती नहीं रही है, उसका सम्पूर्ण विवरण उनकी कविताओं में देखा जा सकता है। लोकतत्र या जनतंत्र की सफलता एवं स्थायित्व के लिए रघुवीर सहाय ने अपने विचार भी प्रकट किये हैं जिसके पालन से एक स्वस्थ लोकतंत्र की विशेषताएं पूरी हो सकती है। सत्तारूढ़ दल की नीतियों में सुधार के प्रति रघुवीर सहाय का अपना अलग ही सुझाव रहा है, जिसमें उन्होंने स्वार्थ लिप्सा एवं लूट खसूट को त्याज्य बताया है।

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय- पृ0सं0 18

सहाय अपनी कविताओं में मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए संघर्ष करत हुए दिखाई देते हैं। उनके अन्दर जो करूणा की भावना है, उसे वे शंका की दृष्टि से देखते हैं कि कहीं यह दूसरे आदमी की स्वतंत्रता को कम करके खुद अपने को श्रेष्ठ होने के बोध से तो नहीं भर रही है। उनकी इस आत्म शंका की जड़ में उनकी जनतांत्रिक संवेदना सन्निहित है। वे ऐसी विचारधारा वाले कवि रहे हे जो सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के ह्रास पर गहरा शोक प्रकट करता है। वे अपनी पीड़ा को 'पूरा उधेड़कर देखने समझने की कोशिश करते हैं। उनका सोचना है कि अपने को श्रेष्ठ मानकर दिखाई हुई करूणा से लोकतान्त्रिक जीवन मूल्य का क्षरण होता है। उन्हें यह बिल्कुल मन्जूर नहीं है।

सहाय की गहरी जनतांत्रिक संवेदना ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में पूँजीवादी ढाँचे और पश्चिमी आधुनिकतावाद की नकल के कारण पनपती असमानताओं को विभिन्न रूपों और परतों में, देखने सुनने और समझने की कोशिश की है। गैर बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है साथ ही एक वर्ग को अपने को नीचा और हेय मानकर जीने वाला आदमी बना दिया है।"[4] इस विडम्बना को उन्होंने अपनी कई कविताओं में व्यक्त किया है–

"प्राचीन राजधानी अधमरे लोग
वही लोग ढोते उन्हीं लोगों को
रिक्शे में
पन्द्रह लाख आबादी, दस लाख शरणार्थी
रिक्शे वाले की पीठ शरणार्थी की पीठ
एक सी दीखती
बस चेहरे हैं जैसे बलपूर्वक अलग–अलग किये गये
एक बुढ़िया लपकी हुई जाती थी

पीछे-पीछे चुप चलती थी औरत वह बहन थी
आगे-आगे लाश पर पूरा कफन नहीं था
वे उसे ले जाते थे जल्दी-जल्दी जला देने को।"---[1]

भारतीय लोकतन्त्र की गोद मे परिपक्व हुई सहाय जी की कविता भारत जैसे देश में लोकतंत्र की सफलता एवं असफलता के मूलभूत तत्त्वों को प्रकट करती है। यह बिल्कुल अकारण नहीं है कि उनकी काव्य-आत्मा लोकतंत्र के ही इर्द-गिर्द घूमती है। सहाय की कविता के लोकतंत्र में अक्सर एक निम्न मध्यवर्गीय गृहस्थ मतदाता का चेहरा झाँकता है- जो थोड़ा शिक्षित, थोड़ा विनम्र और दब्बू, थोड़ा लड़ने वाला, थोड़ा सामाजिक, थोड़ी राजनैतिक समझ पर राजनीति की तेज आँच से दूर अपनी घर गृहस्थी को साबूत रखने में संलग्न। उनका मानना है कि जनप्रतिनिधि लोकतंत्र के प्रहरी होते हैं। लेकिन रघुवीर सहाय की कविता में जनप्रतिनिधि लोक तंत्र के नायक नहीं खलनायक के रूप में आते हैं। भारतीय लोकतंत्र का यह कटु यथार्थ है जिसे सहाय ने बड़े सांकेतिक ढंग से अपनी कविताओं में उभारा है। स्वाधीन भारत में जिस तरह जनप्रतिनिधियों और सामान्य जन के रिश्तों में अविश्वास और सन्देह की गाँठ जटिल होती गयी हैं, उनके बीच संवाद भी उतना ही संकीर्ण और कृत्रिम होता गया है। "भाषण" राष्ट्रीय प्रतिज्ञा" अधिकार हमारा है" जैसी अनेक कविताओं में सहाय ने जनप्रतिनिधियों के संवाद की कृत्रिम शैली और उनकी राजनीति पर विद्रूप और व्यंग्य के माध्यम से बहुत सशक्त प्रहार किया है।

"हमने बहुत किया है
हम ही कर सकते हैं
हमने बहुत किया है

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय-1975 नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली पृ०सं० 69

पर उतना नहीं हुआ है
हमने बहुत किया है
जितना होगा कम होगा
हमने बहुत किया है
जनता ने नहीं किया है
हमने बहुत किया है"---[1]

रघुवीर सहाय का लोकतंत्र कोई प्रसन्न संसार नहीं है। उनकी कविता में एक हिंसक आहट सुनाई देती है। यह हिंसक आहट गोली या बारूद की अनुगूँज से ही भिन्न है। यह एक स्वाधीन मस्तिष्क और मनुष्य को पराधीन बनाने की नि.शब्द हिंसा है। हिंसा की कई शक्लें हैं। कभी रामदास के साथ शारीरिक हिंसा की घटना घटती है। उसे अपनी हत्या के बारे में पूर्व सूचना है, लेकिन वह अपनी रक्षा के लिए इस लोकतंत्र में कुछ भी नहीं कर पाता है।

"चोड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अन्त समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी
धीरे -धीरे चला अकेले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मोन थे सभी निहत्थेथे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली पृ0 57

2 वही, पृ0 27

इस भारतीय लोकतंत्र में सर्वत्र शोषण का ही भयावह दृश्य व्याप्त है। हत्या, आतक के साथ–साथ जन प्रतिनिधियों की हँसी एक नयी हिंसा का रूप धारण कर लेती है। जो कि सहाय की कविता में मुखरित हुआ है –

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोक तंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके –सब हैं – भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मे सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे"---[1]

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं के साथ ही साथ गद्य रचनाओं में भी लोकतंत्र का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। उनकी आत्म सजग जनतांत्रिक संवेदना अपने वैयक्तिक आचरण में राजनीतिक विषमता को दूर करके सच्चे लोकतंत्र को साकार करने की प्रेरणा देती है। उनकी रचनाएं और जनतांत्रिक मूल्यों का समवाय सम्बन्ध साबित होता है।

अपने कहानी संग्रह "रास्ता इधर से है" कहानी में सहाय ने आदमी को दब्बू और प्रश्नहीन बनाने वाली इस विकृत लोकतांत्रिक व्यवस्था को ओर बारीकी से पकड़ा है। इस लोकतांत्रिक अव्यवस्था का हवाला देते हुए वे यह प्रतिपादित करते हैं कि– "पेशाब घर के इस्तेमाल में भी किस प्रकार ऊँचे और नीचे का भेद काम कर रहा है, उसे बताकर वे एक विचित्र व्यंग्यात्मक स्थिति के जरिये गेर बराबरी

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, कविता "आपकी हँसी" – पृ0सं0 16

पर टिकी इस सम्पूर्ण लोकतांत्रिक अव्यवस्था की परतें उघाड़ते हैं। सरकारी दफ्तरों मे भी ऊँचे ओहदे वालों के लिए अलग पेशाबघर है। सहाय जी भारत जैसे लोकतांत्रिक परिवेश को दूषित ठहराते हुए और गेर बराबरी की इस भावना को त्याज्य एवं हेय बताया है। सहाय जी अपने चिन्तनात्मक निबन्धों में "समतामूलक और शोषण मुक्त कर्म से समृद्ध नये समाज की रचना का उल्लेख एक मोटिफ की तरह बार-बार करते हैं।

"हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन के बुर्जुआ लोकतांत्रिक ढाँचे में शोषित जन निरन्तर उपेक्षित होते चले गये हैं। शासन के वर्तमान ढाँचे से में स्वयं असहमत हूँ, में मानता हूँ कि अगर अपने देश के सन्दर्भ में देखें तो हमारे यहाँ जो शक्ति का ढाँचा बना हुआ है --- ऊपर से नीचे तक इन सबको यानि यह जो पूरी व्यवस्था है, इन सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाव मानते हैं- यानि एक उद्देश्य के लिए नाकामयाब उद्देश्य वही है- समता और मनुष्य के बीच की गेर बराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है"---[1]

§4§ आपात कालीन मुखरता .

देश में आपात काल लागू किये जाने से ठीक पूर्व आने वाले खतरे के जिस दोर को रघुवीर सहाय ने महसूस किया था, वह दोर अब भारतीय जनता के अनुभव को न भुला सकने वाला प्रसंग बन चुका है। सहाय की कविताओं में सत्ता द्वारा दमन के तरीकों, आतंक भरे समाज का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। उन्हें पहले ही आभास हो गया था कि शोषण के द्वारा निरन्तर और भी अधिक वेभव संग्रह करने वाला शोषक सत्ताधारी वर्ग अपने को बचाये रखने के लिए भारतीय जनता के सारे अधिकार छीन लेने वाला है। एक ओर सत्ताधारी वर्ग भोग की संस्कृति में पहले से अधिक लिप्त हो जाने वाला है, जबकि दूसरी ओर भारतीय जनता

---

1 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय- 1978 राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली पृ0सं0 104

"मैं क्या कर रहा था जब में मरा
मुझसे ज्यादा तो तुम जानते लगते हो
तुमने लिखा मैंने कहा था स्वाधीनता
शायद मैंने कहा था बचाओ
अब मैं मर चुका हूँ
मुझे याद नहीं कि मैंने क्या कहा था
जब एक महान, संकट से गुजर रहे हों
पढ़े लिखे जीवित लोग
एक अधिकारी अप: जाति के संकट को दिशा देते हुए
तब
आप समझ सकते हैं कि एक मरे हुए आदमी को
मसखरी कितनी पसन्द है
तब में पूँछूगा नहीं कि सो मोरी गरदने
झुकी है"---[1]

(5) 1975 के पश्चात् भारतीय राजनीतिक स्थिति: विविध प्रसंग:

आपातकाल के दौरान एवं उसके बाद सत्ताधारी वर्ग ने स्पष्ट रूप से कहा कि आज भारतीय लोकतंत्र में प्रतिपक्ष अप्रासंगिक हो गया हे। संसद की बहस प्रकाशित करने पर रोक लग गयी। सेकड़ों लोगों को पुलिस ने मार डाला। पूरा देश जेसे इन्दिरा गाँधी की हिरासत में बन्द कर दिया गया हो। इन भयानक स्थितियों के बीच दूसरों के बोलने पर तो पाबन्दी थी, लेकिन इन्दिरा गाँधी उन दिनों रोज ही यह उद्‌घोष कर रहीं थी कि लोकतंत्र पर खतरा हे। वे लोकतंत्र की रक्षा करना चाहती हैं। लेकिन ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर भी सहाय जी बिल्कुल निराशा में नहीं पड़ते। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो इस लज्जित ओर पराजित दोर में किसी भी कीमत पर अपने को बेचने के लिए तेयार, खुशामदी और चाटुकार लोगों से अलग, स्वाधीन और निर्भय व्यक्ति की तलाश करते हैं, जो इस मानसिकता को पीछे छोड़ आये हों कि वे निर्धन हैं, अत: उन पर दया की

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय- प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र0सं0 7-8

को खुद अपनी जरूरतों के लिए निवेदन के अतिरिक्त कुछ भी कहने का अधिकार नहीं रह जाने वाला था। इन भयावह स्थितियां के बीच भी विडम्बना तो यह है कि सत्ताधारी वर्ग के जिन लोगों न लोकतंत्र के लिए यह खतरा पैदा किया था, वे ही संचार तथा अन्य माध्यमों द्वारा यह दुहराते हुए विल्कुल थकते नहीं कि लोकतंत्र तथा देश पर खतरा उत्पन्न हो गया है। आपातकाल के दौरान यही स्थिति घटित हुई थी।

सहाय जी "आने वाला खतरा" शीर्षक कविता में दहशत और आतंक के माहोल में वास्तविक विरोध करने वाले समानधर्मीकी खोज के लिए व्यग्र है–

"एक दिन इसी तरह आयेगा रमेश
कि किसी की कोई राय नहीं रह जायेगी रमेश
क्रोध होगा, पर विरोध न होगा
अर्जियां के सिवाय –रमेश
खतरा होगा, खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा– रमेश"---[1]

देश में 1975 में आपातकाल की घोषणा की गयी। सहाय जी इस खतरे से पूर्व परिचित थे। आपातकाल क दौरान अपने मौलिक अधिकारों से वंचित जनता न तो विरोध में वक्तव्य दे सकती थी, न सभा कर सकती थी। अखबारों पर सेंसर लागू कर दिया था। दूसरी-न्यूज एजेन्सियों को समाप्त करके सरकारी न्यूज एजेंसी "समाचार" कायम की गयी ताकि सीधा नियंत्रण रहे। तथाकथित आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर देश के दो लाख से अधिक लोग जेल में बन्द कर दिये गये। उन्हें न्यायालय में जाने का अधिकार नहीं था, और यह भी जानने नहीं , और यह भी जानने का अधिकार नहीं कि उन्हें क्यों गिरफ्तार किया गया है। सम्बन्धियों को यह भी खबर नहीं थी कि, वे कहा है –

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिंग दिल्ली पृ0सं0 10

जानी है–

"मरने की इच्छा समर्थ की इच्छा है
असहाय जीना चाहता है
आओ सब मिलकर उसेबस जीवित रखें
सब नष्ट हो जाने की कल्पना
शासक की इच्छा है
आओ हम सब मिलकर,
उसे छोड़ बाकी सब नष्ट करें
सुन्दर है सर्वनाश
वही सर्वहारा के कष्टों को सार्थक करता है
ओर हमारे कष्टो को मनोरजक भी"---[1]

1974 ई0 में स्वाधीन भारत के रामदास का शोषक वर्ग का संरक्षित एलान करके चोराहे पर हत्या करता है। राजसत्ता के फाँसीवादी चरित्र को रामदास की हत्या के वृतान्त से ही भलीभाँति समझा जा सकता है। आपातकाल के बाद सामान्य लोगों को इस शोषण का और शिकार होना पड़ा –

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तोलकर चाकू मारा
छोटा लोहू का फरबारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी
भीड़ ठेलकर लोट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो–देखो बार–बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी"---[2]

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय– पृ0सं0 39

2 वही " " पृ0सं0 28

विहार आन्दोलन के दौरान 7 अप्रेल 1974 को गया में भ्रष्टाचार कुशासन तथा लोकतांत्रिक माँगों को लेकर शान्ति पूर्ण तरीके से धरना देने वाले छात्रों पर पुलिस ने बर्बरता के साथ गोली चलाई, जिसमें 50 लोग मारे गये। 12 अप्रेल को उसने फिर से गोली चलाई जिसमे 12 से भी कम उम्र के आठ लड़के मारे गये। इन लड़कों के साथ मरने वालों में साठ वर्षीय बूढ़ा सुकुल भी था।

"बूढ़े सुकुल का जब अन्त समय आया
गिरते–गिरते उसके शव ने मुँह बाया
साठिआया अपाहिज कुछ समझ नहीं पाया
सुना था जहाँ पर है कन्याकुमारी
दूर उसी दक्षिण से जब पहली बारी
गया आया हिन्दू तो गोली क्यों मारी
आँखे–फाड़े सुकुल यह रहस्य देखता
उत्तर दक्षिण के 36 भये देवता
केन्द्रीय रिजर्व पुलिस भारत की एकता"---[1]

(6) **राष्ट्रभाषा हिन्दी और रघुवीर सहाय** .

आरम्भ से अन्त तक सहाय स्थायी एवं सच्चे जनतंत्र का समर्थन करते रहे। आपातकाल के दौरान हुए अत्याचारों की उन्होंने घोर भर्त्सना की है और अपने जीवन काल तक समस्त अत्याचारों का विरोध करते रहे। यह निश्चित है कि भारतीय पूँजीवाद जिसने सामन्तवाद से समझौता कर रखा है, किसी न किसी प्रकार से अपने को बनाये रखना चाहता है। लेकिन यह संभव नहीं हो पाता है, क्योंकि इतिहास की गति को वह उलट नहीं सकता। उस पूँजीवादी व्यवस्था का विनाश निश्चित है। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने भाषा एवं जातिवाद के भेदभाव को त्याज्य बताया। वे हिन्दी को सच्ची राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते रहे। उनका कहना है कि आज

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय प्र0 1975 नेशनल पब्लिशिंग दिल्ली पृ0 सं0 37

हिन्दी को महज अनुवाद की भाषा बनाकर उसे राष्ट्रभाषा की पदवी दिलाने का दावा करने वाले हिन्दी सलाहकार, सरकारी संस्थानों के मूर्ख हिन्दी अधिकारी तथा जड़ हिन्दी अध्यापक हिन्दी भाषा को अपने जीवनयापन तथा सुख-सुविधा का उपकरण बनाते हुए अन्तत शासक वर्ग के हितों को पुष्ट कर रहे है। परिणामत· भाषा में विकास के बदले सड़न पैदा हो रही है। उन्होंने "हमारी हिन्दी कविता में" यह सत्य सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है-

> "हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
> बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
> × × ×
> कहने वाले चाहे कुछ भी कहें
> हमारी हिन्दी सुहागिन है, सती है खुश है
> उसकी साध यही है कि खसम से पहले मरे
> और तो सब ठीक पर पहले खसम उससे बचे
> तब तो वह अपनी साध पूरी करे"---[1]

हिन्दी को सचमुच राष्ट्र भाषा की हैसियत देने तथा उसके विकास के लिए सार्थक ढंग से प्रयत्नशील होने के सन्दर्भ में कांग्रेसी सरकार कितनी ईमानदार और तत्पर रही है इसका प्रमाण हमें लोकसभा की भाषा सम्बन्धी उस बहस से मिल जाता है जो नवम्बर 1963 को हुई थी। लोकसभा अध्यक्ष के अलावा हनुमतैया, मुहम्मद इलियास राम मनोहर लोहिया, राम सेवक यादव, किशन पटनायक, मणिराम बागड़ी आदि शामिल थे।

लोक सभा में हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं के बारे में सही नीति अपनाये जाने की माँग करने वाले समाजवादी नेता राम मनोहर लोहिया को सम्पूर्ण सत्तापक्ष जिस तरह उस दिन बोलने से रोक रहा था, उससे सत्ता की नीयत स्पष्ट हो

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व - पृ0सं0 71
पृ0सं0 71

जाती है- "अध्यक्ष महोदय, डाक्टर साहब, आप बैठ जाएं, मैं खड़ा हूँ मुझे बात कहने दीजिए।

राम मनोहर लोहिया आपका हुक्म मैं मान सकता हूँ लेकिन अगर इस झुण्ड के हुक्म के साथ-साथ आपका भी हुक्म

अगर होता है तो मैं क्या करूँ (अंतर्बाधाएं)

राम मनोहर लोहिया. हिन्दी कानून में है --- (अंर्तबाधाएं)

मुहम्मद इलियास · बैठ जाओ

मणिराम बागड़ी · शट अप ! तुम कौन होते हो बैठने के लिए कहने वाले

राम मनोहर लोहिया यह सवाल हिन्दी का नहीं है। बल्कि

अंग्रेजी खत्म करने का सवाल है।---[1]

डा0 लोहिया का आग्रह था जो हिन्दी राष्ट्र भाषा होगी, वह इस्तेमाल से जुड़ी हुई हिन्दी होगी। शब्द कोश से लायी गयी नहीं।

रघुवीर सहाय ने हिन्दी भाषा के बनावटी और किताबी स्वरूप को लक्ष्य करके कहा है- "भाषा के ठेकेदार, जो अंग्रेजी की जगह, ठीक उसी प्रकार उसी जगह हिन्दी की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, ताकि हिन्दी भी एक तरह की अंग्रेजी बन जाए"---[2]

---

1 लोकसभा में लोहिया- भाग 2, पृ0सं0 20-23

2 लिखने का कारण- रघुवीर सहाय- प्र0 1978 राजपाल एण्ड संस दिल्ली पृ0सं0 109

देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था और मूल्यों के नष्ट होने की कहानी को रघुवीर सहाय ने आजीवन अपनी कविताओं में स्थान दिया है। अपने "हैं" शीर्षक कविता में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि समाज जितना मरता जाता है, राजा उतना ही जीता और सुरक्षित हो जाता है–

"यह समाज मर रहा है, इसका मरना पहचानों मंत्री
देश ही सब कुछ है, धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुड़ कर सिहांसन भर रह जाय, तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन में कहा जो राजा–प्रजा की दुर्बलता नहीं पहचानता
वह अपने देश को नहीं बचा सकता प्रजा के हाथों से"---[1]

*****

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय पृ0सं0 75

अध्याय – तृतीय

सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ

अध्याय – तृतीय

सामाजिक चेतना और आर्थिक सन्दर्भ

1. सामाजिक वैषम्य – क) खण्डों में बँटा समाज

ख) अभिजात्य एवं साधारण जन, ग) शोषक और शोषित

2. सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास

3. भारतीय औरतों तथा बच्चों का यथार्थ

4. पूँजीवाद का प्रसार और बदलते सामाजिक सन्दर्भ :

क) बुर्जुआ और सर्वहारा, ख) आर्थिक अपराधीकरण: चोर बाजारी, जमाखोरी

5. महानगरीकरण और असहाय आदमी

1 <u>सामाजिक वैषम्य</u> ·

रघुवीर सहाय की कविताएँ सामाजिक दायित्वों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। जिसमें कि समाज के समस्त घात–प्रतिघात प्रतिबिम्बित हैं। एक साहित्यकार के लिए जिन आवश्यक सामाजिक तत्वों का होना आवश्यक होता है, वे सभी रघुवीर सहाय के काव्य में विद्यमान है। समाज की सभी हलचलों को रघुवीर सहाय की रचनाओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक नागरिक के उत्तरदायित्व की भावना से ओत–प्रोत होकर सहाय ने अपने काव्य का सृजन किया है। यही कारण है कि सहाय जी ने समाज में व्याप्त वैषम्य को अपनी रचनाओं का मुख्य विषय बनाया है। समाज में उत्पन्न हुए दो वर्गों (शोषक और शोषित) के बीच वैषम्य की एक गहरी खाई होने के कारण, शोषितों की उपेक्षा के प्रति अपने क्षोभ को प्रकट करते हुए सहाय जी ने शोषकों के प्रति अपनी घृणा एवं आक्रोश को अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपनी कविताओं एवं गद्य रचनाओं को, भीड़, संसद, चुनाव, मतदान, जुलूस, नारा, सड़क, बाजार आदि की बात करते हुए सामाजिक सन्दर्भ में रखने का पूरा प्रयास किया है– मुख्य रूप से आज के मनुष्य के सही सन्दर्भ में। साथ ही साथ वैषम्य की स्थिति के शिकार लोगों को सजग करते हुए उन्होंने कहा है--

"हम ही क्यों यह तकलीफ उठाते जायें
दुःख देने वाले दुःख दें और हमारे
उस दुःख के गौरव की कविताएं गायें
यह है अभिजात तरीके की मक्कारी
इसमें सब दुःख है, केवल यही नहीं है
अपमान अकेलापन फाका बीमारी
हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बातम न हमसे कहिए"[1]

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 109

सहाय के कविता संग्रह "आत्म हत्या के विरूद्ध" की कविताएं व्यक्ति, समाज, संस्था, राजनीति तथा जनतंत्र की पोल खोलती है। समाज के बदलते परिवेश को सहाय की कविताओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। एक सामाजिक कवि होने के कारण एवं समाज के प्रति अपनी गहरी अनुभूति प्रकट करने के कारण सहाय जी ने समाज की विषमता एवं उससे उत्पन्न बदहाली की स्थिति को कुशलतापूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उनकी चेतना आम नागरिक की चेतना बन जाती है; जिसमें समाज का जीता–जागता स्वरूप एवं बदलते परिवेश की झंकार सुनाई देती है–

"यही मेरे लोग हैं
यही मेरा देश है
इसी में रहता हूँ
इन्हीं से कहता हूँ
अपने आप और बेकार
लोग–लोग–लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके बीच सहता हूँ उनका दु:ख
अपनेआप और बेकार"–––[1]

सहाय जी अपने आपको जिन मार तमाम लोगों से घिरा हुआ पाते हैं, जिनके दु:ख से वे दु:खी हैं, वे सभी असहाय होते हुए भी खुश हैं। यह बहुत ही विडम्बना की स्थिति है कि वे लोग एक ही साथ खुश और असहाय हैं वे यह प्रतिपादित करते हैं कि समाज की स्थितियाँ बहुत ही भयावह है और चारों तरफ शोषण एवं उत्पीड़न का नृशंस दृश्य व्याप्त है। ऐसी स्थिति में एवं इस प्रकार की दुव्यर्वस्था के बीच जो लोग पिस रहे हैं वे इसलिए असहाय होते हुए भी खुश दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि उन्हें इस बात की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 11

जानकारी नहीं है कि ऐसी विषम स्थिति को सुधारा भी जा सकता है।

एक सामाजिक कवि होने के कारण सहाय जी ने समाज की दलित, पीड़ित एवं लाचार जनता से अपना सीधा सम्बन्ध रखने का प्रयास किया है, और उनकी लाचारी एवं बदहाली के कारणों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। समाज की पीड़ित जनता दिन प्रतिदिन क्रमश· जिस बदतर स्थिति को प्राप्त होती जा रही है, उसके प्रति सहाय जी ने अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करने का प्रयास किया है–

"कल मैंने उसे देखा लाख चेहरों में वह एक चेहरा
कुढ़ता हुआ और उलझा हुआ वह उदास कितना बोदा
वही था नाटक का मुख्य पात्र
पर उसकी ठस पीठ पर मैंने हाथ न रख सका
वह बहुत चिकनी थी"---[1]

समाज में व्याप्त विषमता से ही लोगों के बीच एक अलगाव की स्थिति पैदा हो जा रही है। उनके अनुसार बढ़ते हुए पूँजीवाद के परिणामस्वरूप समाज में इन दो वर्गो (शोषक और शोषित) का जन्म हुआ है। शोषक वर्ग निरन्तर शोषितों का शोषाण करता जा रहा है, परिणामस्वरूप शोषित वर्ग दिन प्रतिदिन लाचार और पीड़ित होता जा रहा है। उन्होंने इस सामाजिक यथार्थ को सच्चे रूप में प्रकट करने का प्रयास किया है– उनका मानना है कि – "यथार्थ अमूर्त और खोया हुआ नहीं है, बल्कि वह इतना मूर्त और आमने सामने है कि वह उनके लिए अन्वेषण से नहीं बल्कि "समझने" से जुड़ा है"---[2]

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 85
2. लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 33

सहाय शोषकों के प्रति अपना आकोश एवं घृणा प्रकट करते हुए शोषित, दलित एवं समाज के अकिंचन लोगों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट किया है। उन्होंने इन लागों को अपनी रचना का मुख्य वर्ण्य विषय बनाया है, साथ ही उनकी यातनाओं को अपनी रचनाओं में उभारने का प्रयास किया है। "सीढ़ियों पर धूप में" उन्हांने व्यक्त किया है– " जिस मानवीय जीवन के सुख–दुख को, समस्याओं को, यातनाओं और विवशताओं या सफलताओं और महानताओं को हम जानते हैं, उसे व्यापक मानव के सम्बन्ध में बिना किसी विशेषण के मानव के सन्दर्भ में कैसे जाने और ऐसे जाने कि वह जानना कलाकृति हो जाय"---[1]

समाज के लोगों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर चलने वाले सहाय जी ने शोषित जनता के साथ होने वाले अत्याचार के प्रति अपनी विद्रोह की भावना को प्रकट किया है। उनके काव्य संग्रह "आत्म हत्या के विरुद्ध" की कविताओं में उनकी सामाजिक संवेदना, बदलते सामाजिक परिवेश और राजनैतिक ह्रास का भी जीता जागता सबूत प्राप्त होता है, और उनका यह भी मानना रहा है कि विकृत राजनीति के परिणामस्वरूप ही समाज भी पतनोन्मुख होता जा रहा है–

"बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिल–तिल कर मिट गयी
"टूटते–टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जायेगा कि
बीस साल
धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जायेगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला भाला मंत्री

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 230

मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे।
हाय-हाय करता हुआ हाँ-हाँ करता हुआ हें हें करता हुआ
दल का दल पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा"---[1]

सामाजिक विषमता के हर पहलू को सहाय जी ने अपनी रचनाओं में स्थान देने का प्रयास किया है। उनकी सभी रचनाएं इसी विषमता को लेकर आगे बढ़ती हैं। उन्होंने यह प्रतिपादित करने की कोशिश किया है कि समाज की बदहाली के प्रति जिम्मेदार वह तंत्र और नेतृत्व था जिसने आजादी के बाद सामाजिक आधारों को बदले बगैर लोकतंत्र की कल्पना की थी और इस लोकतंत्र के हवाले से उसने जनता की मुक्ति और विकास का झूठा वायदा किया था। लेकिन समय बीतने के साथ ही इस "तन्त्र" के लोकतांत्रिक दावों तथा समाजवादी नारों का असत्य प्रकट हो गया-

"हम सब जानते ये गरीबी क्या चीज होती है
हम सब गरीबी को बिसरा चुके थे
हममें से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चों को तोड़ता
मरोड़ता कुतरता है रोज कम खाना मेरे दो बच्चों को तोड़ता
मरोड़ता कुतरता है रोज-रोज कुछ समझे?
बुझते हुए धीरे-धीरे एक दिन हजार लोग रोज
सहने के अन्तिम कगार पर खड़े हो
भारत वर्ष में फलाँग पड़तें हैं,
व्यक्ति स्वातंत्र्य के समुद्र में कोई धमाका नहीं।"---[2]

रघुवीर सहाय ने यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी विषमता है- वर्ण विभाजन, जिसने अब जातिवाद का रूप ले

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 86
2. वही " पृ0सं0 25

लिया है। इस जातिवाद की विषमताओं को सहाय ने अपनी कविताओं में उभारने का प्रयास किया है। साथ ही उस पर तीखा व्यंग्य किया है। "जाति प्रथा खत्म हो रही है या जमी हुई है, इसके बारे में जिसको सन्देह है, वह दो कसौटियों पर आस-पास की जाँच कर लें।

1 शिक्षित आदमी की मित्र मण्डली म कितनी जातियों के लोग हैं? ऐसे दोस्त जो घर में जाकर खाना भी खाते हैं या परिवार के लोगों के साथ घुल मिल जाते हैं, सिर्फ दो या तीन जातियों के होते हैं - अपनी जाति के ठीक ऊपर की एक-दो जाति या ठीक नीचे की एक दो जाति-इसी दायरे में 99 प्रतिशत शिक्षित लोगों की दोस्त मण्डली सीमित रहती है।

2 भारत के कितने गाँवों में एक कुंए से द्विज और हरिजन मिलकर पानी लेते हैं ? क्या पाँच प्रतिशत भी गाँव ऐसे हैं ?"---[1]

सामाजिक विषमता के सम्पूर्ण विवरण को प्रस्तुत करने के कारण रघुवीर सहाय अपने को सच्चे अर्थो में एक जनवादी साहित्यकार सिद्ध करते है। शोषकों एवं शोषितों के बीच भीषण विषमता के दृश्य को उभारते हुए उन्होंने जहाँ पर शोषितों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट किया है वहीं पर शोषकों के प्रति घृणा के उद्गार को प्रस्तुत करते हुए, कटु व्यंग्य भी किया है। कार्लमार्क्स ने जिस प्रकार शोषितों का करूण गान प्रस्तुत करके शोषकों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है" उसी प्रकार सहाय ने भी शोषकों के प्रति अपने आक्रोश को प्रस्तुत करते हुए सर्वहारा वर्ग का ही समर्थन किया है-

---

1. अर्थात- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 11

उनका कहना है कि वर्तमान आत्यान्तिक अत्याचारों के पीछे पूँजीवाद और सामन्तवाद की सम्मिलित अश्लील चेहरा है उसी चेहरे पर वे प्रहार करते हैं– और व्यर्थ के समाजवाद का पर्दाफाश करने की कोशिश करते हैं-

"बीस बड़े अखबारों के प्रतिनिधि पूँछे पचीस बार
कहे महासंघपति पचीस बार हम करेंगे विचार
आँख मारकर पचीस बार वह, हँसे वह, पचीस बार
हँसे बीस अखबार
एक नयी तरह की ही हँसी यह है"---[1]

सहाय ने अपनी रचनाओं में समाज के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया है। विषमता का उन्होंने खुलकर विरोध किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में "रामसरण" और "रामदास" आदि सभी वर्गो का प्रतिनिधित्व किया है। यह तो वह वर्ग है जो आत्यान्तिक यन्त्रणा और दमन झेलती हुई हिन्दुस्तान की शोषित जनता का वर्ग है। अपनी कविताओं में एवं अन्य रचनाओं में यथार्थ को उसकी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त करने के लिए, उन्होंने बहुत सारे व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग किया है। नामों के द्वारा वे शोषक और शोषित दोनों ही वर्गो के चरित्र को सीधा मूर्त रूप देने का प्रयास करते हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्तिवाचक नामों का इस्तेमाल इस प्रकार किया है कि नाम लेते ही वैसे चेहरे सामने आ जाते है। अपने "नये पत्ते" संग्रह में निराला ने भी गिडवानी, बदलू आहिर लच्छू नाई, बली कहार, झींगुर, मंहगू, लुकुआ, के साथ ही "रामलाल और "रामदास" जैसे व्यक्तिवचाक नामों के द्वारा "मूर्तिमत्ता" और "तथ्यात्मकता" पैदा करने की महत्त्वपूर्ण कोशिश की है।

---

1 आत्महत्या के विरूद्व –रघुवीर सहाय, पृ0सं0 68

"राजकमल चौधरी" ने भी "मुक्ति–प्रसंग" में मंजू हालदार आदि ऐसे व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग किया है, जो समाज के शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिनके साथ अन्याय एवं विषमता की स्थिति जड़ पकड़ चुकी है। सहाय ने बेंचू, मंगरू, ढोड़े, गोबर, आदि का उल्लेख करके शोषितों तथा अन्याय एवं विषमता की जिन्दगी जी रहे लोगों का ही चित्रण किया है–

"पण्डित राजाराम के ठंडे कमरे में
भीड़ का हिसाब हो रहा था
वहाँ मैंने पण्डित जी को
सूंघा
गया वाजपेयी से पूछ आया देश का हाल
पर उढा नहीं सका एक नंगी औरत को
कम्ब रेलगाड़ी में बीस अजनबियों के सामने
बेचू वल्द निरहू, ढोड़े मँगरे पाँचू– गोबरे
पाँच भाई
बैठे थे
जाने कहाँ से न जाने कहाँ को जा रहे थे
डाँड़–भरने के लिए, तीन दिन –तीन रात मैंने सफर किया
तीसरे दर्जे में अन्त में एक भिन–भिनाते कस्बे में पहुँचा
पिछड़े रिश्तेदारों के यहाँ, ढोड़े–मँगरे होरे रास्ते में उतर गये"----[1]

सामाजिक विषमता एवं अन्याय के कारणसमाज का शोषित वर्ग समाज में एक अकेलापन एवं अलगाव की स्थिति में जी रहा है। सहाय उस अकेलेपन की अभिव्यक्ति के साथ ही साथ समाज के उस वर्ग का बेगानापन उघारने की कोशिश करते हैं, जो इस अलगाव के प्रभाव को झेल रहा है। एक समाप्त हुई दुनिया के बाद की जो तात्कालिक दुनिया है, वह इस अलगाव के परिणामस्वरूप "चुरमुराई, पपड़ियाई, चिपचिपाई, तथा बजबजायी हुई सी

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 23

चीज हो गयी है। उसमें रहने वालों का चरित्र मात्र इतना भर रह गया है कि–

"लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगुली खाते हैं
लोग पश्चाताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई प्यार करता है न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं या घमण्ड
दुनिया एक फुँफुदियाई हुई सी चीज हो गयी है"–––[1]

सहाय ने अपनी कविताओं के यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि समाज के अधिकांश लोग एक कुढ़न में अपी जिन्दगी बिता रहे हैं और शोषकों एवं पूँजीपतियों के चंगुल में फँसकर एक असहाय नागरिक की तरह अपना जीवन बिता रहे हं ऐसे कुढ़ते और विराते हुए मार तमाम लोग अगर कुछ नहीं करते, जो उन्हें करना चाहिए तो लोग करते क्या हैं ? उनके कर्म की भूमिका को सहाय ने– "सीढ़ियां पर धूप में" संग्रह की "सभी लुज–लुजे हैं कविता–संग्रह में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं–

"खौखियाते हें, किकियाते हैं, घुन्नाते हैं
चुल्लू में उल्लू हो जाते हैं
मिनमिनाते हैं, कुड़कुड़ाते हैं
झाँय–झाँय करते हैं रिरियाते हैं
टाँय–टाँय करते हैं हिनहिनाते हैं
गरजते हैं घिघियाते हैं
ठीक वक्त पर चीं बोल जाते हैं

जिसका कारण है– सभी लुज–लुजे छैं, थुल–थुल है, लिब–लिब है
पिल–पिल हैं
सबमें पोल हैं, सबमें झोल है"–––[2]

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 139

2. वही " पृ0सं0 140–141

पूंजीवादी व्यवस्था के तहत गरीबी की साया में पिसती हुई जनता निरन्तर पिसी जा रही है। लेकिन उसको इतना प्रतिबन्धित कर दिया गया है कि वह अपने किसी दर्द को न तो किसी से कह सकती है और न तो उसकी फरियाद को ही कोई सुनने वाला है–

> "ऐसे दीन हीन असहाय होके आये है
> कि जैसे कोई चुटकी संवेदना की दे देगा
> ऐसे चिकने बने हों, हट्टे कट्टे घरे हो कि
> तुम्हें कोई कॉंटा कैसे कहाँ और क्यों छेदेगा
> मॉंगने से मिलती नहीं है तुष्टि वेदना की
> कोई बाप तुम्हें झुनझुनिया न ले देगा
> जाओ कोई काम करो, हमें न बेराम करो
> ऐसे ढोंगी मॅंगते को हर कोई खेदेगा"----[1]

सहाय ने विषमता एवं अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करते हुए शोषक शक्तियों का हित साधक "मुस्टंडा विचारक आदि पर सीधा प्रहार करने की कोशिश की है। "मुस्टंडा विचारक" पूॅंजीपतियों का हित साधक है और वह यह उद्घोषणा करता है कि "समय आ गया है" जिसके कारण इस नकली गर्जन–तर्जन के बीच यातना झेलते "रामलाल के कुचले हुए पॉंच के दर्द का कोई महत्व न रह जाय। शोषक वर्ग का हित साधक होने के कारण वह कहता है कि यदि राम लाल के कुचले हुए पॉंव से घिसटकर चलने का अर्थ और सही कारण यदि स्पष्ट हो जाता है तो मुस्टंडा विचारक, मुसद्दी लाल महंत, न्यायाधीश, प्रधानमंत्री तथा नेतराम आदि जो शोषक पूँजीपति, जमींदार वर्ग के हित संरक्षक हैं, वे सब निकाल बाहर कर दिये जायेंगे। यही कारण है कि इनकी सर्वथा

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 145

यही कोशिश रहती है कि ये जिस वर्ग के प्रतिनिधि हैं,उसकी सत्ता बनाये रखने के लिए वास्तविक समस्याओं की समझ और उसके निदान की पहल ही नहीं होने देत हैं और वास्तविक स्थिति को छिपाये रखना चाहते हैं–

"गया एकाएक बाहर जोरों से एक नकली दरवाजा भेड़कर
दर्द–दर्द मैंने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टंडा विचारक–समय आ गया है
कि रामलाल कुचला हुआ पाँव जो घसीटकर
चलता है अर्थहीन हो जाय"---[1]

सहाय की कविता में हर दौर का यथार्थ दिखाई देता है, और उसमें यथार्थ को पहचान सकने लायक औंजार भी मौजूद दिखाई देते हैं। दमन, हिंसा, शोषण, बेकारी, बेगार, नवधनाढ्य, संस्कृति, और सामाजिक उच्छृंखलता के कारण हम सचमुच क्या खो रहे हैं ? इसकी पहचान करवाने में रघुवीर सहाय की कविताएँ बहुत ही सार्थक सिद्ध होती हैं –

"वे हर जमाने में सफल व्यक्ति होते हैं
जो कि पक्ष लेने से पहले तय करते हैं किसको
हत्यारा बताने में लाभ है
यह उन्हें किसी समय तय करना पड़ता है
सिर्फ देख लेते हैं कि कानून किस समय
सबसे कमजोर है
उसी समय मिलकर चिल्लाते हैं चोर–चोर"---[2]

---

1 आत्महत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 86

2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 45

निरन्तर शोषण एवं दमन के कारण सामाजिक परिवेश विकृत हो चुका है और आम आदमी विषमता एवं अन्याय का शिकार बना हुआ है, जिसके कारण कि समाज का अभिजात्य वर्ग उससे नफरत एवं दूरी रखने का प्रयास कर रहा है –

"मैंने कहा डपटकर
ये सेब दागी है
नहीं–नहीं साहब जी
उसने कहा होता
आप निश्चिन्त रहे
तभी उसे खासी का दौरा पड़ गया
उसका सीना थामे खाँसी यही कहने लगी"–––[1]

2. सामाजिक मूल्य चेतना का ह्रास

रघुवीर सहाय पूर्णरूपेण एक सामाजिक कवि रहे हैं। सामाजिक मूल्यों के प्रति उनकी अपनी अटूट आस्था रही है। उन सामाजिक मूल्यों को जीवित रखने के लिए रघुवीर सहाय ने बहुत ही प्रयत्न किया। उनकी रचनाओं में दया, सहानुभूति, ममता आदि सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के प्रति अटूट आस्था दिखाई देती है। इन मूल्यों के प्रति सहाय की अपनी एक अलग छटपटाहट है।उनका मानना है कि इन्हीं सामाजिक मूल्यों के आधार पर ही समाज के ढाँचे की मजबूती का आकंलन किया जा सकता है–

"इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 14

कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं माँगती
और उसे एक बार आँख से आँख मिलाने दो"---[1]

जीवन को विल्कुल स्वाभाविकता में प्रकट करके सहाय ने यथार्थ से साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है। दया, करूणा, सहानुभूति, सच्चा मानव प्रेम, अहिंसा आदि बहुत सारे सामाजिक मूल्यों को आत्मसात् करके सहाय जी ने अपनी रचनाओं का सृजन किया है। सहाय ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना के विकास का संकेत देते हैं। जिन नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को लोगों ने भुला दिया है और संस्कृति की सभी मान्यताओं की उपेक्षा करने का प्रयास किया है। उसकी याद दिलाने की सहाय ने भरसक कोशिश की है-

"सब कुछ लिखा जा चुका है अतीत में
यह आकर मत कहो मुझसे पण्डितजनो
एक बात अभी लिखी नहीं गयी बाकी है
होने को भी बाकी लिखी जाय या न जाय
वह तुम जानते हो क्या ? अपनी रटी बोली में
तुम वह भी बतला सकते होंगे,
क्यों नहीं
विश्वविद्यालयों ने ऐसा कर रखा है प्रबन्ध
यहाँ मैं अकेला एक छोटी सी चीज का
अपने समाज में अर्थ देख रहा हूँ
वहाँ कह रहे हो तुम यह तो होता ही है।"---[2]

---

1. हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 10
2. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 22

न्याय एवं सामाजिक समानता की स्थिति तभी आ सकती है जब कि समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं वैषम्य को समूल नाश करने का प्रयास किया जायेगा। आज यांत्रिकीकरण के इस युग में तथा तज्जनित भौतिकवाद के इस युग में मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों और संवेदनाओं का क्षरण मानव को, "मानव" के पद से अपदस्थ करता जा रहा है। जहाँ कहीं न्याय और समानता की मान्यताएं शेष रहती हैं, लेकिन उन्हे लोग समझ नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में सहाय अपनी रचनाओं में उन मान्यताओं से परिचित कराने का प्रयास करते हैं– उन्होंने न्याय और समता को बचाने के लिए भ्रष्ट संस्कृति को तोड़ने का प्रयास किया है और तोड़ने के लिए, तोड़ने के व्यावसायिक उद्देश्य का विरोध किया है। पीड़ा को पहचानने की कोशिश उन्होंने इस प्रकार किया है कि उसी समय पीड़ा की सामाजिक सार्थकता प्रकट हो जाय। सहाय का कहना है कि आज अन्याय और दासता की पोषक और समर्थक शक्तियों ने मानवीय रिश्तों को समाप्त करने की प्रक्रिया में वह स्थिति पैदा कर दी है कि अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले सामान्य जन मानवीय अधिकार की अपनी हर लड़ाई के लिए असमर्थ सिद्व हो रहे है–

> "कौन आदमी है जो बचा रह जाता है
> हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का
> संसार रचने को सामूहिक हत्याएं करते हैं
> कौन है जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है
> और बचा रहता है
> कौन है वह कि जो बचा तो रहता है
> पर उसकी पहचान नहीं हो पाती है
> और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है
> मार दिया जाता है"–––[1]

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 65–66

मनुष्य की लालसा और स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार को सहाय ने अपनी कविताओं में सफलता पूर्वक अभिव्यक्त किया है। उन्होंने आज के उस रहस्यमय खूँखार चेहरे का एहसास कराया है जिसके अदृश्य पंजे हर व्यक्ति और परिवार को एक करूण त्रास की स्थिति में कैद किये हुए हैं। वह अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कह सकता है और वह जो कुछ भी करता है वह एक दशहत भरी स्थिति में, अन्याय और शोषण को जानते हुए भी शोषित जन विरोध करने की हिम्मत नहीं रख पाता है–

"हँसो तुम पर निगाह रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकिन उसकी कड़वाहट
पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे"---[1]

मर्यदा, स्वाभिमान एवं अपनी संस्कृति से अटूट प्रेम रखने वाले रघुवीर सहाय ने जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एवं अपने अधिकारों का उपभोग के प्रति बहुत ज्यादा प्रयत्नशील रहे। हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता है, लेकिन बदलते हुए इस सामाजिक बदहाली में बहुसंख्यक लोग अपने अधिकारों से वंचित हो गये हैं, जिसके कारण उनकी स्थिति क्रमशः बदतर होती जा रही है। उनकी माँगो की क्रमशः उपेक्षा हो रही है–

"बरसों पानी को तरसाया
जीवन से लाचार किया
बरसों जनता की गंगा पर
तुमने अत्याचार किया

---

1 हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 25

हमको अक्षर नहीं दिया है
हमको पानी नहीं दिया
पानी नहीं दिया तो समझो
हमको वानी नहीं दिया
अपना पानी
अपनी बानी हिन्दुस्तानी
बच्चा–बच्चा माँग रहा है"---[1]

आज के बदलते सामाजिक परिवेश में सहाय का यह विचार है कि सच्चे साामजिक आदर्शो की उपेक्षा की जा रही है। सामाजिक मान्यताओं एवं आदर्शो की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूंजीवादी दुर्व्यवस्था ने सबको अपने चंगुल में कर लिया है, परिणामस्वरूप सामाजिक मान्यताएं एवं सभी आदर्श नगण्य हो गये हैं, इस सामाजिक अव्यवस्था में सामान्य जन का कोई मूल्य नहीं रह गया है। सहाय ने समस्त सामाजिक मान्यताओं को जड़ से पहचानने का प्रयास किया है– "समाज की समझ का मतलब है, समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच जितने गैर इन्सानी रिश्ते हैं, उनकी समझ कहाँ से वे पैदा होते हैं, इसकी समझ और उनकी जड़ों तक पहुँच इतिहास की समझ है।"---[2]

सहाय ने सामाजिक मूल्यों को सर्वथा कायम रखने पर बल दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने व्यर्थ का पोज बनाने वाले कवियों एवं साहित्यकारों का भी पर्दाफाश किया है। वे शोषक एवं पूँजीपतियों के समाज में पलने–बढ़ने वाले कुछ ऐसे लोगों को भी अपनी चर्चा का विषय बनाया है, जो अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए सामाजिक मान्यताओं एवं मूल्यों की अवहेलना करते हैं–

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो, पृ0सं0 6
2 लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 158

"हम जानते हैं कि पतन अनेक रूप धरकर
हमें क्षय कर रहा है
और यह भी जानते हैं कि बदलना तो सब कुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
एक व्यापक बहुआयामी आदर्श और उतना ही स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए
वह नहीं है इसलिए जनता जाग्रत नहीं हो सकती
तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के प्रयत्न
हम करते हैं
व्यापक पतन को विरोध के खण्डों में बाँटकर
और खण्ड
विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है"---[1]

जो समाज पतन की तरफ उन्मुख हुआ है औ जहाँ की संस्कृति विकृत हो चुकी है। जिसमें सर्वत्र अन्याय और असमानता की लहर व्याप्त है, ऐसे समाज के पुर्ननिर्माण हेतु सहाय जी ने अथक प्रयास किया है–

"कभी–कभी दुनिया को फिर से बनाने के वास्ते
कागज पर योजना करता हूँ, कुछ नयी पोशाकें
कुछ नये फर्नीचर, कुछ नये फूल, कुछ कीड़े–मकोड़े
लोग नये खोजता हूँ तो सब वही–वही लोग जुट जाते हैं
बूढ़े बने हुए। वह देखो तीस बरस पहले का यह परिचित
ऐसे अनेक हैं, इस ठहरे चित्र में सहसा बूढ़े हुए जड़ चेहरे"---[2]

सहाय ने समस्त सामाजिक मान्यताओं एवं मानवीय मूल्यों को आत्मसात् करके ही अपनी रचना को आगे बढ़ाया है। जनता के दर्द को बिल्कुल अपना दर्द समझकर, उस दर्द को समूल नाश करने के लिए उन्होंने भरसक कोशिश की है।

---

1. एक समय था –रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ–रघुवीर सहाय, पृ0 46

3 **भारतीय औरतों तथा बच्चों का यथार्थः**

रघुवीर सहाय मानवीय करूणा के कवि हैं। उनकी रचनाओं में यह मानवीय करूणा स्त्रियों और बच्चों की यातनामय जिन्दगी को चित्रित करते समय सर्वाधिक व्यक्त हुई हैं। सहाय का यह कहना है कि–

"इन कविताओं में औरतें और बच्चे ज्यादा इसलिए आते हैं
कि ये मेरे सबसे नजदीक है। और इसलिए भी हो सकता है
कि जिस तरह के मानसिक आध्यात्मिक जुल्म का दर्द में
मैं देखता हूँ सबसे ज्यादा औरतों और बच्चों पर ही
होता है, कम से कम उनके जीवन में प्रकट दिखाई देता है"–––[1]

सहाय ने नारी की सभी स्थितियों एवं समाज में उसके साथ होने वाले अत्याचार को पूर्ण यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सहाय की कविताओं में जो स्त्री और लड़की आती है, वह छायावादी कविताओं की नारी से भिन्न है। छायावादी काव्य की नारी अलौकिक रूप सम्पन्न थी , उसमें उल्लास या प्रेम था, उसमें आशा थी, भावुकता थी, कहीं से कोई दु:ख नहीं था, उसमें कोई विरह व्यथा नहीं थी। सहाय की कविता में जो स्त्री आती है उसे देखकर राहत मिलती है, वह सुन्दर नहीं है, वह विरह में मछली की तरह तड़प नहीं रही है। वह सम्भोग की एक गुड़िया नहीं है, वह तो एक मरती–खपती सच्चाई है। वह दुबली और थकी हुई है उसके बड़े–बड़े दाँत है। वह बच्चा गोंद में लिए चलती बस में चढ़ रही है। वह साथ में दो बच्चे लिए प्रधानमंत्री का पता पूंछ रही है। उसके बाल अब काले नहीं है। वह अपनी जवानी के आरम्भ में ही बहुत कष्ट उठा चुकी है, वह अब थोड़े–थोड़े लगातार स्नेह के बदले एक पुरूष के आगे झुककर चलने को तैयार हो चुकी है–

---

1. लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 164

"ग्रीष्म फिर आ गया
फिर हरे पत्तों के बीच
खड़ी है वह
ओंठ नम
और भरा-भरा सा चेहरा लिये
बदली की रोशनी सी नीचे देखती है
निरखता रह
उसे कवि
न कह, न हँस"---[1]

सहाय की कविता में जो लड़की आती है, वह भी किसी रोमांस के लिए नहीं। वह एक कमजोर लड़की है। भारी बस्ता लिए हुए, काले पावों वाली, जिसकी बाढ़ मारी गयी है और जो डर के मारे अपना दु:ख नहीं बता पाती। सहाय की कविता का यह बोध स्पष्टतः एक अलग संवेदना लिये हुए है। उसका अपना अलग सौन्दर्य है। अपनी अलग जमीन है-

"एक औरत, दो बच्चे, एक गोद एक पैदल
पता पूछती रहती है प्रधानमंत्री का
दस बरस बेदखल हुए उसे हुए पाँच अध पागल
अत्याचार समाचार बन गया, इन्सान का अपमान छपा नहीं
दस बरस मुझे भी जड़ हो गये हुए
अब रह गया सिर्फ उस औरत का खब्त"----[2]

सहाय ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र नारी चेतना को मुखरित करने का प्रयास किया है। वे नारी के अधिकारों के सच्चे हिमायती रहे हैं। उन्होंने समाज की दृढ़ता के लिए नारी के गैर बराबरी जैसे वैषम्य पर अनेक कविताओं में

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 5

2. वही, पृ0सं0 25

तीखा व्यंग्य किया हे। वे पुरूष प्रधान समाज में औरत को भी पुरूषों की कोटि में लाकर खड़ा करने का प्रयत्न करते हैं, जिससे कि नारी भी पुरूषों की तरह अपने अधिकारों का उपभोग कर सके–

"औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं,
पुरूषों जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते हैं उनमें मिठास है
पुरूष गिड़गिड़ाते हैं औरतें सिर्फ थाम लेती हें बेबसी
कोई शरीर नहीं जिसके भीतर उसका दु:ख न हो
तुम जब उसमें प्रवेश करते हो और वह नहीं मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनों के बीच की कोई स्थिति नहीं"---[1]

सहाय ने अपनी रचनाओं में आम जनता की यन्त्रणाओं के साथ ही साथ नारी के यन्त्रणा की भी परिभाषित करने की कोशिश की है, जो इस भ्रष्ट और बुर्जुआ लोकतंत्र की शिकार हैं। वर्तमान सामाजिक स्थितियों के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओं से घिरी हुई है। उसके लिए अधिक चिन्ता करने वाली बात यह है कि वह स्त्री अपनी व्यथा को जानती क्यों नहीं? वह उससे इतना अनभिज्ञ क्यों हैं ? समाज के बदलते परिवेश में नारी के साथ जो अनेकानेक अत्याचार हो रहे हैं, उसे हर तरह से प्रताड़ित किया जा रहा है, इसका सफल दृष्टान्त सहाय की कविताओं में प्राप्त होता है। पुरूषों द्वारा उसके साथ बहुत सारे अपराध किये जा रहे है। बलात्कार, अनावश्यक शोषण एवं सदैव गैर बराबरी का दर्जा जी रही औरतों की दयनीय दशा को सहाय की रचनाओं में देखा जा सकता है–

"नारी विचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है

---

1. लोग भूल गय हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 63

लपक कर – झपककर
अन्त में चित है"---[1]

रघुवीर सहाय केवल यही कोशिश नहीं करते कि सामाजिक यथार्थ को मात्र अभिव्यक्त करके ही छोड़ दिया जाय, अपितु उनकी सबसे ज्यादा कोशिश इस बात की रही है कि संवेदना,के स्तर पर उस यथार्थ की तीव्रतायें महसूस भी कराया जा सके। नि:संदेह इस अव्यवस्था में स्त्रियाँ और बच्चे जिस आत्यान्तिक शोषण, पाशविकता और परवशता के शिकार है, वह स्थिति मानवीय संवेदना को सर्वाधिक उद्वेलित करती है।

इस अर्द्धसामन्ती और अर्द्ध पूँजीवादी समाज में शोषण एवं उत्पीड़न की सर्वाधिक आखेट स्त्रियों को अपनी कविता में लाते हुए, मुक्तिबोध की तरह ही रघुवीर सहाय आत्मदया अथवा व्यर्थ की भावुकता में नहीं फँसते, बल्कि जिन सामाजिक स्थितियों के बीच यह अत्याचार घटित हो रहा है, उन स्थितियों को समझने और बदलने की ओर प्रेरित करते हैं। सहाय ने सदैव ही इस प्रकार के सामाजिक अत्याचार एवं अन्याय का विरोध करते हुए स्त्रियों के साथ व्याप्त वैषम्य को दूर करने के लिए ही प्रयत्नशील रहे।

"कई कोठरियाँ थी कतार में
उनमें से किसी में एक औरत ले जाई गयी
थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
उसी रोने से हमें जाननी थी एक पूरी कथा
उसके बचपन से जवानी तक की कथा"---[2]

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 172
2 हँसो–हँसो–जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 12

कहाँ हैं ? यह प्रश्न गधेपन को वहशीपन के हद तक ले जाने पर ही पूछा जा सकता है। मध्यवर्गीय समाज में इसी का रूप यह वाक्य है, "तू पर-पुरूष द्वारा भोगी जाने के पहले मर क्यों न गई ? दूसरे शब्दों में इसे यों कहा जायेगा, "तूने विरोध में अपना गला क्यों नहीं काट लिया ?"---[1]

सहाय ने औरतों को पुरूषों के समान समान दर्जा प्रदान करने के पक्षधर रहे है और उनके साथ होने वाले अत्याचार का घोर विरोध किया है- "आबादी बढ़ जाने के भय से जो राजनैतिक नेता औरत को बच्चा पैदा करने के नाकाबिल बना देना बहुत सही उपाय बताते हैं, वे अगर औरतों के साथ मिलकर उनकी अपनी देह की आजादी के लिए लड़े तो एक ज्यादा ताकतवर समाज बनेगा ----और औरत लोकतंत्र की सिपाही बनेगी, बच्चा पैदा करने वाली मशीन नहीं"---[2]

डा० राम मनोहर लोहिया ने भी औरतों के प्रति होने वाले अत्याचार को भलीभाँति महसूस किया और उनके दर्द एवं अत्याचार के पीछे राजनीतिक एवं सामाजिक दोनों कारणों को जिम्मेदार ठहराया, इसके साथ ही उसका अन्त करने का भी उन्होंने अथक प्रयास किया-

"सन् साठ के दशक में लोहिया ने यह समझ दी कि स्त्री जाति समाज का सबसे अधिक शोषित वर्ग है और शोषितों के अधिकारों की कोई भी लड़ाई नर-नारी की समता की लड़ाई के बिना पूरी नहीं हो सकती। पर दस साल बाद यानि सन् सत्तर से अस्सी के बीच में जिस तेजी से राजनीति केवल सत्तानीति बनती गयी, उसी अनुपात में स्त्री पर अत्याचार बढ़ता गया-[3]

---

1. अर्थात- रघुवीर सहाय, पृ०सं० 88-89
2. वही " पृ०सं० 89
3. वही " पृ०सं० 96

सहाय ने अत्याचार एवं बलात्कार का शिकार हुई औरतें जिनकी फरियाद प्रशासक भी नहीं सुनता है, उसकी उन्होंने निन्दा की है और ऐसे अत्याचार को समाज के लिए घातक बताया है– "आज किसी भी औरत के बारे में कह दिया जा सकता है कि चूँकि वह पर पुरूष से सम्बन्ध रखती थी, इसलिए उस पर किसी ने बलात्कार किया तो क्या बुरा किया। इसी दृष्टि का यह रूप है कि बागपत में माया त्यागी को सड़क पर नंगा किया तो कौन सा अपराध हुआ, क्योकि वह डकैत थी और पुलिस का यह कथन कि हमने नहीं, जनता ने उसे नंगा किया और भी भयानक है क्योंकि पुलिस सिद्ध कर रही थी कि इस काम में हम और जनता साझेदार हैं"----[1]

ऐसे अत्याचार और अपराध का सहाय ने हटकर विरोध किया है और इसको समाप्त करने के लिए औरतों को एकजुट होकर सामने आने का उनका अपना सशक्त आग्रह है। – "औरतों के ही दयनीय चित्र को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है– "जब मैं औरत को देख रहा था, वह काली और दुबली थी, थोड़ी से झुरायी हुई पर शालीन सलीके से बेंत की कुरसी पर बैठी थी जब वह बोलती थी तो उसके दाँत कुछ मैले पर सब हालाँकि कमजोर दिखते थे। पैरों में जो पट्टियां बंधी थी वे अब मैंने देखी–थोड़ी मैली थी, और मेरी ओर देख रही थी--[2]

---

1 अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 96–97

2. जो आदमी हम बना रहे हैं–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 180

4 **पूँजीवाद का प्रसार और बदलते सामाजिक सन्दर्भ :**

रघुवीर सहाय की सभी रचनाओं में वर्तमान पूँजीवादी अव्यवस्था शोषण एवं उत्पीड़न तथा समाज की बदहाल स्थिति के बीच बदलते हुए मानवीय सन्दर्भ का सफल चित्रण प्राप्त होता है। परिणामतः उनकी रचनाएं पूँजीवादी अव्यवस्था एवं उससे उत्पन्न भयंकर शोषण एवं उत्पीड़न के विरूद्व अपना आक्रोश प्रकट करती हैं– देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा किया जाने वाला अन्याय सहाय की कविताओं का बार–बार विषय बनता है। आज आम जनता के सन्दर्भ में लिये गये निर्णयों में जनता का कहीं कोई वर्चस्व नहीं है। शोषक वर्ग के हितों की सुरक्षा करने वाले, शासन का अत्याचार झेलते हुए आम जनता बार–बार आत्म हत्या की स्थिति में पहुँच चुकी है। इस पूँजीवादी एवं सामन्ती व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य आदमी की कोई पूछ नहीं है। उसके साथ केवल दिन–प्रतिदिन अत्याचार ही हो रहे हैं। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए एवं अपनी सही स्थिति प्राप्त करने से हर मोड़ पर रोक दिया जा रहा है। शासन तंत्र भी इतना भ्रष्ट हो गया है कि वह पूँजीपतियों एवं आभिजात्य वर्ग का ही पक्षधर है। ऐसी स्थिति में देश की बहुत सारी प्रतिभाशाली लोग इस पूँजी बाजार से ऊबकर दूसरे देशों को भी पलायन कर रहे हैं–

"रोज–रोज थोड़ा–थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड
तिल–तिल खिसकता शहर की तरफ
फरमाइशी सम्भोग में सुनो एक उखड़ी सांस की
सांय–सांय इस महान देश में क्या करें कहाँ जायें
घबराते लड़क गदराती औरत लेकर"––––[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 22

शोषण एवं उत्पीड़न की शिकार हुई जनता को समाज का आभिजात्य और पूँजीपति वर्ग गिरी निगाहों से ही हमेशा देखने का प्रयास करता है, जिससे समाज में एक अलगाव की स्थिति पैदा हो रही है। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत पीसते हुए लोगों का सफल चित्रण रघुवीर सहाय की सभी काव्य कृतियों में प्राप्त होता है। सहाय खुलकर पूँजीवादी अव्यवस्था का विरोध करते हैं। संवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय की कविताएं शोषित जनता की पीड़ा का जिस प्रकार एहसास कराती हैं, वह विसंगत यथार्थ को बदलने के प्रयासों से जुड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। इसीलिए उनकी कविताएं शोषित व्यक्ति की आन्तरिक पीड़ा और घुटन के साथ ही उसके अन्दर जीवन की इच्छा की भी कविता हैं। उनकी लम्बी कविता में घुटन के आत्यान्तिक प्रसंगों के बीच "छुओ मेरे बच्चे का मुँह तथा "चिट्ठी लिखते हुए छुटकी ने पूछा" जैसे जीवन से जुड़े हुए रचनात्मक प्रसंग भी है, जो कविता में तनाव से मुक्ति के लिए रखे गये है। जैसा कि –

"छूओ
मेरे बच्चे का मुँह
गाल नहीं जैसा विज्ञापन में छपा
ओंठ नहीं
मुँह
कुछ पता चला जान का शोर डर कोई लगा
नहीं – बोला मेरा भाई मुझे पाँव–तले
रौंदकर, अंग्रेजी
कितना आसान है पागल हो जाना
और भी जब उस पर इनाम मिलता है
नकली दरवाजे पीटते हैं जवान हाथों को
काम सर को आराम मिलता है: दूर
राजधानी से कोई कस्बा दोपहर बाद छटपटाता है

एक फटा कोट एक हिलती चौकी एक लालटेन
दोनों, बाप–मिस्तरी, और बीस बरस का नरेन
दोनों पहले से जानते हैं पेंच की मरी हुई चूडियाँ
नेहरू युग के औजारों को मुसद्दीलाल की सबसे बड़ी देन"---[1]

उनकी कविताओं में जिन मनुष्य विरोधी स्थितियों के प्रसंग आए हैं, उसमें प्रमुखता इस विडम्बना को उघाड़ने की है कि आत्म हत्या और घुटन की वर्तमान स्थितियाँ खत्म हों। इसके लिए समाज के तात्कालिक नेतृत्व द्वारा उद्घोषणाएँ तो की जा रही हैं, लेकिन इन उद्घोषणाओं की छत के ठीक नीचे उन्हीं के द्वारा वे सारे कारण और भी पुख्ता किये जा रहे हैं, जिनसे ये स्थितियाँ पैदा होती हैं–

"मरते मनुष्यों के मध्य खड़ा मक्कार मंत्री
कहता है सविश्वास
सरकार सिंचाई करें
सुनते हैं लड़के, अधेड़ पढ़ते हैं, याद करते हैं बूढ़े
यह विचार, अखबार सीने पर धर जाता है लोहे के
अक्षरों में एक धांस, कोई छटपटाता नहीं ---[2]

बुर्जुआ लोकतांत्रिक ढाँचे के अन्तर्गत पूँजीवादी नेतृत्व, विसंगतियों को खत्म करने के लिए समय–समय पर "समय आ गया है" – कहकर नकली निर्णयात्मक तत्परता दिखलाता है, जबकि यही बात स्वयं कवि अथवा इस कविता का द्रष्टा "दस बरस पहले" काफी पहले ही इसे महसूस करके व्यक्त कर चुका होता है। लेकिन उस समय उसकी कोई सुनवाई नहीं हुई। क्योंकि उस समय

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 86

2 वही " पृ0सं0 21

इस भ्रष्ट नेतृत्व को ऐसा कहने से अपना हित सिद्ध होता नहीं दीख रहा था। लेकिन आज जब केवल नकली आह्वान से अपना हित सिद्ध होता मालूम होता है तो बड़े-बड़े अधिकारी जो कि पूँजीपतियों के सहयोगी हैं वे यह कहते हैं कि अब समय आ गया है। लेकिन सबसे बड़ी बिडम्बना इस बात की है कि जैसे कोई न्यायाधीश जब वह पद पर था तब न्याय की निष्पक्षता को लेकर उसे कोई चिन्ता नहीं थी। न ही उसके पास कोई आह्वान था। लेकिन जब वह पदमुक्त हो रहा है और अपनी उद्घोषणा की दिशा में न्यायाधीश की हैसिंयत से कुछ भी करने के दायित्व से मुक्त है, तब वह निहायंत सुविधाजनक स्थिति में यह नकली काल देता हे कि "समय आ गया है" इस शर्मनाक और नकली नाटक के खोखलपन को सहाय भलीभाँति पहचानते थे-

"हर साल एक और नौजवान घूँसा
दिखाता है, मेज पर पटकता है
बूढ़ों की बोली में खोखले इरादे दोहराता है
हाँ हमसे हुई जो गलती सो हुई
कहकर एक बूढ़ा उठ
एक सपाट एक विराट एक खुर्राट समुदाय को
सिर नवाता है"---[1]

आज शासन व्यवसाय का दौर भी इतना बिगड़ चुका है कि गरीब एवं असहाय जनता के लिए सभी आवश्यक जीचें जुट ही नहीं पा रही हैं। जनता को अपनी चीजों को सस्ते दामों में अन्य देशों को बेचने के लिए मजबूर कर दिया जा रहा है और उसे अपनी आवश्यकता की चीजें बहुत मँहगी कीमत पर खरीदना पड़ता है। फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक असमानता एवं अन्याय

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 28

की एक मजबूत दीवार खड़ी होती जा रही है जिसमें केवल सामान्य और मामूली आदमी ही पिस रहा है –

"हम गेहूँ देंगे
और चीनी भी देंगे
क्योंकि चीनी के खाने का अनुभव जरूरी है
वे अपनी चीनी कुछ पैसों के बदले में हमको दे देंगे
क्योंकि पैसा जरूरी है
उससे खरीदेंगे वे महँगा माल
क्योंकि हमने बताया है कि वह भी जरूरी है
ऐसे सुख–सम्पत्ति चीनी के बहाने बढ़े
तो सस्ते दाम की दुकान ही जरूरी है"–––[1]

चारों तरफ लूट–खसूट एवं शोषण का भयावह दृश्य दिखाई देता है, जिसके कारण मनुष्य के अन्दर निरन्तर एक चोरी की प्रवृत्ति पनपती जा रही है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समाज की उपभोक्ता संस्कृति ने अपनी गिरफ्त में ले लिया है। शोषण का यह नया प्रकार है, जिसे पतनशील पूँजीवाद ने विकसित किया है। वह हर चीज को अपने पक्ष में इस्तेमाल करने का गहरा कुचक्र रच रहा है। सहाय ने देश की व्यवस्था को बिल्कुल दोषपूर्ण बताते हुए यह प्रतिपादित किया है– "मैं मानता हूँ कि अगर अपने देश के सन्दर्भ देखें तो हमारे यहाँ जो शक्ति का ढाँचा बना हुआ है– ऊपर से नीचे तक इन सबको यानी यह जो पूरी व्यवस्था है, इन सबको हम बिल्कुल बेकार और नाकामयाब मानते हैं। उद्देश्य वही है– समता और मनुष्य –मनुष्य के बीच की गैर बराबरी को मिटाने के लिए यह व्यवस्था बिल्कुल बेकार है"–––[2]

---

1 लोग भूल गये हैं – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 82
2. लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 104

बढ़ते हुए चोर बाजारी को सहाय ने पूँजीवादी संस्कृति का पोषक बताया और इस चोर बाजारी में केवल आम जनता का शोषण होता है। निर्धारित मूल्य से अधिक धन वसूल कर सामान्य जनता को दिन प्रतिदिन असहाय करने की प्रवृत्ति का सहाय ने डटकर निन्दा की है। पूँजीपति वर्ग चोर बाजारी के अन्तर्गत अधिक से अधिक धन कमाने के चक्कर में पड़कर आम जनता का शोषण करने के पीछे लगा रहता है– जिसको सहाय ने अपनी रचनाओं में प्रकट करने का प्रयास किया है। चारों तरफ घूँसखोरी और रिश्वतखोरी के परिणामस्वरूप आम जनता का कोई अस्तित्व ही नहीं।" एक स्थल पर वे लिखते हैं– "उत्तर प्रदेश के निर्वाचित एक निर्दलीय सदस्य ने इस बहस में एक बहुत उम्दा बात कही। उन्होंने ने कहा: "आज से तीस साल पहले जब किसी को रिश्वत लेने का लालच दिया जाता था। तो वह कहता था, "न साहब, रिश्वत मैं न लूँगा, मेरे आगे बाल बच्चे हैं। आज जब वह रिश्वत लेता है तो कहता है– "क्यों न लू साहब! मेरे आगे बाल–बच्चे हैं"---[1]

रघुवीर सहाय सदैव घूस खोरी एवं इस चोर बाजारी अव्यवस्था के विरूद्व रहे हैं। उनकी रचनाओं में इस धधकते पूँजीवाद एवं चोर बाजारी के प्रति एक बिद्रोह का भाव ही दिखाई देता है। अभिप्राय यह है कि सिर्फ यथार्थ चित्रण ही नहीं, बल्कि इस भयावह यथार्थ के उत्पन्न होने के कारणों को खोजकर रचनाकार द्वारा उस पर प्रहार भी किया गया है। वास्तविकता यह है कि भारतीय पूँजीवाद जिसने सामन्तवाद से समझौता कर रखा है, किसी न किसी तरह अपने को बनाए रखना चाहता है। वह अब भी लोकतंत्र का ढोंग करता है, लेकिन जब भी जनता बड़े पैमाने पर अपने अधिकारों के लिए

---

1 दिल्ली मेरा परदेस, रघुवीर सहाय, पृ0सं0 12

जागरूक होती है, यह बुर्जुआ लोकतंत्र अपना नकली मुखौटा उतारकर फाँसी प्रवृत्तियों के साथ जन अधिकारों के लिए प्रस्तुत हो जाता है–

"यह समाज मर रहा है, इसका मरना पहचानों मंत्री
देश ही सब कुछ है, धरती का क्षेत्रफल सब कुछ है
सिकुड़कर सिंहासन भर रह जायें तो भी वह सब कुछ है
राजा ने मन में कहा जो राजा प्रजा की दुर्बलता नहीं पहचानता
वह अपने देश को नहीं बचा सकता प्रजा के हाथों से
यह समाज मर रहा है, नकल अपनी ही नकल करता जा रहा है"---[1]

रघुवीर सहाय की कविताएं इस संकटग्रस्त पूँजीवाद को अन्तिम रूप से दफन कर देने के लिए विरोध में उठे हुए हाथ की तरह हैं। कवि के लिए यह आवश्यक है कि मुक्ति के लिए प्रयत्नशील भारतीय जनता के सामूहिक संघर्षो के और भी मोर्चों को अपनी कविता की दुनिया में लाकर उसे विस्तृत करने की प्रक्रिया में तीव्रता लाए।

पूँजीवाद जो आज धरती पर "मानवता के विरूद्ध" अपराधी, घोषित होकर शब्दकोश का सबसे घृणास्पद शब्द बन गया है, इसे शोषित लोग अपनी दुनिया और अपने शब्द कोश से निकाल बाहर करना चाहते हैं। इन शोषित संघर्षकारी जनों के लिए रघुवीर सहाय निरन्तर पथ प्रदर्शक के रूप में काम करते रहे। चारों तरफ भ्रष्टाचार एवं बेईमानी इस हद तक पहुँच गयी है कि समाज में सामान्य मनुष्य का अस्तित्व बिल्कुल खतरे में पड़ गया है। चोर बाजारी,

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 75

नकलीपन और धोखाधड़ी का बढ़ता रूख समाज को बदतर बना रहा है। पूँजीवादी संस्कृति ऐसा विकराल रूप धारण करती जा रही है। कि शोषण का शिकार होते लोग क्रमशः मृतक के समान होते जा रहे हैं यही कारण है कि समाज का परिवेश भी एक दूषित वातावरण का रूप धारण कर लिया है। परिणामस्वरूप एक लाचार एवं ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मार खा रहा है। वे लोग जो पूँजीवादी संस्कृति और शोषकों के समूह से सम्बन्धित हैं, उन्हें इस लाचारी एवं शोषण की नीति में आनन्द का अनुभव होता है। वे उसी आनन्द को अपनी जिन्दगी का वास्तविक आनन्द समझते हैं–

"लोगों को जब मारो तो वे हँसते हैं
कि वाह कितना मेरा दर्द पहचाना
बहुत दिन हो गये जिनसे मिले हुए
उनमें से बहुत से अब मिलने के काबिल नहीं रहे
वे इतने बूढ़े हो चुके हैं कि उन्हें अब भविष्य के
किसी मसले पर मुझसे कोई बात करने को
नहीं रह गयी है, वे क्रोध में कहते हैं कुछ अनर्गल जो
मैं समझ पाता नहीं सत्य या असत्य है
जब मैंने कहा कि यह फिल्म घातक है
इसमें मनुष्य को झूठा दिखाया है
तो प्रधानमंत्री नाराज हुए यह व्यक्ति मेरे विरूद्ध है----[1]

पूँजीपति एवं शोषकों के निरन्तर बढ़ते अत्याचार से आम जनता का जीवन सदैव संकट में पड़ गया है। लेकिन इस संकट से उबरने के लिए चाहकर भी वह नहीं उबर पा रहा है। निरन्तर पूँजीपतियों एवं शोषकों द्वारा वह इतना कसकर दबा दिया जा रहा है कि उसे अपना सर उठाने तक अवसर नहीं दिया जा रहा है। वह केवल घुटन एवं एक असहनीय पीड़ा का शिकार होकर अपनी जिन्दगी बिता रहा है–

---

1 हँसो हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय ,पृ0सं0 67

"ताकतवर लोग खोजते हैं कमजोर को
एक तरफ अस्पताल, झोगड़ी, हजार वर्ष से
वंचित जाति वर्ग लाश जुटे लोग
ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दें और
दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
कागज पर उनकी तसवीरें आकें
जन के मन भय भरें"---[1]

पूँजीवाद ने आम जनता की स्थिति इस प्रकार कर दिया है कि उसके सामने आत्म हत्या करने की नौबत आ गयी है। वह एक भयंकर "सफरिंग" के दौर से गुजर रही है। उस सफरिंग का यद्यपि उसे एहसास है, लेकिन ज्यों ही वह उस सफरिंग के विरूद्व खड़ा होने का प्रयास करती हैं, त्यों ही उसे इतना भयंकर रूप से दबा दिया जाता है कि शोषकों एवं पूंजीपतियों के सम्मुख उसे कुछ बोलने की हिम्मत नहीं रह जाती है। लेकिन बाद में आगे चलकर आम जनता इस भयानक तांडव से लड़ने का प्रयास करती है-

"हम जानते हैं कि पतन अनेक रूप धर कर
हमें क्षयकर रहा है
और यह भी जानते हैं कि बदलना तो सबकुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
कार्यक्रम चाहिए।
वह नहीं है, इसलिए जनता जाग्रत नहीं हो सकती
तब जनता को सिर्फ उत्तेजित करने के प्रयत्न
हम करते हैं
व्यापक पतन को विरोध के खण्ड़ों में बाँटकर
और खण्ड
विरोध को अकेला और भ्रष्ट करता जाता है"---[2]

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 38
2. एक समय था- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27

बढ़ती हुई चोर बाजारी एवं पूँजीवादी अव्यवस्था के कारण जनजीवन बहुत ही संकट में पड़ गया है, जिसके कारण लाचार एवं असहाय व्यक्ति को इस दोर में किसी प्रकार का कोई स्थान नहीं मिलता है। हिन्दुस्तान का लोकतंत्र ही भ्रष्ट तंत्र हो गया है, जिसके कारण इस प्रकार की अव्यवस्थाएं सशक्त होती जा रही हैं और पूँजीवाद के शोषण का शिकार जनता तरह–तरह की यातनाएं झेल रही है। अत्याचार, घूसखोरी एवं शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा है। सहाय ने चोर बाजारी, वस्तुओं के साथ अनावश्यक मिलावट साथ ही साथ अनावश्यक रूप से चोरी का धन कमाने वालों की निन्दा की है एवं उन्होंने ऐसे लोगों को समाज राज्य तथा देश की अन्य जनता के लिए घातक बताया है। उनका यह भी कहना है कि देश का भ्रष्ट तंत्र जिसमें कि शासक वर्ग एवं राजनेता अपनी झोली भरने के पीछे उतावले हो गये हैं, वे कभी भी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को स्थायी एवं हितकारी रूप नहीं दे सकते। वे इस अव्यवस्था के अन्तर्गत केवल अपना हित सिद्ध करना चाहते हैं भले ही औरों का कितना भी अहित क्यों न हो? पूंजीवादी समाज के अन्तर्गत कोई भी चीज ऐसी नहीं रह गयी। जिसे मनुष्य अपना कह सके।

पूँजीवादी संस्कृति के साये में पीसती हुई जनता अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों को कायम करने में असमर्थ है। पूँजीवाद और चोर बाजारी सम्पूर्ण आर्थिक परिवेश को विकृत कर दिया है जिसमें कि समाज का सामान्य आदमी हर मोड़ पर परेशान हो रहा है। ऐसी विकृत अव्यवस्था के अन्तर्गत सहाय ने जनता के दर्द को पहचानने की कोशिश की है–

"दु.ख में, दु.ख में भी अन्तर है, जो सहने वालों में है
एक खुले घावों में है दु:ख, एक पके छालों में है
उस दु:ख से क्या लेना देना जो मरने वालो में है
हम उस दु.ख के अन्वेषक हैं जो जीने वालों में है"---[1]

5 **महानगरीकरण और असहाय आदमी** :

आज के बदलते परिवेश में जहाँ महानगरीकरण का जोर है बहुत सारे छोटे छोटे नगरों को एक महानगर में परिणत कर दिया जा रहा है, फलस्वरूप चारों ओर अशान्ति का दौर ही दिखाई दे रहा है। इस अव्यवस्था में मनुष्य अपने को बिल्कुल निर्बल एवं असहाय पाकर स्वयं अपनी सुरक्षा के लिए परेशान है। सहाय इस मत से बिल्कुल सहमत हैं कि सन् 1950 और 1960 के बीच नेहरू का प्रभाव अपने शिखर पर था। इस दशक में मध्यवर्ग की आकांक्षाएं तेजी से बढ़ने लगी। पूँजीपति वर्ग की पूँजी पैदा करने वाली मशीनें अपेक्षा से अधिक अच्छे परिणाम देने लगीं और इसी के कारण सत्तासीन राजनैतिक दल का आत्मविश्वास और अहंकार बढ़ा। क्रमशः मनुष्य को तरह-तरह के रोजगारों में काम के लिए जो हिस्सा मिलता था वह भी औद्योगिकीकरण के कारण हाथ से निकल गया। यह भी निश्चित ही रहा कि सामान्य जन इस विकास का खामोश दर्शक बना रहा। क्रमशः महानगरीयकरण की स्थिति बढ़ती गयी, जिसके कारण मनुष्य क्रमशः असहायता के घेरे में आता गया। सहाय की रचनाएं तत्कालीन सामाजिक आर्थिक परिवेश को सफलतापूर्वक चित्रित करती हैं जो कि किसी रचनाकार के लिए अनिवार्य होता है, जैसा कि उमाशंकर जोशी ने प्रतिपादित किया है-

---

1. सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 114

"प्रत्येक कविता किसी न किसी रूप में आह्वान का जवाब है। कवि की संवदेक शक्ति जीवन को, वह जैसा भी है, ध्वनित करती है"---[1]

1962 के चीन युद्व के झटके से पूर्व नये लेखन में यथार्थ और भ्रम की खाईं को पहचाना नहीं जा सका था। दूसरी बात यह भी थी कि नेहरू के ऐतिहासिक आत्म स्वीकार का उल्लेख भी महत्त्वूपर्ण था, क्योंकि उस समय देश एक स्वप्न में जीवित था, वह स्वप्न काफी सीमा तक नेहरूवाद से जुड़ा हुआ था जो कि औद्योगीकरण के समर्थक रहे हैं। रघुवीर सहाय "हमने यह देखा" कविता में यातना और शोषण को नियति मानकर उसका वर्णन ही नही करते, बल्कि प्रश्न पूछते है-

> यह तो है ही शुभ चिंतक यों कहते हैं।
> अपमान अकेलापन, फाका बीमारी
> क्यों है और वह सब हमही क्यों सहते हैं?
> हम ही क्यों यह तकलीफ उठाते जाँय
> दु.ख देने वाले दुःख दें और हमारे उस दु.ख के गौरव की
> कविताएं गाएं"---[2]

रघुवीर सहाय ने अपनी कविता "व्यथा" में इन दुःखों को समग्रता में देखने की कोशिश की है- "कौनसा दुःख तुम्हें प्रियवर सालता है?" के जवाब में वे कहते हैं कि-

> "कहूँ क्या ? - विरह की ज्वाला, गरीबी, भूख
> दिल का दर्द" अथवा दाँत का ?
> न । यह पलायन है व्यथा को एक दुःख में देखना"---[3]

---

1. दिनमान- 7-14 जुलाई, - 1965
2. सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 107
3. वही " , पृ0सं0 133

रघुवीर सहाय इस पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषित लोगों के जिस दर्द को प्रकट करने की कोशिश करते हैं, वह समग्र दर्द जिन्दगी के उखड़ेपन से जुड़ा हुआ है।

"नई कविता" के अन्तर्गत आत्म परायेपन के मूल में" यह उखड़ापन भी है। लेकिन रघुवीर सहाय में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे इस कविता में महज उखड़ेपन के दर्द का बयान ही नहीं करते है, बल्कि इस दर्द से मुक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग रखते हुए कविता का अन्त करते हैं–

"हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेगें जीवन
"कम से कम" वाली बात न हमसे कहिए"---[1]

मनुष्य विरोधी सामाजिक स्थितियों को बदलने के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय की यही दृष्टि अरचनात्मक नहीं होने देती, और उन्हें नई कविता के दूसरे पीड़ावादी कवियों से अलग करती है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "मेरा एक जीवन है" कविता में "हाहाहूति नगरी" के अकेलेपन" की चर्चा के बाद अत्यन्त विश्वास से कहते हैं कि "सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार। सभी मुझे करेंगे– दो चार को छाड़– कभी न कभी प्यार।"---[2]

महानगरीकरण के चकाचौंध में सामान्य जनता की पूर्णतया उपेक्षा की जा रही है और उसे हर प्रकार से शोषित एवं प्रताड़ित किया जा रहा है। परिणामस्वरूप

---

1 सीढ़ियों पर धूप में: रघुवीर सहाय, पृ0सं0 109

2. वही " पृ0सं0 88

उसका अस्तित्व हमेशा खतरे में है। इतना ही नहीं, उसके अधिकारों को छीनकर एवं उसे इस प्रकार प्रतिबन्धित कर दिया जा रहा है कि समाज में उसे अपने हक एवं अधिकारों की माँग करने का भी अवसर नहीं पाप्त होता है। जिसके कारण उसकी दशा बिल्कुल दयनीय और चिन्तनीय हो जा रही है। पूँजीवाद ने मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों को मनुष्य और वस्तु के बीच के सम्बन्धों में बदल देने की परिस्थितियाँ पैदा कर दी है। जिसके कारण हर मनुष्य आज के बदलते युग में केवल अपना स्वार्थ सिद्व करने में लगा है। महानगरीयकरण के युग में क्रमशः मनुष्य की सहायता और स्वयं उसका अस्तित्व संकट में पड़ता जा रहा हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दौर में क्रमशः सामान्य आदमी शोषण एवं उत्पीड़न का शिकार होता जा रहा है। रघुवीर सहाय की कविताओं में सम्पूर्ण रूप से शोषित आम आदमी का यथार्थ विवरण प्राप्त होता है। इस शोषित आम आदमी को रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में कभी असहाय होते, कभी दहशत और आतंक के बीच मजबूरी में मुस्कराते, कभी यातनामय परिस्थितियों के बीच घिरकर जीने से इंकार करते हुए आज के समय के उस भयानक मनुष्य विरोधी यथार्थ का दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं। रघुवीर सहाय के सभी कविता संग्रहों में यह भयानक मनुष्य विरोधी यथार्थ बहुत ही जटिलता और आत्यान्तिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। "आत्म हत्या के विरूद्व" की अधिकांश कविताओं में बाहरी दुनिया की उपस्थिति ज्यादा है, भीड़, बने हुए मार तमाम लोग विडम्बनाओं के शिकार हो रहे हैं। व्यवस्था की विसंगतियों के विरूद्व कवि का इरादा एक बार जानबूझकर चीखने का है। इसके साथ ही उसे यह विश्वास भी है कि कुछ होगा अगर वह बोलेगा—

"हँसों तुम पर निगाहर रखी जा रही है
हँसो अपने पर न हँसना क्योंकि उसकी कड़वाहट

पकड़ ली जायेगी और तुम मारे जाओगे
ऐसे हँसो कि बहुत खुश न मालूम हो
वरना शक होगा कि यह शख्स शर्म में शामिल नहीं
और मारे जाओगे"---[1]

इस प्रकार पूँजीवाद के बढ़ते आतंक से मनुष्य निरन्तर असहाय और निर्बल होता जा रहा है, जिसमें कि उसे निरन्तर एक बढ़ती हुए पीड़ा को सहन करने का ही अवसर मिल रहा है।

*****

---

1 हँसो-हँसो-जल्दी हँसो - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 25

अध्याय – चतुर्थ

मानवीय मूल्य

अध्याय – चतुर्थ

मानवीय मूल्य

1. मानवीय मूल्यों के ह्रास के प्रति चिन्ता
2. मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ
3. मानवीय भावों के महत्त्व की स्थापना– करूणा, सहानुभूति, प्रेम, विश्वास, ईमानदारी।

मानवीय मूल्यों के ह्रास के प्रति चिन्ता :

रघुवीर सहाय अपनी स्वाभाविक संवेदनशीलता एवं मानवीय मूल्यों के सहज पारखी होने के कारण हिन्दी साहित्य में चर्चित रहे हैं। व्यक्ति, समाज एवं सम्पूर्ण मानवता के चतुर्दिक विकास के लिए उन्होंने मानवीय मूल्यों के महत्त्व को स्वीकार किया है। मानवीय मूल्यों के द्वारा ही व्यक्ति का व्यक्ति के साथ, व्यक्ति का समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ एक तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित होता है जैसा कि–

तब यह लिखा हुआ पढ़कर सुना देना
कहना, यही सत्य मेरा यथार्थ है
क्योंकि इस दुःख का मैं भागीदार हूँ
यह मेरा ज्ञान इतिहास का सत्य है
तथ्यों की भूल के कारण भी झूठ न हो जायेगा
उन सारे कारणों को हम सवाँर दे तर्क से
तो अत्याचारों को सहने का वह अनुभव
व्यर्थ न हो जायेगा।"[1]

रघुवीर सहाय सच्चे अर्थो में मानवीय मूल्यों के कवि रहे हैं। उन्होंने मानवीय मूल्यों के अस्तित्व को सतत स्वीकार किया है। उनकी मानवीय मूल्यों की चेतना, चेतना के अत्यन्त गम्भीर तलों को स्पर्श करती है। इसके साथ यह भी सिद्ध होता है कि रघुवीर सहाय में मानवीय सन्दर्भो से जुड़ने की सुसंस्कृत चेष्टा सर्वत्र विद्यमान है–

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय पृ0सं0 2

"सारे संसार में फैल जायगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे दो चार को छोड़ कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन कर्म कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थापनाएं
और मेरे उपार्जन, दान–व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा का तन्त्रीनाद–कवित्त रस में राग में – रंग में
मेरा यह ममत्व"---[1]

रघुवीर सहाय का सम्पूर्ण काव्य जगत सांस्कृतिक मान्यताओं एवं विचारों को आत्मसात् करता हुआ आगे बढ़ता है। उनकी संवेदना मानव के बिल्कुल निकट और सहज सिद्व होती है, जिसमें सम्पूर्ण मानवता का दु:ख एवं दर्द प्रतिबिम्बित होता है। यही कारण है कि उनकी संवेदना में जीवन के घात–प्रतिघात का भी सफल चित्रण प्राप्त होता है –

"जिस सच को हमने खोजा था
उतने थोड़े से अनुभव में
कुछ और जिन्दगी जी आये
उस एक सच्चाई की रौ में"----[2]

मानवीय मूल्यों के सतत हिमायती सहाय ने एक सशक्त समाज की स्थापना के लिए मानवीय मूल्यों की उपयोगिता को सर्वथा स्वीकार किया है। जीवन के समस्त घात–प्रतिघातों एवं उतार–चढ़ावों को अपनी कविताओं में महत्त्व देते हुए, उन्होंने जीवन को एक नयी दिशा देने का प्रयास किया है। वे मानवता के बिल्कुल करीब

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय पृ0सं0 88
2. वही, पृ0सं0 163

पहुँचने वाले कवि रहे हैं और समूचे मानवता के दर्द को समेटने में सफल सिद्ध होते हैं–

"ऐसे दीन हीन असहाय हो के आये हो
कि जैसे कोई चुटकी संवेदना की दे देगा
ऐसे चिकने बने हो हट्टे कट्टे धरे हों कि
तुम्हें कोई काँटा कैसे कहाँ और क्यों छेदेगा
माँगने से मिलती नहीं है तुष्टि वेदना की
कोई बाप तुम्हें झुनझुनिया न ले देगा
जाओ कोई काम करो हमें न बेराम करो
ऐसे ढोंगी मँगते को हर कोई खेदेगा"–––[1]

सहाय ने वर्तमान समाज में भयावह परिस्थितियों को देखकर समाज में चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं विघटन के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनकी यह मान्यता है कि मानवीय मूल्यों के विघटन से ही समाज दिन–प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जा रहा है। अपनी कविताओं में उन्होंने विकृत राजनीतिक, सामाजिक परिवेश के मूल में मानवीय मूल्यों के विघटन को उत्तरदायी माना है।

बाँध में दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
घट तौल न्याय में
मिलावट दवाई में
नीति में टोटका
अहंकार भाषाण में
आचरण में खोट में हर हप्ते मैंने विरोध किया
सचमुच स्वाधीन हो जाने का इतना भय

---

1. सीढ़ियों पर धूप में, रघुवीर सहाय, पृ0सं0 145

एक दास जाति में
जो अधेड़ होते हैं
जी नहीं सकते हैं
बाकी दिन
आस में
हर हफ्ते–जय–जय–जय–––[1]

दया, करूणा, सहानुभूति, ममता आदि मानवीय मूल्यों के विघटन के कारण ही समाज में वैषम्य की स्थिति अपनी नींव प्रौढ़ करती जा रही है। परिणामतः समाज में शोषण, उत्पीड़न तथा अन्य अनेकानेक अत्याचार समाज को ध्वस्त कर रहे हैं। आज आतंक और शोषण के कारण समाज का आम आदमी मारा–मारा फिर रहा है। रघुवीर सहाय ने जीवन के मूल्यों के क्षरण के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। साथ ही साथ पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत पिसती हुई जनता के दुःख दर्द को गहरे लगाव के साथ प्रकट करने का प्रयास किया है–

"रोज–रोज थोड़ा मरते हुए लोगों का झुण्ड
तिल–तिल खिसकता है शहर की तरफ
फरमाइशी सम्भोग में सुनो एक उखड़ी साँस की
साँय–साँय इस महान देश में क्या करें, कहाँ जाय
घबराते लड़के गदराती औरत लेकर"–––[2]

रघुवीर सहाय की कविताएं मामूली, अभावग्रस्त और उपेक्षित जिन्दगी को चित्रित करती हुई, आगे बढ़ती हैं। आज के बहुत से नये कवि सामाजिक आर्थिक क्रान्ति की बात तो बहुत करते हैं, मामूली आदमी का ढोल

---

1. आत्मा के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 77

2 वही, पृ0सं0 22

भी बहुत पीटते हैं, लेकिन वास्तविकता की सही पहचान कम ही हो पाती है।

सहाय के रचना संसार पूरी तरह भारतीय हैं, जिसमें आम आदमी का संसार समाहित है। यह उस आदमी का संसार है जो आदमी से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द झेल रहा है। इस दर्द को रघुवीर सहाय ने बड़ी आत्मीयता से महसूस किया है और उसके प्रति अपनी गहरी चिन्ता भी प्रकट किया है–

"तुम हँसते हो कभी बिना जाने हुए
कभी मुस्कराते हुए दीख पड़ते हो
पर वह मुस्कराहट नहीं
वह है एक दुःख भरे जीवन में एक क्षण
कोई एक चीज के खुलने से माँस में आया हुआ ढिलापन
अक्सर याद करो तो देखोगे कि तुम खुश नहीं थे
कि जब मुस्कराये थे"––––[1]

सहाय का यह मानना है कि प्राचीन काल से ही समाज में मानवीय मूल्यों का महत्त्व रहा है। यह अलग बात है कि समय की गति के साथ एवं बदलते परिवेश के कारण मानवीय मूल्यों का समयानुसार ह्रास हुआ है, जिसके प्रति उन्होंने अपना खेद व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था एवं राजनीतिक उथल–पुथल को वे इसके लिए उत्तरदायी माने हैं। उनकी काव्य रचनाओं में संवेदना और बदलते सामाजिक मूल्यों और राजनीतिक ह्रास का सफल सबूत प्राप्त होता है। जिन मानवीय मूल्यों को समाज का आधार स्तम्भ स्वीकार किया गया

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 42

था, आज उन्हीं मूल्यों का ह्रास हो रहा है, परिणामस्वरूप नैतिकता का भी पतन होता दिखाई देता है–

हम सब जानते थे गरीबी क्या चीज होती है
हम सब गरीबी को विसरा चुके थे
हममें से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चों को
तो तोड़ता–मरोड़ता कुतरता है, रोज–रोज कुछ समझें,
बुझते हुए धीरे–धीरे एक दिन हजार लोग रोज
सहने के अन्तिम कगार पर खड़े हों"---[1]

सहाय ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग मानवीय मूल्यों के ह्रास पर अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए किया है। विदेशी शासकों, मुसलमानों और अंग्रेजों ने निरन्तर हमारे मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करके अपने अनुसार देश पर शासन किया, परिणामस्वरूप हर तरह से सामाजिक असंतुलन उत्पन्न हुआ। आजादी मिलने के बाद भी बहुत से रचनाकार आधुनिकता का प्रदर्शन करते हुए, मानवीय मूल्यों की उपेक्षा ही करते हैं, जिसके कारण आज भी मानवीय मूल्य जो कि हमारे समाज में चिरकाल से प्रतिष्ठित रहे हैं, उनका ह्रास ही हो रहा है।

पूँजीवादी संस्कृति के साये में पोसती हुई जनता अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं मूल्यों को कायम करने में असमर्थ ही है। चारों ओर भीषण नर–संहार एवं बदहाली की स्थिति ही व्याप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज सभी कुछ तीसरी दुनिया के बर्बर पूँजीवाद के लिए आयोजित हवन में झोंका जा चुका है। नैतिकता, परिष्कृत दृष्टि, करूणा और परिवर्तन के लिए संघर्ष की इच्छा, सभी

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 25

कुछ रघुवीर सहाय के जीवन की एक बहुत बड़ी लड़ाई रही है, और इन सभी मोर्चों पर उन्होंने अपना परिचय एक ईमानदार योद्वा की तरह ही दिया है–

"इस लज्जित और पराजित युग में
कहीं से ले आओ वह दिमाग
जो खुशामद आदतन नहीं करता
कहीं से ले आओ निर्धनता
जो अपने बदले में कुछ नहीं माँगती
और उसे एक बार– आँख– से आँख मिलाने दो"–––[1]

सामाजिक, एवं नैतिक परम्पराओं को ध्यान में रखकर सहाय ने मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं विघटन के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनका मानना है कि एक स्वस्थ समाज की स्थापना तभी सम्भव है, जब मानवीय मूल्यों के सहज अस्तित्व को स्वीकार किया जायेगा। किसी समाज और देश की अस्मिता को हम मानवीय मूल्यों के आधार पर ही समझ सकते हैं। ईमानदारी, दया, एवं सहज मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने में रघुवीर सहाय ने अथक प्रयास किया। रघुवीर सहाय ने स्वयं भी कहा है कि "मेरे लिए ईमानदारी अनुभूति की है, धर्म या मत या कर्तव्य की नहीं–––" कोई भी रचना मेरे द्वारा तभी संभव हो सकती है जब मेरा मन गवाही दे" –––[2]

लेकिन इस कथन का अर्थ तब वही नहीं रह जाता, जब हम ईमानदारी और अनुभूति के बारे में रघुवीर सहाय की राय से अलग से वाकिफ होते हैं। उनके लिए अनुभूति तथा ईमानदारी स्वायत्त और निरपेक्ष नहीं है, बल्कि ईमानदारी उनके

---

1. हँसो–हँसो –जल्दी हँसों– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 10
2. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 190–191

लिए वस्तुओं की वास्तविकता के सही अनुभव के सन्दर्भ में प्रासंगिक होती है तथा अनुभूति को वे सुधारने की माँग करते हैं। इस प्रकार रघुवीर सहाय की दृष्टि में ईमानदारी का मतलब यही है कि वह लेखक उस बौद्धिक विकलता को लेकर जिए, और उसे अस्वीकार न करे जिससे कि उसे ज्ञान प्राप्त होता है।

रघुवीर सहाय ने जब ईमानदारी पर लिखा तो सिर्फ ईमानदारी के विवेचन के बाद यह प्रसंग समाप्त नहीं कर दिया, बल्कि उन्होंने ईमानदारी के बाद के दायित्व भी निर्धारित किये। उनकी राय में "जनजीवन के विकासोन्मुख तत्वों से अपने को सक्रिय सम्बद्व न करने के कारण ऐसे लेखक अपनी मौलिक ईमानदारी के बावजूद भी खो गये। क्योंकि उन्होंने ईमादारी के बाद भी अपने व्यक्ति की झूठी आत्मसत्ता नहीं त्यागी। विराट इतिहास की सक्रिय शक्तियों में अपने को समाहित नहीं किया–[1]

देख लो गरीब मरीज खड़े डरता है
कि कुछ सजे धजे लोग
डागदर के कमरे में पहले घुस गये
वे मानो कीच के समुद्र में
अपने अधिकार के लिए आते और जाते हैं
रोग और पैसा हो तो पहले मैं होगा
और फिर मैं ---[2]

रघुवीर सहाय की चेतना सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के आधार पर टिकी हुई है। उन्होंने प्राचीन काल की मान्यताओं एवं मूल्यों को अपनी रचनाओं में प्रकट

---

1. सीढ़ियों पर धूप में, पृ0 1960- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 254-255
2. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 79

करने का अथक प्रयास किया है। समाज के ऐसे वर्गों के प्रति रघुवीर सहाय ने अपना व्यंग्य कसा है जो कि मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करते हैं, और व्यर्थ का दिखावा एवं मुखौटा डालने की प्रवृत्ति अपना कर अपना व्यर्थ प्रभाव प्रकट करने की कोशिश करते हैं। रघुवीर सहाय की सभी रचनाएं उपेक्षित और अभावग्रस्त जिंदगी का चित्रण करती हुई चलती हैं जिसमें सामान्य जनता को हर तरह से पीसा जा रहा है। उसे शोषकों ने इतना चूस लिया है कि उसकी भावनाएं एवं उसके अन्दर नैतिक मूल्यों की सर्वथा समाप्ति ही हो गयी हैं –

"झुर्रियाँ उग रहा दुबला साँवला चेहरा
बस से उतरी हुई भीड़ में एक –एक कर देखा वह नहीं था
पिछली बार बहुत देर पहले उसे अच्छी तरह देखा था
रोज आते–जाते हैं, बस में लोग एक दिन खत्म हो जाते हैं
या कि खत्म नहीं होते चुपचाप
मरने के लिए कहीं दुबक जाते हैं–––[1]

नैतिकता के विघटन और उस पर मंडराते राजनीतिक–सांस्कृतिक संकट का सजीव चित्रण रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में उभारने का प्रयास किया है। पद एवं सत्ता के लोभ में हर राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म एवं अत्याचार करने के लिए तैयार है और इसके साथ ही वे समर्थ और अत्यन्त बलशाली हैं। इसलिए जुर्म और अत्याचार के बाद भी बिल्कुल साफ बच जाते हैं। नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों के ह्रास के प्रति उन राजनेताओ की भी एक सशक्त भूमिका है.–

मैंने कहा डपटकर
ये सेब दागी हैं
नहीं–नहीं साहब जी
उससे कहा होता
आप निश्चिन्त रहें
तभी उसे खाँसी का दौरा पड़ गया–––[2]

रघुवीर सहाय की कविताओं में दिये गये हर सलाह के अन्दर तीखे व्यंग्य के साथ ही एक गहरी पीड़ा छिपी हुई है। शोषित गरीब आदमी पर अनिवार्य रूप से मार पड़ रही है और ताकतवर लोगों के द्वारा उसकी चेतना भी भ्रष्ट कर दी गयी है। शोषकों द्वारा सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों का क्रमशः पतन ही किया जा रहा है। उनके ऊपर किसी प्रकार का अंकुश नहीं है। जब भी कोई रचनात्मक शक्ति इसके विरोध में खड़ी होती है, तो उसका दमन कर दिया जाता है। इसी कारण मानवीय मूल्यों का क्रमशः ह्रास ही होता जा रहा है। स्त्रियों की मान मर्यादाओं की भी उपेक्षा की जा रही है। रघुवीर सहाय अपनी कविता में जिस स्त्री का चित्रण करते हैं, वह बहुत ही बदनसीब है। यह बहुत ही चौंकाने वाला दुःखद सत्य है कि हिन्दी कवियों ने पुरुष के जीवन का आर्थिक संघर्ष तो देखा पर उन्हें स्त्री के जीवन का संघर्ष बिल्कुल नहीं दिखाई देता है, वे उसकी मान–मर्यादाओं पर ध्यान न देकर उसके प्रति केवल अपनी अतृप्त वासना को ही बाहर निकालते रहे।

आज के बदलते परिवेश में लोग अपने वास्तविक मूल्यों एवं सामाजिक परम्पराओं को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरों में फँसते हैं, जिसके कारण मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है और चारों तरफ उथल–पुथल भी मच रही है–

> सच क्या है ?
> बीते समय का सच क्या है?
> क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
> वही सच है, उसे याद रख, लिख अरे लेखक
> दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
> युग नया आ गया
> तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
> वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था समझ।---[1]

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 21

2 **मनुष्यता से स्खलित आदमी का यथार्थ** ·

मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति रघुवीर सहाय ने अपनी सशक्त आवाज उठायी है। वे यह प्रतिपादित करते हैं कि सामाजिक ढाँचे की मजबूती एवं उसके आधार की प्रौढ़ता के लिए सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानवीय मूल्यों को जीवित रखना अति आवश्यक है। एक सभ्य समाज का सही मूल्यांकन मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं तथा प्रमाणों के आधार पर ही सिद्व होता है। लेकिन बदलते सामाजिक परिवेश में उन मानवीय मूल्यों का स्खलन (विचलन) होता जा रहा है, जिसके प्रति रघुवीर सहाय ने गहरा खेद व्यक्त किया है। भ्रष्टाचार, शोषण एवं अत्याचार की प्रबलतम चोट से मानवीय मूल्यों का विघटन हो गया है– जैसा कि– "उत्तर प्रदेश से निर्वाचित एक निर्दलीय सदस्य ने इस बहस में एक बहुत उम्दा बात कही। उन्होंने कहा: आज से तीन साल पहले जब किसी को रिश्वत लेने का लालच दिया जाता था, तो वह कहता था– "न साहब, रिश्वत मैं न लूँगा, मेरे आगे बाल–बच्चे हैं। आज जब वह रिश्वत लेता है, तो वह कहता है, क्यों न लूँ साहब मेरे आगे बाल–बच्चे हैं–––[1]

इस प्रकार आज के समाज में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का बिल्कुल स्खलन हो गया है। स्वार्थ–लिप्सा का प्राबल्य होने के कारण नैतिकता का दिन–प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। ईमानदार एवं निर्दोष आदमी की कहीं पूछ नहीं हो रही है, वही हर मोड़ पर मारा जा रहा है। आज बढ़ते हुए शोषण के कारण मनुष्य–मनुष्य के बीच भी एक गहरी खांई पैदा हो गयी है, परिणामस्वरूप परस्पर प्रेम एवं बन्धुत्व का भाव भी समाप्त होता जा रहा है–

---

1. दिल्ली मेरा परदेस– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 12

"हिन्दू और सिख में
बंगाली असमिया में
पिछड़े और अगड़े में
पर इनसे बड़ी फूट
जो मारा जा रहा और जो बचा हुआ
उन दोनों में है"---[1]

बदलते परिवेश में लोग अपने वास्तविक मूल्यों एवं सामाजिक परम्पराओं को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरों में फँसते हैं, जिसके कारण चारों ओर उथल पुथल मच रही है और पतनशील संस्कृति के पोषक शोषकों के समाज के बीच इसके विरोध में खड़ी होने वाली रचनात्मक जनशक्ति का दमन जिस तरह से हो रहा है, उसे "सहाय ने" लोग भूल गये हैं" संग्रह की कविता में इस प्रकार उभारने का प्रयास किया है-

"दुनिया ऐसे दौर से गुजर रही है जिसमें
हर नया शासक पुराने पापों के आदर्शों को नया मानता
और जन वंचित जन जो कुछ भी करते हैं काम धाम
राग-रंग वह ऐसे शासक के विरूद्ध ही होता है-
यह संस्कृति उसको पोसती है जो सत्य से विरक्त है
देह से सशक्त और दानशील धीर है
भड़क कर एक बार जो उग्र हो, उसे तुरन्त मार देती है-"[2]

जीवन मूल्यों के अवमूल्यन, अन्धानुकरण और फैशन के तौर पर हम जिस नकारात्मक तथाकथित संस्कृति को बौद्धिक और व्यवहारिक स्तर पर

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 47
2. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 48

अपना रहे हैं, उनकी कचोट और कपट का स्वर रघुवीर सहाय की कविताओं में जगह–जगह मुखरित हुआ है। वे मानवीय संवेदनाओं के कवि रहे हैं। अतः सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानवीय मूल्यों के स्खलन के प्रति अपनी गहन संवेदना और सहानुभूति प्रकट करते हैं। प्राचीन सभी सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानदण्डों को सहाय ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाया है, जिसके कारण कि उनके काव्य में सांस्कृतिक सन्दर्भो के प्रति एक तड़प दिखाई देती है–

> "कौन आदमी है जो बचा रह जाता है
> हर बार जब ताकतवर लोग अपने मन का
> संसार रचने को सामूहिक हत्याएं करते हैं
> कौन है जो बचा रहकर फिर पहचाना जाता है
> और बचा रहता है
> कौन है वह कि जो बचा तो रहता है
> पर उसकी पहचान नहीं हो पाती है
> और कौन है वह जो जैसे ही पहचाना जाता है
> मार दिया जाता है"---[1]

मध्यकाल में परम्परागत मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का भी काफी ह्रास हुआ। उसके पीछे मुस्लिम शासकों की अपनी सशक्त भूमिका रही है। बाद में अंग्रेज भी भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानवीय मूल्यों के स्खलन के कारण रहे। परिणामस्वरूप वैदिक काल से चली आने वाली सांस्कृतिक मान्यताओं का ह्रास हुआ।

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 65

आधुनिक काल में फैशनपरस्ती एवं आडम्बरयुक्त संस्कृति का बोल–बाला होने के कारण भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं की पूर्णरूपेण उपेक्षा की जा रही है। एक संवेदनशील कवि होने के नाते रघुवीर सहाय ने इन मान्यताओं को पुनर्जीवित करने के प्रति अपना प्रयास दर्शाते हैं, जिसे कि स्वस्थ एवं सुसंस्कृत समाज की स्थापना हो सके।

आज दूषित राजनीतिक वातावरण के कारण सामाजिक वातावरण की नींव भी लड़खड़ाने लगी है, जिससे सांस्कृतिक मर्यादाओं एवं मानवीय मूल्यों का दिन–प्रतिदिन स्खलन जारी है–

"हत्या की संस्कृति में प्रेम नहीं होता है
नैतिक आग्रह नहीं
प्रश्न नहीं पूछती है रखैल
सब कुछ दे देती है बिना कुछ लिये हुए
पतिव्रता की तरह"––––[1]

नैतिकता के ह्रास एवं उस पर गहराते राजनीतिक–साँस्कृतिक संकट की क्षुब्ध अभिव्यक्ति रघुवीर सहाय की कविता में प्राप्त होती है। पद एवं सत्ता के लोलुप राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म करने को तैयार हैं और चूँकि वे समर्थ और बिल्कुल बलशाली हैं, इसलिए जुर्म एवं अत्याचार के बाद भी वे बिल्कुल साफ बच जाते हैं। रघुवीर सहाय की बेचैनी मानवीय संवेदना के सबसे निकट की अनुभूति के निरन्तर भ्रष्ट होते चले जाने से उत्पन्न हुई है। सर्वत्र व्याप्त बदहाली की स्थिति किसी भी तरह से मानवीय मूल्यों को स्थिर नहीं रहने देता है–

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ०सं० 17

वे "यथार्थ" में व्यक्त करते हैं– "जो अवश्य ही हम सब जानते हैं कि सत्य है, वे ही वस्तुस्थिति को बदलते हैं, बशर्ते की अभिव्यक्ति हो। वे न्याय और समता के आदर्शो से उत्पन्न हैं, और उनकी अभिव्यक्ति कला का वह चरम उत्कर्ष है, जहाँ कला सबसे कम होती है, परन्तु सबसे अधिक परिवर्तनकारी प्रभाव डालती है। मेरी समझ में वास्तविकता का परिचय देती हुई, हर कलाकृति, कला के बोझ से और इसलिए पतनशीलता के बोझ से मुक्त नहीं हो सकती। मुक्त होने के लिए उसे इतिहास निर्माण में शामिल होना पड़ेगा, इतिहास-निर्माण में अर्थात् यथार्य का ऐसा संसार रचने में जो वास्तविकता के वर्तमान संसार को चुनौती दें'---[1]

रघुवीर सहाय की संवेदना मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी होने के कारण, मानव के सहज दु:ख दर्द को उभारती हैं, जिसके कारण वे एक मानवीय कवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। उनकी कविताओं में मानवीय मूल्यों के प्रति एक छटपटाहट दिखाई देती है, जिसके परिणमास्वरूप वे अपनी सहज मानवीय संवेदनाओं को प्रकट करने में सफल होते हैं और अपनी कविताओं में मानव की सहज पीड़ा को प्रतिबिम्बित करते हैं। उन्होंने जीवन को जिस यथार्थ की निगाहों से देखा, वैसी ही सहज और अपील करने वाली अभिव्यक्ति दी है। उनकी कविताएं स्वाभाविक और सरल होती हुई भी पैनी तथा संवेदना को झकझोर देने वाली हैं। मानवीय मूल्यों के विचलन के प्रति उन्होंने अपना गहरा क्षोभ प्रकट किया है।यही कारण है कि रघुवीर सहाय को सच्चे अर्थो में एक मानवीय कवि कहा जाता है–

---

1. यथार्थ – यथास्थिति नहीं– रघुवीर सहाय पृ0सं0 137

"किसी भी क्षेत्र में हो, ईमानदारी एक व्यापक गुण है और इसी से अब हमें लगता है कि "किसी भी क्षेत्र में हो" कहना गलत होगा। ईमानदारी वास्तव में एक मौलिक गुण है और उस बौद्धिक स्तर का पर्याय है जिस पर आकर हमारा तर्क पूर्वग्रह और व्यक्तिगत रूचि के ऊपर उठ जाता है ओर जिस पर आकर हममें वस्तुओं की वास्तविकता का सही अनुभव होता है।"---[1]

सहाय ने मानवीय मूल्यों के स्खलन के लिए बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण को भी उत्तरदायी ठहराया है। उनका मानना है कि पूँजीवादी सत्ता ने पूँजीवादी उद्योग धन्धों के विकास के लिए स्वतंत्रता के पश्चात् सर्वाधिक प्रयत्न किये। इस सघन औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप शहरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा संयुक्त परिवार के विघटन से जुड़ी हुई अनन्त समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। इस पूँजीवादी समाज में कोई भी चीज ऐसी नहीं रह गयी जिसे अपना कहा जा सके। यही कारण है कि मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की घोर उपेक्षा हुई। सहाय ने मानवीय मूल्यों के स्खलित होने वाले समाज को बदलने के प्रति प्रयत्नशील दिखाई देते हैं-

एक आश्रय से दूसरे में आकर
मैं एक बंधन से मुक्त हो जाता हूँ
यही मेरी मुक्ति है
बार-बार एक दासता से दूसरी में कम या ज्यादा
आजाद होते हुए
उतनी देर में मैं बना लूँ एक दुनिया अपने भीतर
और बाहर तक पहुँचा दूँ
ताकि वह नष्ट न हो
और जब दोबारा एक बार घर बदलूँ
वह दुनिया मेरी कुछ बड़ी हो गयी हो"---[2]

---

1. लिखने का कारण- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 52
2. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27

सहाय का कहना है कि पूंजीवादी औद्योगिकीकरण के उत्कर्ष ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना दिया है। परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्व खण्डित और विघटित होता जा रहा है। यांत्रिकीकरण के बीच उसका दर्जा भी मशीन के एक पुर्जे के रूप में हो गया हैं। फलतः मानवीय संवेदनाएं निरंतर मरती जा रही है। मानव और मानव के बीच का रिश्ता टूटता जा रहा हैं।

रघुवीर सहाय इस ओर बार-बार संकेत करते हैं कि समाज में व्याप्त शोषण, अत्याचार, के मूल में मानवता से स्खलित मनुष्य ही है, परिणामस्वरूप शक्तिशाली कमजोर को निगलता जा रहा है। आज की परिस्थिति इतनी भयंकर हो गयी है कि सामान्य और ईमानदार आदमी हर मोड़ पर मारा जा रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि उसे स्वयं यह मालूम नहीं हो पाता है कि उसके साथ इतना जघन्य अपराध होगा। सहाय अपने समय की पहचान को बहुत गहरे में स्वीकार कर चुके थे। यही कारण है कि वे गरीब आदमियों की लाचारी, हिंसक घटनाओं में निहित क्रूरता और सर्वसत्तावाद के खतरे को अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर प्रकट किया है, साथ ही साथ मानवीय मूल्यों के विघटन को लेकर बहुत चिन्तित दिखाई देते हैं-

"ताकतवर लोग खोजते हैं कमजोर को
एक तरफ अस्पताल, झोपड़ी हजार वर्ष से
वंचित जाति वर्ग लाश लुटे लोग
ढहे घर दुआर जिसको वे अभय दे और
दूसरी तरफ चित्रकार जो अपने खून से
कागज पर उनकी तस्वीर आँके,
जन के मन भय भरे"---[1]

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ०सं० 38

बढ़ती हुई पूँजीवादी व्यवस्था के कारण समाज में अन्याय एवं अत्याचार का बाहुल्य होता जा रहा है, जो कि मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं पर निरन्तर प्रहार कर रहा है।

रघुवीर सहाय शोषणवादी व्यवस्था के शिकार हुए लोगों को मुक्त कराने का भरसक प्रयास करते हैं। ऐसी अव्यवस्था के अन्तर्गत जख्मी लोग अपने मानव होने की पहचान करने में भी असमर्थ दिखाई देते हैं। रघुवीर सहाय का यह प्रयास है कि ऐसी शोषण वाली अव्यवस्था सदा के लिए समाप्त हो जाय, और एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना हो, जिसमें कि किसी के साथ किसी प्रकार का वैषम्य न हो और सबको अपने विकास का समान अवसर प्राप्त हो सके। जिसमें सभी अपने अन्दर मानवीय मूल्यों का एहसास करते हुए उसे स्थिर करने का प्रयास कर सकें–

"कभी–कभी दुनिया को फिर से बनाने के वास्ते
कागज पर योजना करता हूँ, कुछ नयी पोशाकें
कुछ नये फर्नीचर, कुछ नये फूल, कुछ कीड़े–मकोड़े
लोग नये खोजता हूँ तो सब वही वही लोग जुट जाते हैं
एसे अनेक हैं, इस ठहरे चित्र में सहसा बूढ़े हुए जड़ चेहरे"––––[1]

मानवीय मूल्यों का दिन–प्रतिदिन इतना ह्रास होता जा रहा है कि समाज का कोई स्थिर पड़ाव ही नहीं दी दिखाई दे रहा है। मनुष्य की लालसा और स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार को रघुवीर सहाय की कविताओं में देखा जा सकता है। सहाय ने अपनी कविताओं में आज के उस रहस्यमय खूंखार चेहरे

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ०सं० 188

मुझे मालूम था मगर इस तरह नहीं कि जो
खतरे मैंने देखे थे वे जब सच होंगे
तो किस तरह उनकी चेतावनी देने की भाषा
बेकार हो चुकी होगी
एक नयी भाषा दरकरार होगी।"---[1]

मर्यादा, स्वाभिमान एवं अपनी संस्कृति मे अटूट प्रेम रखने वाले रघुवीर सहाय जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एवं अपने अधिकारों के प्रति सचेत करने में बहुत ही प्रयत्नशील रहे। हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता है। लेकिन आज स्थिति इतना बदतर हो गयी है कि लोगों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया जा रहा है। नैतिकता एवं मानवीयता का कोई महत्त्व ही नहीं रह गया है। परिणामतः मानवीय मूल्यों का सर्वाधिक स्खलन हो रहा है-

"बरसों पानी को तरसाया
जीवन से लाचार किया
बरसों जनता की गंगा पर
तुमने अत्याचार किया"---[2]

मानवीय मूल्यों के स्खलन को लेकर रघुवीर सहाय ने जो दर्द महसूस किया है, वह उनका केवल अपना व्यक्तिगत दर्द नहीं है, अपितु वह शोषण एवं दमन का शिकार हुई समस्त मानवता का दर्द है, जहाँ केवल कुढ़न और निराशा ही व्याप्त है। रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में न केवल ऐसे दर्द का बयान करते हैं,

---

1. हँसो-हँसो-जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 3
2. वही, पृ0सं0 6

अपितु इस दर्द (शोषण एवं उत्पीड़न से उत्पन्न दर्द) से मुक्ति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग रखते हुए, अपना बयान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं–

हमको तो अपने हक सब मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए"---[1]

मानवीय मूल्यों के स्खलन के लिए रघुवीर सहाय ने आज के भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराया है। उनकी कविताएं आज के भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र में जीते मरते आदमी की पीड़ा एवं टीस का चित्रण करती हैं, जो कि उनकी कविताओं की अपनी असली जमीन है। सहाय मानवीय मूल्यों को प्रश्रय देते हुए स्वयं यह मानते हैं कि कविता के लिए राजनीति की नहीं, बल्कि रचना की शर्त जरूरी होती है। उनका मानना है कि– "राजनीति की ओर मेरा यही रवैया है, संकट–कालीन रवैया कह लीजिए– कि "वह बहुत जरूरी है या वह फिजूल है, दोनों फतवे संकट से भागने के बहाने हैं। वह बहुत जरूरी है, पर मैं भी अपने लिए बहुत जरूरी हूँ"---[2]

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 108
2. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय का वक्तव्य, पृ0सं0 9

3 **मानवीय भावों के महत्त्वकी स्थापना--करूणा, सहानुभूति, प्रेम, विश्वास, ईमानदारी :**

मानवीय मूल्यों के स्थायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक सहाय ने समाज की स्थिरता एवं प्रगति के लिए उन मूल्यों को सर्वथा प्रश्रय दिया है। वे पूर्णरूप से एक सामाजिक कवि रहे हैं। यही कारण है कि सामाजिक मूल्यों के प्रति उनकी अपनी अटूट आस्था रही है। उन मानवीय मूल्यों को जीवित रखने के लिए सहाय ने अथक प्रयास किया। उनकी रचनाओं में दया, करूणा, सहानुभूति, ईमानदारी, ममता आदि मानवीय मूल्यों के प्रति छटपटाहट दिखाई देती है।

उनका विश्वास था कि मानवीय भावों के सत्य के आधार पर समाज के ढाँचे की मजबूती का आकलन किया जा सकता है–

"हम जानते हैं कि पतन अनेक रूप धर कर
हमें क्षय कर रहा है
और यह भी जानते हैं कि बदलना तो सब कुछ एक साथ होगा
पर समाज को एक साथ बदलने के लिए
एक व्यापक बहुआयामी आदर्श और उतना ही
स्पष्ट कार्यक्रम चाहिए"---[1]

सहाय जी ने यह स्वीकार किया है कि वैज्ञानिक युग होने के कारण सघन औद्योगीकरण का परिवेश सर्वत्र व्याप्त है। जिसके परिणामस्वरूप मानवीय मूल्यों पर निरन्तर प्रहार हो रहा है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा

---

1. एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27

संयुक्त परिवार के विघटन से सम्बद्ध अनेकानेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। जिससे दया, ममता, सहानुभूति, ईमानदारी आदि मानवीय भाव क्षीण होते जा रहे हैं। सर्वत्र भ्रष्टाचार एवं अन्याय की सशक्त दीवाल नजर आ रही है। सहाय हर दृष्टिकोंण से यह स्वीकार करते हैं कि औद्योगिकीकरण का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह है कि इससे यांत्रिकीकरण को बढ़ावा मिला, जिससे खण्डित विघटित एवं संवेदन शून्य व्यक्तित्व का जन्म हुआ, जिससे मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं स्थापित हो सकता है-

"देश की व्यवस्था का विराट वैभव
व्याप्त है चारों ओर
एक कोने में दुबक ही तो सकता है
सब लोग जो कुछ रचते हैं उसमें
केवल अपना मत नहीं दे ही तो सकता हूँ
वह मैं करता हूँ
किसी से नहीं डरता हूँ
अपने आप और बेकार"----[1]

आज के बदलते सामाजिक परिवेश में रघुवीर सहाय की कविताएं यह अभिव्यक्ति करती हैं कि सच्चे सामाजिक आदर्शो की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूँजीवादी दुर्व्यवस्था ने सबको अपने चंगुल में कर लिया है ओर सामाजिक मान्यताओं और मानवीय आदर्शों की पूर्णरूपेण उपेक्षा हो रही है। इस सामाजिक अव्यवस्था में सामान्य जन का कोई मूल्य नहीं रह गया है। देश के बहुसंख्यक लोगों पर मुट्ठभ्भर लोगों द्वारा किया जाने वाला ——

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 34

अन्याय एवं अत्याचार जो कि मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों को नष्टप्राय बना दे रहे हैं, वे सब रघुवीर सहाय की कविताओं के मुख्य विषय हैं।

आज साधारण जनता के सन्दर्भ में किये गये निर्णयों में जनता का कहीं कोई शिरकत नहीं है। शोषक वर्ग के हितों की रक्षा करने वाले शासन का अत्याचार एवं अन्याय झेलते हुए आम जनता बार-बार आत्महत्या की स्थितियाँ झेल रही है। रघुवीर सहाय की कविताओं में इन स्थितियों के विरोध में खड़े होने की एक निरन्तर छटपटाहट प्राप्त होती है-

"कितना अच्छा था छायावादी
एक दु:ख लेकर वह एक गान देता था
कितना कुशल था प्रगतिवादी
हर दु:ख का कारण
वह पहचान लेता था
कितना महान था गीतकार
जो दु:ख के मारे अपनी जान लेता था
कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
जहाँ सदा मरता है एक और मतदाता"---[1]

रघुवीर सहाय की कविताएं यह प्रतिपादित करती हैं कि विकृत राजनीतिक परिवेश से सामाजिक परिवेश भी विकृत हो गया है, जिसके कारण चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्य भी संकट में पड़ गये हैं। चारों तरफ व्याप्त लूट-खसूट, अत्याचार एवं अन्याय से मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों की नींव भी डगमंगा गयी है- मानवीय ईमान और धर्म का कोई महत्त्व नहीं रह गया है- अपने मानीवय एवं नैतिक धर्म पर लोग टिक नहीं पा रहे हैं। एक दूसरे की

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 73

चाटुकारिता एवं खुशामद करना लोगों का अपना क्रमशः व्यवसाय बन गया है। प्रेम, दया, सहानुभूति आदि के स्थान पर उनके अन्दर नफरत एवं ईर्ष्या की दीवाल खड़ी हो गयी है, जो कि किसी भी दशा में मानवीय मूल्यों को स्थिर नहीं रख सकती है–

"लोग या तो कृपा करते हैं या खुशामद करते हैं
लोग या तो ईर्ष्या करते हैं या चुगुली खाते हैं
लोग पाश्चाताप करते हैं या घिघियाते हैं
न कोई हँसता है, न कोई रोता है
न कोई प्यार करता है, न कोई नफरत
लोग या तो दया करते हैं
या घमण्ड
दुनिया एक फुंफुदियायी हुई सी चीज हो गयी है"—[1]

रघुवीर सहाय का यह मानना है कि आज की दुनिया इतनी बदल गयी है, कि मनुष्य प्रेम के स्थान पर घृणा, ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी और ईर्ष्या का रास्ता अपनाकर चल रहा है। ऐसी स्थिति में सत्य और प्रतिष्ठित सभी मानवीय मूल्य गौंण होते जा रहे हैं। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत मची लूट–खसूट एवं रिश्वतखोरी तथा निरन्तर शोषण से मानवीय भावों की समाप्ति होती जा रही है। परार्थ के स्थान पर स्वार्थ की प्रवृत्ति निरन्तर सशक्त होती जा रही है, जिससे दया, करूणा, सहानुभूति, ईमानदारी, परोपकार आदि सहज मानवीय मूल्यों की स्थापना में कठिनाई हो रही है, आज बढ़ते हुए भ्रष्टाचार की संस्कृति सभी मानवीय मूल्यों का भक्षण करती जा रही है– "भ्रष्टाचार में हमेशा से एक सर्वग्रासी प्रक्रिया छिपी

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 138–39

रही है। वह लोकतंत्र, आजादी, सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने वाले तत्वों से हर समय जुड़ता रहता है और समाज इस पतनशील राह पर एक एक कदम बढ़ता जाता है। एक व्यापक राजनैतिक आन्दोलन अवश्य इस राह को बदल सकता है। पर इतिहास में ऐसे दौर भी आते हैं, जब आन्दोलन व्यापक नहीं हो पाते, छिटपुट उद्देश्यों और उत्तेजनाओं की शकल में बिखर जाते हैं।[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यों एवं मानवीय भावों को समाज का बुनियादी आधार स्वीकार किया है। जिनके द्वारा किसी समाज की मजबूती को विधिवत प्रमाणित किया जा सकता है।

रघुवीर सहाय मानवीय भावों के सतत पक्षधर होकर उनके ह्रास / के लिए ब्रिटिश शासन को भी बहुत सीमा तक उत्तरदायी ठहराया है। उनके अनुसार आजादी मिलने के तुरन्त बाद ही साम्राज्यवादी स्वार्थ और अर्द्ध सामन्ती, अर्द्ध पूँजीवादी सत्ता की राजनीति ने सम्पूर्ण देश के लोगों को अपनी जमीन और सही वातावरण से काटकर अपने ही घर में शरण लेने के लिए मजबूर किया। इसके अतिरिक्त तत्कालीन गाँधी जी की हत्या ने भारतीय जनता के भविष्य के प्रति अग्रसर होने वाले विश्वास पर भयानक प्रहार किया। ऐसी परिस्थिति में पुराने मानवीय मूल्यों एवं मानवीय भावों का टूटना स्वाभाविक ही था।

आज के बदलते राजनीतिक परिवेश में जहाँ पर सम्पूर्ण राजनीतिक ढाँचा ही विकृत हो गया है, और जिसमें पूँजीवादी का शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है, ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों को कोई अपना स्थिर पड़ाव मिलना बहुत मुश्किल दिखाई देता है—

---

1 अर्थात— रघुवीर सहाय, पृ0सं0 45

"जब दलित लोग दमनकारी के तंत्र की
उनहार करते हैं अपने को सान्त्वना
देते हैं हम जीते सबसे बड़ी जीत
दमन की होती है उस पर दलित को
बधाइयाँ देती है दमन तंत्र की प्रजा
फैला देती हे दमन तंत्र की प्रजा
फैला विराट है विशाल है अपार देश
पर अपार से भी जियादा अथाह है
हम कितने गहरे में चले जाँय और एक
ताकत ले आयें वहीं कहीं बूड़ नहीं रहे"---[1]

रघुवीर सहाय की सभी रचनाएं मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देती हैं। वे तो स्वयं अपनी करूणा को शंका की दृष्टि से देखते हैं कि कहीं यह दूसरे आदमी की स्वतंत्रता को कम करके खुद अपने को श्रेष्ठ होने के बोध से तो नहीं भर रही है। सहाय की अपनी शंका की जड़ में उनकी जनतांत्रिक संवेदना समाहित है।

वे ऐसी विचारधारा वाले कवि रहे हैं जो कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था तथा मानवीय मूल्यों के ह्रास पर गहरा शोक प्रकट करते हैं।

रघुवीर सहाय अपनी पीड़ा को पूरा उधेड़कर देखने-समझने की कोशिश करते हैं और उनका कहना है कि अपने को श्रेष्ठ मानकर दिखाई हुई करूणा से लोकतांत्रिक जीवन मूल्य का क्षरण होता है, जो कि रघुवीर सहाय को बिल्कुल मंजूर नहीं है-

---

1. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 23

"बहुत बड़े देश में बहुत से मनुष्यों की पीड़ाएं
अगर उसे बड़ा नहीं करती हैं तो जमीन को
उसके हत्यारे छोटा कर देते हैं
बेचकर विदेश में भेजने के लिए
ये पहाड़, जंगल, मिट्टी के मैदान हरे,
छोटे हो रहे हैं जो इतिहास में बड़े देश के प्रमाण थे
इनकी विशालता का कोई गुणगान अब सुन नहीं पड़ता
देश के बड़े देश होने का गौरव अब
व्यक्ति की विदेश में प्रतिष्ठा बढ़ाता है
देश में बर्बरता
हत्याएं चिथड़े खून और मैल आज भारतीय संस्कृति के मूल्य हैं
और दया करते हें लोग यह मानकर कि कष्ट अनिवार्य है
दया के पात्र को"---[1]

सहाय की गहरी जनतांत्रिक संवेदना ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में पूँजवादी ढाँचे और पश्चिमी आधुनिकतावादकी नकल के कारण पनपती असमानताओं को विभिन्न रूपों और परतों में देखने, सुनने और समझने का प्रयास किया है। गैर बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है, साथ ही अपने को नीचा और हेय मानकर बिना प्रतिवाद के अपनी स्थिति को स्वीकार करने वाला आदमी बनाया है। शोषण एवं दमन तथा अत्याचार का शिकार होने के कारण उसका व्यक्तित्व समाप्तप्राय हो गया है-

"प्राचीन राजधानी अधमरे लोग
वही लोग ढोते उन्हीं लोगों को
रिक्शे में

---

1. लोग भूल गये हैं - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 102

पन्द्रह लाख आबादी दस लाख शरणार्थी
रिक्शे वाले की पीठ शरणार्थी की पीठ
एक सी दीखतीं
बस चेहरे हैं जैसे बलपूर्वक अलग–अलग किये गये
एक बुढ़िया लपकी हुई जाती थी
पीछे–पीछे चुप चलती थी औरत वह बहन थी
आगे लागे लाश प पूरा कफन नहीं था
वे उसे ले जाते थे जल्दी –जल्दी जला देने को"---[1]

मानवीय मूल्यों के प्रबल हिमायती रघुवीर सहाय ने राजनीतिक ढाँचे का, जिसमें कि बहुत सारी विकृतियाँ नेताओं एवं भ्रष्ट मंत्रियों के कारण उत्पन्न हुई हैं, का नग्न चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। एक जनवादी कवि होने के कारण सहाय ने राजनीतिक क्षरण एवं स्वार्थ प्रेरित राजनीति से प्रभावित मानवीय मूल्यों के प्रति अपना खेद व्यक्त किया है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे---[2]

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 69
2. वही, पृ0सं0 16

रघुवीर सहाय यह मानते हैं कि दूषित राजनीतिक तंत्र के कारण बदहाली की स्थिति को प्राप्त समाज में मानवीय भावों एवं मानवीय मूल्यों की स्थापना कैसे हो सकती हैं ? उनक अनुसार इसके लिए वह तंत्र और नेतृत्व उत्तरदायी है, जिसने आजादी के बाद सामाजिक आधारों को बदले बगैर, लोकतंत्र की कल्पना की थी, और इस लोकतंत्र के हवाले से उसने जनता की मुक्ति और विकास का मिथ्या दावा प्रस्तुत किया था। लोकतंत्र के बहाने बेईमानी और अपराध ही फूलने–फलने लगा–

"दस मंत्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नहीं
काल रोग का फल है अकला अनावृष्टि का
यह भारत एक महागद्दा है प्रेम का
ओढ़ने –बिछाने को, धारण कर
धोती महीन सदानन्द पसरा हुआ
दौड़े जाते हैं, डरे–लदे फँदे भारतीय
रेलगाड़ी की तरफ
थकी हुई औरत के बड़े दाँत
बाहर गिराते हैं उसकी बची खुची शक्ति
उसकी बच्ची अभी तीस साल तक
अधेड़ होने तक तीसरे दर्जे मे
मातृभूमि के सम्मान का सामान ढोती हुई
जगह ढूँढंती रहे
चश्मा लगाये हुए एक सिलाई मशीन
कन्धे उठाये हुए"–––[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यों जैसे दया, सहानुभूति, ममता, ईमानदारी आदि को साहित्य सृजन के लिए एवं सफल साहित्य के लिए भी अनिवार्य माना है। उनका

---

1. आत्म हत्या के विरूद्धः रघुवीर सहाय, पृ0सं0 29

विचार है कि इन मानवीय मूल्यों के अभाव में साहित्य की समीचीनता नहीं प्रमाणित हो सकती है। मामूली अभावग्रस्त जिन्दगी जीने वाले लोगों को अपनी कवतिा का वर्ण्य विषय बनाकर रघुवीर सहाय ने सच्चे मानवीय भावों के महत्त्व को प्रकट करने का प्रयास किया है। सचमुच रघुवीर सहाय का काव्य तो पूरी तरह भारतीय है।

वह भारतीय आम आदमी का संसार है। यह उस आदमी का संसार है जो आदमी से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द झेल रहा है। इस दर्द को रघुवीर सहाय ने बड़ी आत्मीयता से महसूस किया है और उसके प्रति अपनी गहन संवेदना भी प्रकट किया है--

"भेड़कर
दर्द मैंने कहा क्या अब नहीं होगा
हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने का दर्द
गरजा मुस्टंडा विचारक समय आ गया है
कि राम लाल कुचला हुआ पाँव जो
घसीटकर
चलता है अर्थहीन हो जाये"---[1]

सहाय की कविताएं मानवीय भावों को आत्मसात करती हुई आगे बढ़ती हैं, जिसमें कि उन मानवीय मूल्यों एवं मानवीय भावों के प्रति स्वाभाविक छटपटाहट दिखाई देती है। ये वही मानवीय भाव हैं, जो कि मानवीय संवेदना और सामाजिक प्रौढ़ता के आधार-स्तम्भ सिद्ध होते हैं। मनुष्य की सही पहचान एवं मानवता की सही खोज इन्हीं मानवीय मूल्यों के द्वारा संभव हो सकती है। रघुवीर सहाय ने

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 86

सम्पूर्ण मानवता के परिदृश्य को अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास किया हैं–

"सभा में विराजे हैं बुद्धिमान
वे अभी राजा से तर्क करने को हैं
आज कार्य सूची के अनुसार
इसके लिए वेतन पाते हैं वे
उनके पास उग्रस्वर ओजमयी भाषा है
मेरा सब क्रोध, सब कारूण्य सब क्रन्दन
भाषा में शब्द नहीं दे सकता
क्योंकि जो सचमुच मनुष्य मरा
उसके पास भाषा न थी"---[1]

रघुवीर सहाय मानवीय मूल्यों का चित्रण करने के साथ ही अपनी रचनाओं में नारी चेतना को चित्रित करके नारी के मान–सम्मान के प्रति अपनी गहरी चिन्ता दर्शायी है, सहाय नारी के अधिकारों के सच्चे हिमायती रहे हैं। उन्होंने समाज की मजबूती के लिए नारी के मान–सम्मान की सम्यक् सुरक्षा को अति आवश्यक माना है। नारी के साथ होने वाले भेदभाव एवं गैर बराबरी की स्थिति को रघुवीर सहाय ने मानवीय मूल्यों की स्थापना में बहुत ही अवरोधक माना है– उनकी कविताएं सच्ची नारी पीड़ा को उभारती हैं–

"औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं
पुरूषों जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते हैं, उनमें मिठास है
पुरूष गिड़गिड़ाते हैं औरतें सिर्फ थाम लेती हैं बेवसी
कोई शरीर नहीं, जिसके भीतर उसका दु:ख न हो
तुम जब उसमें प्रवेश करते हो और वह नहीं मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनों के बीच की कोई स्थिति नहीं"---[1]

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसों– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 3
2. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 63

रघुवीर सहाय की कविताएं यह प्रमाणित कती हैं कि आज की सामाजिक स्थितियों के बीच असहाय स्त्री कितनी व्यथाओं से घिरी है। उसकी मर्यादा एवं सम्मान का कोई मूल्य नहीं रह गया है। सहाय की प्रबल–करूणा की भावना स्त्रियों और बच्चों की यातनामय जिन्दगी की अभिव्यक्ति द्वारा सर्वाधिक प्रकट हुई है। सहाय स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि उनकी कविताओं में औंरते और बच्चे सर्वाधिक इसलिए आते हैं कि वे उनकी मानवीय संवेदना के सर्वाधिक निकट हैं। उनका मानना है कि मानवीय मूल्यों के मार्ग में जिस तरह के मानसिक–आध्यात्मिक जुल्म अवरोधक सिद्व हो रहे हैं, वे सभी सर्वाधिक औरतें और बच्चों के ऊपर हो रहे हैं–

"यह इस समाज में है औरत की विडम्बना
हरबार उसे मरना होता है
टूटा हुआ बचाती है
वह अपने भीतर टूट–फूट के
बदले नया रचाती है
पर देखो उसके चेहरे पर
कैसी थकान है यह फैली
हँसने रोने को कहती है
उसमें पुरूषों की प्रियशैली"–––[1]

सहाय का यह मानना है कि हम सच्चे अर्थो में मानवीय मूल्यों की स्थापना में तभी सफल हो सकते हैं जब समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अत्याचार को जड़ से समाप्त क दिया जायेगा।

1.–– लोग भूल गये– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 91

रघुवीर सहाय की कविताएं यह सिद्ध करती हैं कि औरतों को भी पुरूषों के समान दर्जा मिल सकता है, जब उनके साथ होने वाले अनेकानेक अत्याचार को समाप्त करके, उनके बीच जो विषमता की खाई मजबूत हो रही है, उसे सदा के लिए समाप्त कर दिया जायेगा। आज जहाँ मानवीय मूल्यों को गौण बना दिया गया है और शोषण, दमन एवं बलात्कार जैसी भयावह स्थितियाँ औरतों के सम्मुख हैं, उनका एकताबद्ध होकर विरोध करने की आवश्यकता है। वस्तुतः तभी सच्चे न्याय और समानता की स्थिति के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा स्थापित हो सकती हैं।

"हाथ बालों पर नहीं जिनके कभी फेरा गया
बैठकर दो चार के संग
तजुर्बे अपने सुनाने का नहीं मौका मिला
औरतें वे सूखकर रह गयीं
उनकी बच्चियों ने जवाँ होकर दादियों की
काठियाँ पाईं"---[1]

रघुवीर सहाय सदैव मानवीय भावों को स्थिर रखने के पक्ष में रहे हैं। उन्हें किसी प्रका की महफिलबाजी पसन्द नहीं थी, क्योंकि वे यथार्थ की सच्ची चपेट में ही जीवन का सत्य एवं मानवीय भावों को खोजने का प्रयास करते रहे हैं।

समाज में व्याप्त अव्यवस्था जिसके परिणामस्वरूप मानवीय भावों पर सतत प्रहार हो रहा है, उसके खिलाफ रघुवीर सहाय एक सतत संघर्ष करने का प्रयास करते रहे हैं-

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 44

आधुनिक जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन करते हुए जीवन की समस्त बिडम्बनाओं को जिनके कारण आज मानवीय भावों, दया, करूणा, प्रेम, ईमानदारी आदि पर जो आघात पहुँच रहा है, उसे सहाय ने अपनी कविता का वर्ण्य विषय बनाकर चलने का प्रयास किया है– उन्होंने तत्कालीन अपने काव्य संग्रहों में संवेदना और बदलते सामाजिक मूल्यों, मानवीय भावों पर आघात पहुँचाने वाली अव्यवस्था के प्रति अपने दर्द को सहज भाव में अभिव्यक्त किया है, जैरा कि–

> टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
> उनके कल और परसों के आसुओं का
> प्रमाण मेरे पास लाओ
> मुझे शक है ये टूटते समाज में
> हिस्सा लेने आये हैं उसे टूटने से रोकने नहीं"---[1]

रघुवीर सहाय ने अपने अन्तिम कविता संग्रह, "एक समय था" में भी आजादी, न्याय और समता तथा मानवीय मूल्यों की सही तलाश के लिए बेचैन दिखाई देते हैं। उनके मतानुसार मानवीय मूल्यों के द्वारा ही एक आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। ऐसे समाज की जिसमें किसी प्रकार का वैषम्य नहीं रह सकता। "रघुवीर सहाय की जिजीविषा उनके सभी संग्रहों के आर–पार स्पन्दित है। उसमें विषाद है, पर निरूपायता नहीं, उसमें दुःख है, पर हाथ पर हाथ धरे बैठी लाचारी नहीं। वे अभी भी जीना चाहते हैं। कविता के लिए नहीं, कुछ करने के लिए कि मेरी सन्तान कुत्ते की मौत न मरे"---[2]

---

1. एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 51
2. वही, भूमिका में अशोक बाजपेयी का वक्तव्य

समाज में व्याप्त अत्याचार और गैर बराबरी के ऐश्वर्य और वैभव के विरूद्व अन्तिम कविता संग्रह की कविताएं जिन्दगी की निपट साधारणता में भी प्रतिरोध और संघर्ष की असमाप्य मानवीय संभावना की कविता हैं। अन्य काव्य संग्रहों की भाँति अन्तिम काव्य संग्रह में भी भाषा कौशल का ही नहीं, अपनी पूरी ऐन्द्रिकता में नैतिकता तलाश, मानवीय मूल्यों की खोज और आग्रह का हथियार विद्यमान है। पुरानी सामाजिक मान्यताओं एवं नैतिक परम्पराओं के ह्रास पर कवि अपना क्षोभ इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

"एक समय था, मैं बताता था कितना
नष्ट हो गया है अब मेरा पूरा समाज
तब मुझे ज्ञात था कि लोग अभी व्यग्र हैं
बनाने को फिर अपना परसों कल और आज"---[1]

आज युग इतना बदल चुका है कि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा बिल्कुल समाप्त हो चुकी है। कवि, लेखक एवं अन्य साहित्यकार भी इन मानवीय मूल्यों की तरफ विशेष ध्यान नहीं देख रहे हैं, जिसके कारण इन मानवीय मूल्यों का निरन्तर ह्रास ही हो रहा है। लेकिन रघुवीर सहाय ने अपने सभी काव्य संग्रहों एवं अन्य रचनाओं में भी मानवीय मूल्यों के ह्रास पर अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है, और उनको जीवित करने के लिए अपना सशक्त प्रयास भी किया है।

******

---

1 एक समय था– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 39

अध्याय : पंचम

भाषा और रचना शिल्प

अध्याय – पंचम

भाषा और रचनाशिल्प

1. भाषा को प्रभावित करने वाले घटक

क) पत्रकारिता, ख) अंग्रेजी साहित्य, ग) यथार्थ से जुड़ाव

2. नयी भाषा की खोज

3. भाषा की विशेषताएं : क) सपाटबयानी, ख) सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता, ग) वाक्य का महत्त्व, घ) नाटकीयता एवं झटका देने की कला, ड.) व्यंग्यात्मक तेवर, च) बिम्ब और प्रतीक

4. भाषा की शाब्दिक संरचना– अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, तद्भव, देशज, तत्सम।

5. छन्द, लयात्मकता, संगीतात्मकता

भाषा :

रघुवीर सहाय आम जनता के कवि हैं। सामान्य जन के अभाव, संघर्ष एवं पीड़ा को सहाय ने सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया। यही कारण है कि उनकी काव्य–भाषा आम जनता के बिल्कुल करीब पहुँचने वाली भाषा है। इस भाषा में एक सजग एवं संवेदनशील नागरिक का दायित्व बोध समाहित है। उनकी संवेदना और अनुभूति आम आदमी की अनुभूति है; जिसमें कि समाज के दु:ख झेलते शोषित उपेक्षित लोगों का चित्रण प्राप्त होता है। जनता के दु:ख दर्द को रघुवीर सहाय ने अपना दर्द समझने का प्रयास किया है। अपनी सहज प्रवाहमान भाषा के माध्यम से रघुवीर सहाय ने जन साधारण के दु:ख दर्द को अपने काव्य में उभारने का प्रयास किया है–

"झुर्रिया डरा हुआ दुबला–साँवला चेहरा
बस से उतरी हुई भीड़ में एक–एक कर देखा वह नहीं था
पिछली बार बहुत देर पहले उसे अच्छी तरह देखा था
रोज आते–जाते हैं बस में लोग एक दिन खत्म हो जाते हैं
या कि खत्म नहीं होते चुप–चाप
मरने के लिए कहीं दुबक जाते हैं---[1]

यह बिल्कुल निश्चित है कि रघुवीर सहाय के लिए एक समाज और एक बिल्कुल बराबरी के समाज की खोज करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। इन सबकी स्पष्ट छाप रघुवीर सहाय की भाषा पर है। भाषा के प्रति भी उनकी बहुत बड़ी चिन्ता थी। वे हिन्दी के बहुत बड़े समर्थक थे, लेकिन हिन्दी के पुजारी बनने के विरोधी थे। वे हिन्दी के रचनात्मक इस्तेमाल और उसकी

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 65

संभावनाओं को लगातार खोजने के आग्रही थे। उसे पूजनीय वस्तु बनाने वालों पर उन्होंने "दिनमान" में कई बार करारा व्यंग्य किया। भाषा को रघुवीर सहाय सामाजिक सम्बन्धों का ही दूसरा नाम मानते थे। दूसरी भारतीय भाषाओं से उनका गहरा प्रेम भी इसी हिन्दी प्रेम का एक आयाम था। "दिनमान" के पन्नों में रघुवीर सहाय ने कवि शमशेर बहादुर सिंह से "उर्दू" शिक्षा के कई पाठ लिखवाये थे। जिनसे हजारों लोगों ने उर्दू सीखने का प्रयास किया। भाषा को अर्थहीन या विकृत करने की शासक वर्ग की कोशिशों के प्रति रघुवीर सहाय हमेशा सजग रहे। उनकी एक कविता "दो अर्थ का भय" इन्हीं कोशिशों का विरोध करने वाली कविता है, जिसमें उन्होंने लिखा है—

> मुझे मालूम था मगर इस तरह नहीं कि जो
> खतरे मैंने देखे थे वे जब सच होंगे
> तो किस तरह उनकी चेतावनी देने की भाषा
> बेकार हो चुकी होगी
> एक नयी भाषा दरकरार होगी"---[1]

रघुवीर सहाय भाषा और मनुष्य के रिश्ते को किस तरह अविभाज्य मानते थे। इसका सफल उदाहरण "फूल माला हाथों" में मिलता है—

> "जब हत्यारे सारे शब्दों को
> तोड़ लेंगे
> तब वे अपने-अपने मित्रों को
> मार देंगे
> एहतियातन
> फूल माला हाथों में
> बच्चों के"---[2]

---

1 हँसो-हँसों जल्दी हँसो – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 3

2. वही " पृ0सं0 70

रघुवीर सहाय अपने जीवन की एक बहुत बड़ी लड़ाई भाषा के मोर्चे की लड़ाई समझते थे, और इस मोर्चे पर उन्होंने अपनी हार की सूचना एक ईमानदार योद्धा की तरह दी थी–

"हम लड़ रहे थे
समाज को बदलने के लिए एक भाषा का युद्ध
पर हिन्दी का प्रश्न नहीं रह गया
हम हार चुके हैं
हिन्दी है मालिक की
तब आजादी के लिए लड़ने की भाषा फिर क्या होगी"---[1]

रघुवीर सहाय में भाषा सम्बन्धी खोज की छटपटाहट का एक और पहलू दिखाई देता है, जो उनकी कविता "फिल्म के बाद चीख में" इस प्रकार अभिव्यक्त की गयी है–

"न सही यह कविता
यह मेरे हाथ की छटपटाहट सही
यह कि मैं घोर उजाले में खोजता हूँ
आग
जबकि हर अभिव्यक्ति
व्यक्ति नहीं अभिव्यक्ति
जली हुई लकड़ी है न कोयला न राख'---[2]

रघुवीर सहाय की भाषा की खोज धीरे-धीरे आग की खोज में बदल गयी है और कविता बिल्कुल हाथ की छटपटाहट बन गयी है। रघुवीर सहाय ने अपनी

---

1 लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 77

2. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27

कविताओं में जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसमें कहीं न कहीं निराला, शमशेर, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन सभी याद आते हैं। लेकिन वे सभी केवल इसी अर्थ में याद आते हैं कि रघुवीर सहाय की अपनी एक भाषा है। यथार्थ और जीवन की करूण और संवेदनशील पहचान है; जिस प्रकार इन सभी कवियों की अपनी पहचान है। सहाय ने अपनी कविताओं में सन्दर्भो, अनुभूतियों और घटनाओं की जो प्रत्यक्षता रची है उसे आज भी हमारी विश्वविद्यालयी आलोचना का एक बहुत बड़ा अंश "अखबारी रपट" वाला यथार्थ कहकर मुक्त हो जाता है लेकिन एक दूसरा वर्ग जो थोड़ा अधिक साहसी और आधुनिक है, उनके निकट तो जाता है लेकिन लगातार इसी बात पर चमत्कृत होता रहता है कि इन कविताओं में बेशुमार लोगों का माना जाना है।

सहाय का यह अपना विचार है कि कविता में जितना महत्त्व नये विषय-वस्तु का है उतना ही इस बात का भी है कि वह किस प्रकार संवेदना के नये रूपाकार गढ़ रही है। सहाय की काव्य संवेदना और उनकी निरन्तर सक्रिय प्रयोगधर्मिता, उनकी भाषा को एक सुव्यवस्थित रूप प्रदान करता है ।

(1) भाषा को प्रभावित करने वाले घटक :

(क) पत्रकारिता :

यह सर्वविदित तथ्य है कि रघुवीर सहाय ने अपने जीवन की वास्तविक शुरूआत पत्रकारिता से की थी और 1951 ई0 में "प्रतीक" के सम्पादक मण्डल में आकर उन्होंने अपने कार्य को आगे बढ़ाया।

एक आधुनिक कवि होने के कारण रघुवीर सहाय की भाषा और अनुभूति में जो बातें विशेष रूप से हम पाते हैं- वे हैं-

1 भाषा में बोलचाल का लचीलापन

2. गद्य जैसी रवानी और ऊपर से दिखाई देने वाली

3 अति सरलता या सपाट बयानी -

4. कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शाक करने की इच्छा।

जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील होने के कारण नयी कविता में भाषा का बोलचाल का रूप खुलना स्वाभाविक है। इसके पहले के युगों की कविता उदात्त चरित्रों के उदात्त जीवन की ही अभिव्यक्ति थी। रघुवीर सहाय अपनी भाषिक संवेदना के लिए यह स्वीकार करते हैं कि उनकी कविता उदात्त और साधारण में कोई अन्तर नहीं करती है। उनकी कविता के लिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक और समग्र से समग्रतर जीवन अर्थमय हो सके। जीवन में यदि उन्मुखता और ऊब है, तो दोनों ही अनुभव उसके लिए मूल्यवान हैं। रघुवीर सहाय स्वयं यह प्रतिज्ञा करते हैं कि-

"हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
"कम से कम" वाली बात न हमसे कहिए"----[1]

"समग्र" और "सम्पूर्ण" आलोचक के शब्द हैं। कवि के लिए बोलचाल का "सारा का सारा" अधिक अर्थ देता है। रघुवीर सहाय की भाषा की यह अपनी एक अलग विशेषता है।

---

1 सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय पृ0सं0 109

रघुवीर सहाय आरम्भ से ही आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं समाचार पत्र–पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे हैं; परिणामस्वरूप उनकी भाषा में अखबारी पुट का पाया जाना नितान्त स्वाभाविक है। उनकी पत्रकारिता को मुख्य रूप से "दिनमान" के माध्यम से जाना जाता है। रघुवीर सहाय ने अपने को हिन्दी पत्रकारिता के उन स्रोतों से जोड़ा था जो जनोन्मुख और जनाधारित थे। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय की कविताएँ एक गहरे अर्थ में राजनैतिक चेतना से ओत–प्रोत हैं। केवल इतना ही नहीं, रघुवीर सहाय ने अखबार की भाषा से राजनीति लेकर उसे कविता में गढ़ा है; आज जबकि साहित्यिक रचनात्मकता पर पत्रकारिता का दबाव बढ़ता जा रहा है; व्यवसायतः समाचार पत्रों से जुड़े कवि रघुवीर सहाय ने अखबार को कविता में रूपान्तरित किया है। सहाय यह मानते थे कि अखबार स्वभावतः बोल–चाल और दिन–प्रतिदिन के जीवन से जुड़ा हुआ है, और कवि वहीं से अपने अनुभव के लिए भाषा उठाता है। रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा में जिस अखबारी भाषा का प्रयोग किया है। उनमें मानवीय रिश्ते छिपे हुए हैं। उनकी पत्रकारिता, बिल्कुल लोकतंत्र की पत्रकारिता हैं, जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत घायल किये गये निम्न मध्यवर्गीय लोगों में दर्द का चित्रण है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा में जो अखबारी तेवर प्रस्तुत किया है, वह केवल अखबारी रपट या निराधार सबूत न होकर सच्चे मानवीय रिश्ते को प्रकट करता है–

"जब मर के गया मैं बाहर
तब याद मुझे आया घर
अब भी वो झगड़ते होंगे
हंगनी–मुतनी बातों पर
माँ अब भी दिलाती होगी
क्या मेरे मरने का डर"––––[1]

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 51

रघुवीर सहाय का यह भी मानना है कि कविता में अखबार की स्थिति से वास्तविकता प्रकट होती है और उससे भाषा भी गद्यमय हो जाती है। उनके अनुसार रचना में एक विस्तृत संसार के लिए जिस जटिलता की आवश्यकता होती है, वह अखबार के माध्यम से सरल और सुबोध बन जाता है। इस सन्दर्भ में डा0 नामवर सिंह ने स्वयं लिखा है – ""सार्थकता का कारण है वर्तमान की सही पहचान" सूक्ष्म पर्यवेक्षण और अप्रतीकी अभिव्यक्ति। क्या इन सब बातों में परस्पर विरोध नहीं है? यदि पर्यवेक्षण सूक्ष्म है तो फिर व्यापक संसार सरल कैसे हुआ ? यदि कविता में वर्तमान की सही पहचान है तो फिर वह अखबारी कैसे हुई"?---[1]

यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय ने समाचार संग्रह के साथ-साथ अपनी जीविका के लिए जिस पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा था वह उस समय बहुत आसान नहीं था। इसीलिए तब भी और आज भी पत्रकारिता को नियंत्रित करने वाली व्यवस्था का चेहरा कभी साफ नहीं दीखता। इस न दिखाई देने वाली लेकिन सर्वत्र उपस्थित चेहरे को पढ़ने और व्यर्थ बनाने की ही नहीं, उसे उखाड़ फेकने की जितनी ईमानदार कोशिश रघुवीर सहाय की रचनाओं में मिलती है, उतनी किसी और कवि की कृति में नहीं प्राप्त होती है।

पत्रकारिता के साथ-साथ संचार माध्यमों आकाशवाणी, तथा दूरदर्शन द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों की परिकल्पनाओं से जुड़े रहने के बावजूद सरकारी माध्यमों के अनावश्यक हस्तक्षेप के बारे में रघुवीर सहाय उदार नहीं रहे थे। वे सरकारी टेलीविजन को आड़े हाथ लेते रहे और दूरदर्शन को दुरदर्शन कहने लगे थे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे इसके प्रबल समीक्षक हो गये थे।

---

1 कविता के नये प्रतिमान– डा0 नामवर सिंह पृ0सं0 217

"कल जब घर को लौट रहा था देखा उलट गयी है बस
सोचा मेरा बच्चा इसमें आता रहा न हो वापस
टेलिविजन ने खबर सुनायी पैंतिस घायल एक मरा
खाली बस दिखला दी खाली नहीं कोई चेहरा
वह चेहरा जो जिया या मरा व्याकुल जिसके लिए हिया
उसके लिए समाचारों के बाद समय ही नहीं दिया"---[1]

रघुवीर सहाय की भाषा यद्यपि पत्रकारिता एवं अखबारी पुट से बिल्कुल प्रभावित है; लेकिन उसे अखबारी कहना समीचीन नहीं होगा। सहाय ने जीवन के सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए अपनी भाषा को ऐसी कसौटी पर कसने का प्रयास किया है जो कि हर तरह से उपयुक्त भाषा सिद्व हो सके। चूँकि उनका साहित्यिक जीवन पत्रकारिता से ही आरम्भ होता है; परिणामस्वरूप उनकी भाषा में पत्रकारिता का प्रभाव स्वाभाविक है; जिसके माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का सही मूल्यांकन होता है। पत्रकारिता रघुवीर सहाय के जीवन का अभिन्न अंग रही है; इसलिए पत्रकारिता को अलग करके उनकी भाषा का मूल्यांकन करना अधूरा ही साबित होगा।

"हो सकता है कि कोई मेरी कविता आखिरी कविता हो जाये
मैं मुक्त हो जाऊँ
ढोंग के ढोल जो डुंड बजाते हैं उस हाहाकार में
यह मेरा अट्हास ज्यादा देर तक गूँजे खो जाने के पहले
मेरे सो जाने के पहले
उलझन समाज की वैसी ही बनी रहे।"[2]

---

1. हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 47
2. आत्म हत्या के विरूद्व - रघुवीर सहाय, पृ0सं0 16

(ख) अंग्रेजी साहित्य :

रघुवीर सहाय अंग्रेजी में एम0ए0 होने के कारण अंग्रेजी साहित्य में भी भरपूर रूचि रखते थे। मूलतः वे हिन्दी के ही हिमायती रहे हैं। लेकिन उनकी भाषा अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित है। सहाय ने अपनी भाषा को सामान्य बोलचाल की भाषा का रूप दिया है। चूँकि आज के परिवेश में सामान्य बोल चाल की भाषा में अंग्रेजी का पुट भाषा को ज्यादा सशक्त बनाने के लिए बड़ी तेजी से बढ़ रहा है, रघुवीर सहाय की भाषा भी इस प्रभाव से अछूती नहीं रही है। समाचार पत्र–पत्रिकाओं एवं दूरदर्शन से सम्बद्ध होने के कारण इनकी भाषा में अंग्रेजी के शब्दों का आना स्वाभाविक है। उन्होंने डिसमिस, इडियट, रिवर्ज थैंक यू, सोसायटी, माडर्न जैसे शब्दों को अपनी भाषा में प्रयुक्त करके अपनी भाषा को अधिक सक्षम एवं धारदार बनाने का प्रयास किया है।

(ग) यथार्थ से जुड़ाव :

रघुवीर सहाय आम जनता के कवि होने के कारण यथार्थ का सफल चित्रण अपनी सहज एवं साधारण बोल–चाल की भाषा में करने का प्रयास किया है। उनकी भाषा का यथार्थ से गहरा रिश्ता साबित होता है, जिसमें कि सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी परिवेश स्वतः उभरकर सामने आ जाते हैं।

यह निश्चित है कि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में रघुवीर सहाय का दृष्टिकोंण चाहे कुछ भी रहा हो, लेकिन उनकी अनुभूति और संवेदना बिल्कुल मानवीय रही है। जिसमें कि वे सम्पूर्ण मानवता के दुःख दर्द को समेटने का प्रयास किया है। अपनी भाषा के माध्यम से वे अपनी आत्मीयता को यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु अक्सर आलोचना या खीझ

की तरह रखते हैं। अपनी सामयिक स्थितियों से उनका यह संघर्ष जो एक ओर बेहद आत्मीय है, गहन और दुर्बोध भी, वहीं पर उनकी भाषा के यथार्थ सम्बन्धी तत्त्व का निरूपण करती हैं। यही कारण है कि रघुवीर सहाय यथार्थ की गहराई को सच्चे रूप में अभिव्यक्त करने के लिए नई भाषा, एक नयी लय, नये तरह के वाक्य का सहारा लेते हैं।

उनकी भाषा यथार्थ का सिर्फ वर्णन ही नहीं करती, अपितु यथार्थ का, उसके सच का वह अन्वेषण करती है। रघुवीर सहाय ने यह भी कहा है कि–

"कविता तभी होती है जब वह विषय से दूर और वस्तु के
निकट होती है
कविता अकेले करती है
और जब हम बहुत तरह के अन्य काम करते हैं तो
उनसे कविता में बाधा इसलिए नहीं पड़ती
कि वे दूसरे प्रकार के काम हैं
बल्कि इसलिए कि वे हमेशा हमें बाध्य करते हैं
कि हम दूसरों के साथ काम करें
जबकि कविता अकेले ही काम करने का तकाजा करती है"---[1]

यथार्थ से सीधे जुड़े होने के कारण सहाय ने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों के प्रति अपनी होशियारी दिखाई है। उनकी काव्य भाषा की शक्ति सम्पन्नता उनकी कविताओं में आरम्भ से है। यथार्थ से उनका जुड़ाव आरम्भ से ही है। रघुवीर सहाय की भाषा की जीवन्तता के कारण पर विचार करते हुए सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन अज्ञेय ने एक उल्लेखनीय बात कही थी–

---

1 लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 53

"अपने छायावादी समवयस्कों के बीच बच्चन की भाषा जैसे एक अलग आस्वाद रखती थी और शिखरों की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख थी। उसी प्रकार अपने विभिन्न मतवादी समवयस्कों के बीच रघुवीर सहाय भी चट्टानों पर चढ़कर नाटकीय मुद्रा में बैठने का मोह छोड़, साधारण घरों की सीढ़ियो पर धूप में बैठकर प्रसन्न हैं"---[1]

रघुवीर सहाय की भाषा के सन्दर्भ में यह कहना कि वह शिखरों की ओर न ताककर शहर के चौक की ओर उन्मुख है; यह प्रमाणित करता है कि रघुवीर सहाय की भाषा बिल्कुल बोल--चाल की भाषा और सर्वसाधारण की भाषा है, जिसका यथार्थ से सीधा और गहरा रिश्ता है। वस्तुत. रघुवीर सहाय की भाषा नयी कविता के दौर में अपना सहज एवं यथार्थवादी प्रभाव छोड़ती हैं साथ ही साथ जनसाधारण के बिल्कुल करीब पहुँच जाती है। रघुवीर सहाय की भाषा के यथार्थ सम्बन्धी रिश्ते एवं साधारण बोल--चाल की निकटता को लक्ष्य करके डा0 नामवर सिंह ने लिखा है कि--

"वह केवल भाषागत स्वाभाविकता अथवा स्थूल प्रकृतिवादी (नेचुरलिस्ट) प्रवृत्ति का ही सूचक नहीं, बल्कि उसके साथ कवि का एक गम्भीर नैतिक साहस जुड़ा हुआ है, जिसके अनुसार अपने आस--पास की दुनिया में हिस्सा लेते हुए ही कविता को इस दुनिया के अन्दर एक दूसरी दुनिया की रचना करना आवश्यक हो जाता है"---[2]

---

1 सीढ़ियों पर धूप में--रघुवीर सहाय, पृ0सं0--10

2 कविता के नये प्रतिमान-- डा0 नामवर सिंह, पृ0सं0 116

सर्वसाधारण एव बोल-चाल की भाषा में जो एक सहज आत्मीयता एवं लय है, चीजों को प्रस्तुत करने की जो यथातथ्यता है, उसके द्वारा सहाय अपनी कविता में भाषा की जीवन्त शक्ति तो प्राप्त करते ही हैं, इसके अतिरिक्त नयी कविता के दौर में बहुप्रचलित दुरूहता से बचकर यथार्थ के बिल्कुल करीब पहुँच जाते हैं। अपनी भाषा और अनुभूति के माध्यम से जीवन के सच्चे यथार्थ को चित्रित करने के कारण रघुवीर सहाय के अनुभव और संवेदना की प्रामाणिकता सिद्व होती है-

"सच क्या है?
बीते समय का सच क्या है ?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया
तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था समझ,
क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है।
वह बता"---[1]

यथार्थ से मुठभेड़ तथा जीवन के प्रति सच्ची हिस्सेदारी ने रघुवीर सहाय की कविता की भाषा को सर्जनात्मक बनया है। भाषा की यह सर्जनात्मकता जिन्दगी के यथार्थ में सीधी हिस्सेदारी के बगैर कविता में संभव नहीं की जा सकती है। भाषा की सर्जनात्मकता की जो शक्ति रघुवीर सहाय की साठ के बाद की कविताओं में अपने समकालीनों के मुकाबले सर्वाधिक दीखती है, उसका आरम्भ उनकी नयी कविता के दौर की कविताओं में हो ही गया था।

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 21

यह सर्वथा सत्य है कि रघुवीर सहाय की भाषा में जहाँ एक ओर अखबारी पुट है; वहीं पर हम यह देखते हैं कि इनकी भाषा बिल्कुल साधारण और सामान्य जन की भाषा है। यह भाषा आम आदमी की भाषा है, जिसके माध्यम से हर व्यक्ति अपने-अपने विचारों को सम्प्रेषित कर सकता है। रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें जीवन की स्वाभाविकता का सफल चित्रण है और वह यथार्थ के गहरे तल को स्पर्श करती है-

"हम सब जानते थे गरीब क्या चीज होती है
हम सब गरीब को बिसरा चुके थे
हममें से एक ने कहा रोज कम खाना मेरे दो बच्चों
को तोड़ता
मरोड़ता कुतरता है रोज-रोज कुछ समझे?
बुझते हुए धीरे-धीरे एक दिन हजार लोग रोज
सहने के अन्तिम कगार पर खड़े हो
भारतवर्ष में फलाँग पड़ते हैं
व्यक्ति स्वातंत्र्य के समुद्र में कोई धमाका नहीं"---[1]

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0-25

(2) **नयी भाषा की खोज:**

रघुवीर सहाय भाषा की खोज के प्रति बहुत ही प्रयत्नशील रहे हैं। अपनी कविता के द्वारा सहाय ने समय की फरियाद को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि कविता चाहे प्रकृति की हो, चाहे प्रेम की बाजार की या कि संसद की, रघुवीर सहाय की भाषा के विधान में कोई जटिलता नहीं आती। वह सबके लिए समान रूप से सुलभ है। आँगन–शयन कक्ष, बैठक और सड़क कहीं के लिए उसे विशेष सज्जा या कि असज्जा नहीं करनी पड़ती। बिल्कुल सामान्य बोल–चाल और साधाण अनुभव का रघुवीर सहाय की कविता में खुलना कवि के पहले संकलन "सीढ़ियों पर धूप में" मिलता है।

"नव युग आजादी का, नव युग की आजादी
इतने में किसी ने टोक कर जैसे डपट दिया
"देख, सुन, समझ, अरे घर घुस जनवादी"
चौंक देखा कोई नहीं, सुना केवल ढप्–ढप्
आँगन में गेहूँ का कूड़ा फटका रहीं
सोलह सेर वाले दिन देखे हुई दादी"---[1]

जहाँ बच्चन की भाषा दूर तक इतिवृत्तात्मक और मुहाविरों से परिचालित होने वाली है, वहीं पर रघुवीर सहाय साधारण बोलचाल की भाषा को लेकर उसमें बिम्ब रचते हैं जो सम्प्रेषण का कहीं अधिक दक्ष, लेकिन उतना ही मुश्किल ढंग है–

"सीढ़ियों पर धूप में" की "धूप" कविता में उन्होंने लिखा है –

"कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने–झरने को
और हल्की सी हवा में और भी जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[2]

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 174

2. वही " पृ0सं0 168

रघुवीर सहाय की भाषा को ही लक्ष्य करके "सीढ़ियों पर धूप में" की भूमिका में अज्ञेय जी ने लिखा है– कि "भाषा की सहज प्रवाहमान प्रसादमयता" रघुवीर सहाय की कविता में है, कहानियों और समय–समय पर टीप लिये गये अन्तरालोकित वाक्यों में संघात के क्षण को पकड़ने की पूर्ण सजगता भी रघुवीर सहाय की भाषा में दिखाई देती है"---[1]

कविता भाषा के लिए कितनी आवश्यक है? इस बात को रघुवीर सहाय भली–भाँति समझते थे और अपनी भाषा को उसके मुताबिक ढालने का प्रयास भी करते थे –

"एकाएक किसी चेहरे को देखकर मुझे जब लगता है कि
यह वही है
तब थोड़ी देर में गौर से देखकर जान पाता हूँ वह नहीं है
हथियार मुझसे यह छीन ही नहीं सकता"---[2]

जब इन सब वाक्यों को हम बड़े सपाटे के साथ पढ़ने की चेष्टा करते हैं, तो ये वाक्य पढ़े नहीं जा सकते। कामा, अर्द्धविराम या पूर्ण विराम भी यहाँ नहीं, जो बाहर से कुछ अकुंश लगायें। अगर इनको तेजी से पढ़ जाय तो ऐसा लगता है कि ये वाक्य हैं। न तो अर्थ ठीक प्रकार से पकड़ में आता है और न तो उसका कोई सौन्दर्य ही खुलता है। ऐसी स्थिति में हम ऐसा सोचते हैं कि उसका ऐसा लिखा जाना कोई काव्य चातुर्य ही है, शमशेर का गद्य और कविता पढ़ने वाले से जैसा धीरज और ठहर–ठहरकर पढ़ने की दरकार रखता है। आत्यन्तिक रूप से भेद

---

1. सीढ़ियों पर धूप में की भूमिका में अज्ञेय जी का वक्तव्य
2. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 50

रखते हुए रघुवीर सहाय की कविता का वाक्य भी बहुत कुछ वैसा ही चाहता है– अपनी कविता की भाषा में उन्होंने जीवन की सहजता और यथार्थ को सफलतापूर्वक चित्रित करने का प्रयास किया है।

"वे जिन तकलीफों को जानकर
उनका वर्णन नहीं करते हैं
वही है कला उनकी
कम से कम कला है वह
और दूसरी जो है बहुत सी कला है वह
कला बदल सकती है क्या समाज?
नहीं, जहाँ बहुत कला होगी, परिवर्तन नीं होगा"–––[1]

अपनी साधारण बोलचाल की भाषा में रघुवीर सहाय ने लम्बी कविता का विधान नहीं किया है। उनकी छोटी–छोटी कविताओं में ही जीवन का इतना विस्तार और वैविध्य है कि महाकाव्य के लिए गिनाये गये वर्ण्य विषयों की लम्बी सूची और उसकी सार्थकता अनायास याद हो आती है। मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और प्रकृति, प्रविधि तथा तथा राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटों को सहज ढग से कवि अंगीकार करता है–

"घड़ी नहीं कहती है "डिग" जो अपने पथ से
डिग जाने पर घड़ी नहीं कहती है "धिक"
और यह तो वह कभी नहीं कहती है, साथी "ठीक" है
वह कहती है टिक–टिक टिक–टिक टिक–टिक टिक
और टिक–टिक टिक
और टिक–टिक–टिक
और टिक–टिक–टिक
और टिक
और टिक
टिक ----"[2]

---

1 लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 12

2 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 159

साधारण और बोल चाल की भाषा में अपनी कविता लिखते हुए रघुवीर सहाय यह प्रतिपादित करते हैं–

"सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे–दो चार को छोड़– कभी न कभी प्यार
मेरे सृजन, कर्म–कर्तव्य, मेरे आश्वासन, मेरी स्थानाएं
और मेरे उपार्जन, दान व्यय मेरे उधार
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे – ये मेरे महत्त्व
डूब जायेगा तन्त्रीनाद–कवित्त रस में, राग में, रंग में
मेरा यह ममत्व।
जिससे मैं जीवित हूँ।
मुझ परितृप्त को तब आकर बरेगी मृत्यु
मैं प्रतिकृत हूँ"––––[1]

जीवन के प्रति यह आभार और सार्थकता का बुनियादी भाव रघुवीर सहाय की कविताओं में अर्न्तधारा की तरह व्याप्त है, जो खीज, ऊब, निराशा के बीच सूखता नहीं। सीढ़ियों पर बैठा व्यक्ति आत्म हत्या के विल्कुल विरूद्ध हो, यह बिल्कुल सहज स्वाभाविक है। अपने निहित विश्वास के साथ कि "सारे संसार में फैल जायेगा एक दिन मेरा संसार" यह रघुवीर सहाय का अपना कोई अहंकार नहीं, बल्कि आत्म विश्वास है। उन्होंने अहं को डुबोकर अपनी व्यापक अनुभूति अर्जित की है। यहाँ उनकी साधारण बोल–चाल की भाषा शिल्प या मुद्रा नहीं है, बल्कि उनकी निष्ठा का आधार है। यह मध्यम वर्ग और बोलचाल ही जीवन का अनन्त प्रवाह है, जो मनुष्य की महिमा, करूणा और विद्रूप सबको साधे है, और जो मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा है। रघ्वीर सहाय की बोल चाल की भाषा में तोष "उल्लास"

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 88

और शरारत की मन:स्थितियों का स्रोत यही है। सहाय जिस भाषा के द्वारा आम जनता के दर्द को उभारते हैं, उसी में वे अपने चारों ओर के विकृत परिवेश से अपनी अप्रसन्नता भी प्रकट करते हैं।

(3) **भाषा की विशेषताएं** :

(क) **सपाटबयानी** :

नयी कविता के दौरान तरह-तरह के बिम्ब एवं प्रतीकों के माध्यम से रचनाकारों ने अपने विचारों को काव्य भाषा में प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। यह भी कहा जाता है कि एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बों के आधार पर ही की जा सकती है।

यह कहा जाता है कि प्राचीन काव्य में जो स्थान "चरित्र" का था, आज की कविता में वही स्थान बिम्ब अथवा इमेज का है। जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करने के लिए सहाय ने कोई इरादा बनाकर बिम्बों का प्रयोग नहीं किया है, बल्कि ये सहज रूप में ही उनकी काव्य भाषा में प्रकट होते हैं। वास्तविकता को अपनी सारी जीवन्तता में व्यक्त करने का सही तरीका रघुवीर सहाय की भाषा में दिखाई देता है, जिसमें रघुवीर सहाय ने व्यक्तिवाचक नामों का सहारा लिया है। कविता में व्यक्तिवाचक नामों का प्रयोग एक समय निराला ने भी किया था, लेकिन रघुवीर सहाय ने जिन नामों का प्रयोग किया है वे अब विशिष्ट काव्यात्मक हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त एक नाम से क्या बात हो जाती है। एक शब्द में कितनी बातें कह दी गयी हैं। और और उस शब्द का होना कितना अनिवार्य है। यह सहज एवं मूर्ति का एक सरल रूप है। लेकिन वह बिम्ब योजना नहीं है।

रघुवीर सहाय यथार्थ को उसी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए बिम्ब की परिसीमा को पार करके एक खास तरह की सपाटबयानी की तरह अग्रसर होते हैं–

> प्रिय पाठक
> ये मेरे बच्चे हैं
> कोई प्रतीक नहीं
> और इस कविता में
> मैं हूँ मैं
> कोई रूपक नहीं"---[1]

"एक अधेड़ भारतीय आत्मा" के माध्यम से रघुवीर सहाय का यह कथन उस बदली हुई मन.स्थिति का अर्थ पूर्ण संकेत हैं।

यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य में छठे दशक के अन्त और सातवें दशक के आरम्भ में सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो उठी थी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिए अनावश्यक बोझ प्रतीत होने लगा। जिस प्रकार सन् 1936 तक आते–आते स्वयं छायावादी कवियों को भी सुन्दर शब्दों और चित्रों से लदी हुई कविता निःसार लगने लगी, उसी प्रकार सन् 1960 ई0 के आस–पास नयी कविता की बिम्ब–धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा। ऐसी कठिनाई सामने आयी कि चीजों को किस नाम से पुकारूँ। इसी कठिनाई ने उस प्रवृत्ति को जन्म दिया जिसे अशोक बाजपेयी ने श्रीकान्त वर्मा के दो नये काव्य संग्रह "माया दर्पण" और "दिनारम्भ" की समीक्षा (धर्मयुग 23 जून 1968) करते हुए "सपाट बयानी" का नाम दिया है।

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0–75

इस सपाटबयानी के क्रम में रघुवीर सहाय केदारनाथ सिंह और श्रीकान्त वर्मा, इन तीन कवियों का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए अशोक बाजपेयी ने यह प्रतिपादित किया हे कि इन तीनों रचनाकारों ने सपाटबयानी के मूल्य को पहचाना, लेकिन उसे अपनी बुनियादी बिम्बधर्मिता के प्रतिकूल न रखकर उसे उसके साथ संयोजित किया और अपने मुहावरों को और उनसे उजागर होने वाले काव्य संसार को समृद्ध किया। चित्रमयता को खोये बिना उसे रोजमर्रा की जीवन्तता दी।

कविता में सपाटबयानी का यह आग्रह वास्तव में गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग में बिम्बवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है। रघुवीर सहाय की कविताओं में यह सपाटबयानी सही तौर पर उपलब्ध है।

उनका विश्वास है कि कविता बिम्ब का पर्याय नहीं है। सामान्य तौर पर जिसे बिम्ब कहा जाता है, उसके बिना भी कविताएं लिखी गयी हैं। बिम्बों के कारण कविता बोलचाल की भाषा से सदैव दूर हटी है। बोलचाल की सहज लय खण्डित हुई है। विशेषणों का भी भार बढ़ा है। इसी कमी को दूर करने के लिए रघुवीर सहाय ने अपनी कविता में सपाटबयानी का सहारा लिया।

रघुवीर सहाय की सपाटबयानी के आगे बिम्ब प्रक्रिया छिप गयी है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी पहलुओं की सच्ची अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी भाषा में सपाटबयानी का सहारा लेकर प्रस्तुत किया है, "यह सही है कि एक गाँव में लगातार रहकर भी अपने इंसान को जाना जा सकता है। मगर
एक पंचायत से, घुटने से, मुक्ति से,
एक गाँव से, दूसरी में जाना जाति के घेरे में रहकर संभव नहीं। भाषा का पक्षधर एक घर घुस समाज दूर पर जो घेरा डाले कृतिकार को हर समय तोड़ता

रहता है, उसको फलाँग कर किसी और भाषा में, किसी और विधा में, किसी और देश में किसी इतिहास में, कहीं भी किसी और घेरे में जाना ही पड़ेगा– अन्त में उसको भी अपेक्षया जल्दी ही तोड़ने के लिए। मुझे शक्ति यह जानकर नहीं मिलती है कि मैंने अपने को कहाँ जोड़ा है। मेरा सर्जनात्मक सुख यह जानने में है कि मैंने अपने को कहाँ तोड़कर एक नयी बस्ती बसाई है"–––[1]

(ख) **सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता :**

रघुवीर सहाय अपने समय के समाज को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा था और तत्काल परिवेश को समुचित रूप से चित्रित करने का भी प्रयास किया है। उन्होंने जीवन के सच्चे यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अपनी भाषा में गद्यात्मकता का भी सहारा लिया है। इनकी काव्य भाषा भी अधिकतर गद्योन्मुख दिखाई देती है। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय के काव्य–स्वभाव में छायावादी नीली भावुकता और तरल रोमान की गन्ध नहीं आती है। वे अपनी भाषा में गद्यात्मकता का पुट देकर जिस यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते हैं, उसके माध्यम से यथार्थ की विभीषिकाओं से हमारा साक्षात्कार होता है। वे अपनी काव्य भाषा में सघन गद्यात्मकता का भाव पैदा करके यथार्थ की उबड़–खाबड़ और पथरीली जमीन पर चलने का प्रयास करते हैं। रघुवीर सहाय अपनी काव्य भाषा के माध्यम से जो प्रभाव छोड़ते हैं; उसमें केवल हवाई मुट्ठियाँ बाँधने का तेवर ही नहीं दिखाई देता है; अपितु सम्पूर्ण शोषण व्यवस्था को ही बदलने की जुझारू व तीखा तेवर और गहरी करूणा है। वे खुशीराम ही नहीं, सम्पूर्ण शोषित जनता का "इतना दु:ख" नहीं देख सकते हैं जैसा कि–

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 38

"दिनरात सांस लेता है ट्रांजिस्टर लिये हुए
खुशनसीब खुशीराम
फुरसत में अन्याय सहते में मस्त
स्मृतियाँ खँखोलता हकलाता बतलाता सबेरे
अखबार में उसके लिए खास करके एक पृष्ठ पर दुम
हिलाता सम्पादक एक पर गुर गुराता है
एक दिन आखिरकार दुपहर में छूरे से मारा गया खुशीराम
वह अशुभ दिन था, कोई राजनीति का मसला
देश में उस वक्त पेश नहीं था। खुशीराम बन नही
सका कत्ल का मसला, बदचलनी का बना उसने
जैसा किया वैसा भरा
इतना दु:ख मैं देख नहीं सकता---"[1]

रघुवीर का यह अपना विचार है कि सच्चे यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए काव्य की ही सुकोमल गोद पर्याप्त नहीं है। यह निश्चित है कि विश्लेषण को पल्लवित करने में पद्य के बजाय गद्य का चरित्र ज्यादा अनुकूल और सार्थक सिद्ध होता है। रघुवीर सहाय ने तर्क मिश्रित या विश्लेषण परक पद्वति को अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए स्वीकार फिया, परिणामस्वरूप उनके काव्य संसार के लिए भाषा का गद्यीय ढाँचा एव अपरिहार्य जरूरत बन गया है उनकी कविता में गद्य का प्रवेश एक गेर जरूरी घुसपेठ नहीं, बल्कि जीवन और जगत के खुरदुरे यथार्थ को कविता व्यक्त करने की आवश्यकता का सच्चा प्रतिफल है।

उनकी सघन गद्योन्मुखता के कारण ही उनकी कविताओं को बहुत तेजी से नहीं पढ़ा जा सकता है, अपितु थोड़ रूकते हुए चलना पड़ता है जैसा कि-

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 72-73

"दु:ख में, दु:ख में भी अन्तर है जो सहने वालों में है
एक खुले घावों में है दु:ख, एक पके छालों में है
उस दु:ख से क्या लेना-देना, जो मरने वालो में है
हम उस दु:ख के अन्वेषक हैं जो जीने वालों में है"---[1]

रघुवीर सहाय ने जहाँ कविता में गद्य सरीखे वाक्यांशों के लिये जगह बनायी, वहीं पर उन्होंने काव्य में भी गद्यात्मक लय के द्वारा नग्न यथार्थ की भयावहता और संश्लिष्ट मानव रोगों को उत्कटता से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय की भाषा में सघन गद्यात्मकता का प्रभाव होने के कारण उसमें तुकात्मकता की कमी है। लेकिन ऐसा नहीं है कि उनकी काव्य भाषा विषयवस्तु से हटकर हो। उनकी भाषा के व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि वे भाषा के प्रवाह को कई तरह से बार-बार रोकने का प्रयास करते हैं-

"कोई और कोई और कोई और और अब भाषा नहीं,
शब्द अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाये वहाँ-वहाँ होता हुआ
चीजों के आर-पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे
मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड़-घुमड़कर भाषा का भास देता हुआ
मुझको उठाकर निःशब्द दे देता हुआ"---[2]

निश्चय ही रघुवीर सहाय अपनी काव्य भाषा में अति परिचित उपकरणों को त्यागकर उस सिरे से अपनी कविता शुरू करते हैं, जहाँ अक्सर चिन्तन,

---

1 सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 114

2. आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 40-41

आलोचना भाष्य और दर्शन शुरू हो जाया करता है। उनकी भाषा केवल एक प्रकार से गद्य चम्पू या गद्य काव्य न होकर अच्छा-खासा खुरदरा गद्य है। जिसमें कि लय के साथ साथ-साथ गत्यात्मकता भी है और प्रायः देखने में ऐसा लगता है कि एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अन्दर घुसा हुआ, तीसरे वाक्य को आगे धक्का देता सा मालूम पड़ता है। अपनी भाषा में गद्यात्मकता और अखबारी पुट लाकर रघुवीर सहाय यथार्थ की सच्ची तह खोलने में समर्थ होते हैं। रघुवीर सहाय अपनी कविता में दिन-प्रतिदिन जीवन की भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमें कि तुकात्मकता की कमी होने पर भी विचारों का विश्लेषण प्राप्त होता है।

(ग) **वाक्य का महत्त्व :**

रघुवीर सहाय सचमुच वाक्य के कवि है, शब्द के नहीं। वे सदैव वाक्य को महत्त्व देते हैं। रघुवीर सहाय में अर्थ और शैली का युग्म मिलकर नाटकीयता को रचता है। वह एक सीधा वाक्य नहीं है। कविता में यदि वाक्य की चर्चा होती है तो तुरन्त त्रिलोचन की याद आ जाती है। निःसंदेह वे एक पूरे वाक्य के कवि हैं (सम्भवतः सबसे समर्थ) लेकिन उनके वाक्य का गठन बेहद कसा हुआ है। रघुवीर सहाय का वाक्य बाँकपन लिये है। प्रवाह में पढ़ने पर वह सायास असुविधा पैदा करता है।

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा के वाक्य में बुनावट भावों को अधिक जटिल बनाती है। रघुवीर सहाय के वाक्य में निष्कर्ष से अधिक संशय है, आलोचना से ज्यादा विश्लेषण पर जोर है-

"हो सकता है कि कोई मेरी कविता आखिरी कविता हो जाये
मैं मुक्त हो जाऊँ
ढोंग के ढोल जो झुंड बजाते हैं उस हाहाकार में
यह मेरा अट्टहास ज्यादा देर तक गूँजे खो जाने के पहले
मेरे सो जाने के पहले
उलझन समाज की वेसी ही बनी रहे"[1]

(घ) **नाटकीयता एवं झटका देने की कला :**

रघुवीर सहाय ने जहाँ अपनी काव्य भाषा में सघन गद्यात्मक वाक्यों का प्रयोग किया है, वहीं पर इन सघन गद्यात्मक वाक्यों में रघुवीर सहाय की ट्विस्ट देने की कला भी दिखाई देती है।

रघुवीर सहाय की भाषां में अति सरलता के साथ ही साथ कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शाक करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। उनकी यह ट्विस्ट देने की कला उनकी भंगिमा में न केवल बक्रता लाती है बल्कि नाटकीयता भी उत्पन्न करती है।

रघुवीर सहाय ऐसे कवि रहे हैं जो अपने समय के मूल्यों की असलियत प्रकट करने का सदैव प्रयास करते रहे। मरती हुई मानवीय संवेदना की पूरी पड़ताल रघुवीर सहाय की कविता में प्राप्त होता है। नये मानव सम्बन्धों की तलाश, मनुष्य की लुप्त होती हुई रागात्मक वृत्ति और मानवीय मूल्यों के ह्रास तथा समाज में अराजकता की बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा में और ट्विस्ट देकर अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है–

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध, रघुवीर सहाय, पृ0सं0 16

रघुवीर सहाय सच्चे यथार्थवादी कवि रहे हैं। उनकी काव्य भाषा में जटिल बुनावट के अतिरिक्त कुछ जटिल भावों का ऐसा समावेश है जिससे कि यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति हेतु उनकी भाषा एक नाटकीय मुद्रा का भी रूप ले लेती है। यद्यपि नागार्जुन को नाटकीयता का अद्वितीय कवि माना जाता रहा है, लेकिन नागार्जुन का मिजाज स्पष्ट रूप से आलोचकीय है। वर्ग व्यवस्था के विरूद्ध उनके काव्य में प्रतिहिंसा स्थायी भाव है। विश्लेषण से प्राप्त सूत्र वहाँ निष्कर्षात्मक ढंग से आते हैं। लेकिन रघुवीर सहाय ने विश्लेषण पर अधिक जोर दिया है। उन्होंने अपनी भाषा में समय के भय को दिखाने का प्रयास किया है। वे आतंक को इस प्रकार प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं कि वह एक प्रकार की वक्रोक्ति जैसा साबित होता है, जिसमें कि नाटकीयता सफलतापूर्वक व्याप्त है---

"वे भागे जाते हैं जैसे बमबारी के
बाद भागे जाते हों नगर निगम की
सड़ाँध लिये दिये दूसरे शहर को
अलग अलग वंश के वीर्य के सूखे
अण्डकोष बाँध
भोंपू ने कहा
पाँच बजकर ग्यारह मिनट सत्रह डाउन नौ
नम्बर लेटफारम
सिर उठा देखा विज्ञापन में फिल्म के लड़की
मोटाती हुई चढ़ी प्राणनाथ के सिर उसे
कहीं नहींजाना है।"---[1]

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 29

जनता या आम लोगों के बारे में रघुवीर सहाय ने अधिकतर अपने निषेधात्मक वाक्यों के द्वारा नाटकीयता लाने का प्रयास किया है। लेकिन उनका यह नाट्य कोई निषेध का नाट्य नहीं है; बल्कि वह तो एक आत्मीय नाट्य है, जिसमें कवि बार–बार एक खीझे हुए, चिढ़े हुए आक्रोशी आदमी की भूमिका में दिखाई देता है। काफी सीमा तक ऐसा इसलिए भी दिखाई देता है कि और लोग उनकी तरह इस सन्दर्भ में संघर्षशील नहीं है।

अपनी भाषा में नाटकीयता का तेवर देकर रघुवीर सहाय ने अपनी आत्मीयता को अक्सर एक आलोचनीय रूप में प्रस्तुत करते हैं– तथा सम्पूर्ण काव्य संसार में परिवेश की सघनता को नाटकीय मुद्रा में व्यक्त करने की कोशिश करते हैं–

"संस्कृति मंत्री से कहा राजा ने देखो–देखो मंत्री जी
हर एक विद्या के भीतर कितने प्राचीन कलारूप–
क्या तुम्हें यह उपयोगी नहीं दिखाई देता?
क्यों नहीं तुम सैकड़ों कलाकार इसी काम पर लगा देते
कि वे उनमें से पुराने रूप लेकर नयी रचनाएँ करें ?
क्या तुम नहीं समझ पाते कि यह उनको
एक अनिश्चित आगामी कल रचने से रोके रखने का
सरलतम ढंग है"?[1]

रघुवीर सहाय की गद्यात्मक काव्य भाषा के वाक्य एक दूसरे को कुछ झटका देते हुए दिखाई देते हैं और ऐसा लगता है कि वे एक दूसरे से बिल्कुल जुड़े हुए हैं। उनकी भाषा में गद्यात्मकता एवं बोलचाल का लचीलापन तथा एकाएक पाठक को शाक करने की शक्ति विद्यमान है–

---

1. हँसो–हँसो–जल्दी हँसो, रघुवीर सहाय, पृ0सं0 75

"सब व्यवस्थाएं अपने को और अधिक संकट के लिए
तैयार करती रहती हैं
और लोगों को बताती रहती हैं
कि यह व्यवस्था बिगड़ रही है
तब जो लोग सचमुच जानते हैं कि यह व्यवस्था बिगड़ रही है
वे उन लोगों के शोर में छिप जाते हैं
जो इस व्यवस्था को और अधिक बिगाड़ते रहना चाहते हैं
क्योंकि
उसी में उनका हित है
लोकतंत्र का विकास राज्यहीन समाज की ओर होता है
इसलिए लोकतंत्र को लोकतंत्र में शासक बिगाड़कर
राजतंत्र बनाते हैं"---[1]

अपनी साधारण बोलचाल एवं गद्योन्मुख काव्य भाषा में रघुवीर सहाय ने सहज करूणा और जिन्दगी की शिरकत को पहचानने का सफल प्रयास किया है। अपने समय की परिस्थितियों से अवगत कराती हुई उनकी काव्य भाषा पाठक को झकझोरती हुई दिखाई देती है-

"युग बदलता है उमर ढलती है
औरतें मर्दो को जगत के अनुसार
जीवन बदलने का परामर्श देती है
पुरूष भी थक चुके होते हैं; एक चोट खाते ही ध्वस्त होने के पर्व
सोचने लगते हैं क्या पतन ही जीवन जीने की कीमत है
क्या मेरा झूठा अहंकार खुशी भरे जीवन से वंचित
मुझे करता है
और अब अहंकार से
पैदा कर रहा हूँ मैं क्या"?[2]

---

1. एक समय था- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 20
2. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 26

(ड.) <u>व्यंग्यात्मक तेवर</u> :

<u>व्यंग्यात्मकता</u>– मनुष्य की एक विकसित प्रवृत्ति है। हास्य का शुभारम्भ जहाँ बाल्यावस्था में ही होने लगा है, वहीं पर व्यंग्य मनुष्य की अवस्था के विकास के साथ विकसित होता है।

<u>हरिशंकर परसाई</u> ने व्यंग्य के उद्‌दश्य एवं उसके निर्णयात्मक पक्ष पर अधिक जोर देते हुए यह प्रतिपादित किया है कि–

"व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है। यह नारा नही है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है, जितनी गम्भीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है"----[1]

इसके अतिरिक्त हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि–

"व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो, फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"----[2]

इस प्रकार व्यंग्य से हमारा अभिप्राय यह है कि वह अपने साहित्यिक रूप में एक गम्भीर उद्‌देश्यपूर्ण अभिव्यक्ति है, जिसमें किसी असंगति, विकृति या अर्न्तविरोध की बिडम्बनामय या उपहासास्पद स्थिति पर हर तरह से एक प्रहार सिद्व होता है, और इसमें वक्र भाषा, चमत्कार पूर्ण शैली तथा विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है।

---

1. सदाचार का ताबीज–हरिशंकर परसाई, पृ0सं0 10
2. कबीर –डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0सं0 143

व्यंग्य तो नयी कविता की एक ऐसी प्रवृत्ति रही है, जो क्रमशः विकसित होती रही है। नये कवियों की विचार धाराएं व्यंग्यात्मकता के अनुकूल रही हैं। यद्यपि साहित्य के हर युग के, प्रत्येक काल-खण्ड की काव्य-कृतियों में कम या अधिक व्यंग्य पाया जाता रहा है। लेकिन नयी कविता और साठोत्तरी कविता के दौरान व्यंगात्मक तेवर सर्वाधिक होता गया है। इस सन्दर्भ में डा0 जगदीश गुप्त ने लिखा है- "नयी कविता आकर्षण को ही नहीं, विकर्षण को भी टटोलती है। व्यंग्य करना, चोट करना, झकझोर देना, ध्यान में डूबे हुए को जैसे टोक देना और कुछ सोचने पर मजबूर कर देना उसका स्वभाव है। वह रिझाती कम है, सताती अधिक है"----[1]

नयी कविता और साठोत्तरी कविता से जुड़े होने के कारण रघुवीर सहाय की कविताओं में व्यंग्यात्मक तेवर सर्वाधिक है। उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि सभी बातों को लेकर अपनी व्यंग्यात्मक तेवर की पुष्टि की है। निश्चय ही कविता को भाषा की सहजता के साथ समसामयिक को सूक्ष्म स्तरों पर उद्घाटित कर देना रघुवीर सहाय की अपनी निजी विशेषता है। अपनी कविताओं और गद्य रचनाओं में जिन क्षेत्रों को चुना है, उसमें व्याप्त पाखण्ड, ढोंग और व्यर्थ के दिखावे पर व्यंग्य और छींटाकशी की तीखी धार प्रकट की है। रघुवीर सहाय औरों को चुपचाप सुनने वाले और उनकी आदतों पर नजर रखने वाले उत्तम पर्यवेक्षक थे। यही कारण है कि उनका व्यंग्य निरर्थक न होकर सार्थक ही सिद्ध होता है।

रघुवीर सहाय ने अपनी रचनाओं में सत्तापक्ष के शोषक रूप, अमानवीय स्थितियों, नेताओं की ढोंगी गतिविधियों इन सभी को अपने व्यंग्यात्मक तेवर में कसने

---

1. आलोचना-अंक (3), अप्रैल 1953 लेख "नयी कविता में रस और बौद्धिकता- डा0 जगदीश गुप्त पृ0सं0 57

का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय के राजनीतिक व्यंग्य बाद की कविताओं में मानवीय सन्दर्भो से बिल्कुल जुड़ते गये हैं। यह निश्चित है कि रघुवीर सहाय उस भारतीयता के समर्थक थे जो बिल्कुल अपनी थी, वह फासिज्म का मार्ग प्रशस्त करती हुई ढोंगी विचार शैली के खिलाफ खड़ी हुई भारतीयता थी, जिसे मानवीय संघर्ष के जरिये अर्जित करना पड़ता है। सहाय ऐसी भारतीयता के पोषक थे जो तोहफे में नहीं मिली थी, वह एक सच्चे लोकतांत्रिक और समतामूलक वर्तमान के संघर्ष से पैदा होने वाली भारतीयता थी, जिसके प्रति तुच्छ प्रदर्शन करने वालों के प्रति सहाय ने अपना करारा व्यंग्य कसा है– अपने आत्म हत्या के विरूद्व" संग्रह में सहाय ने राजनीतिक चेतना और उससे उत्पन्न व्यंग्य को बड़े फौलादी स्वरों में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। नेताओं द्वारा जनता का शोषण एवं अपनी झोली भरने तथा सम्पूर्ण व्यवस्था को विकृत बना देने की बात को लेकर सहाय ने करारा व्यंग्य कसा है–

"हँसती है सभा
तोंद मटका
ठठाकर
अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर
फिर मेरी मृत्यु से डरकर चिचिंयाकर
कहती है
अशिव है, अशोभन है मिथ्या है"——[1]

इस उद्धरण में "अकेले अपराजित सदस्य की व्यथा पर" सभा का तोंद मटका, ठठाकर हँसना सत्तापक्ष की अमानवीयता पर सटीक एवं तीखा व्यंग्य है। इसके अतिरिक्त "आत्महत्या के विरूद्व" की कविता में ही सहाय ने मंत्री को मटकते हुए मंच पर चढ़ता देख उसे जनता की छाती पर चढ़ने के रूप में व्यक्त कर उसका सही पर्दाफाश करने का प्रयास किया है–

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 18

"नगर निगम ने त्योहार जो मनाया तो जनसभा की
मन्थर मटकता मंत्री मुसद्दी लाल महन्त मंच पर चढ़ा
छाती पर जनता की
बसन्ती रंग जानते थे न पंसारी न मुसद्दी लाल
दोनों ने राय दी
कन्धे से कन्धा भिड़ा ले चलो
पालकी"---[1]

"आत्म हत्या के विरूद्ध" संग्रह की कविताओं में कवि ने भ्रष्ट लोकतंत्र, नेताओं के शोषण से आम जनता की दयनीयता एवं शासकों तथा नेताओं की स्वार्थ लोलुपता पर कटु व्यंग्य किया है, साथ ही राजनीतिक अव्यवस्था के जिम्मेदार लोगों के कांइयाँपन को बड़े तीखे स्वर में उभारा है-

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेंजे बजाते हैं
सभासद भद-भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं
जा सकता

दूध पिये मुँह पोंछे आ बैठे जीवनदानी गोंद
दानी सदस्य तोंद सम्मुख धर
बोले कविता में देश प्रेम लाना हरियाना प्रेम लाना
आइसक्रीम लाना है
भोला चेहरा बोला
आत्मा ने नकली जबड़े वाला मुँह खोला"---[2]

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 85
2. आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 28

अपने काव्य संग्रह "हँसो–हँसों जल्दी हँसो" में भी रघुवीर सहाय ने राजनीति की असलियत को प्रकट करने का प्रयास किया है। सहाय ने सत्ता पक्ष की नकली सहानुभूति की पोल, उसकी खायी, अघायी और बात–बात पर खिल पड़ने वाली हँसी के ऊपर विशेष बल देकर असलियत खोलने का प्रयास किया है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे
सबके सब हैं भ्रष्टाचारी
कहकर आप हँसे
चारों ओर बड़ी लाचारी
कहकर आप हँसे
कितने आप सुरक्षित होंगे
मैं सोचने लगा
सहसा मुझे अकेला पाकर
फिर से आप हँसे"––––[1]

इस कविता में प्रयुक्त व्यंग्य समग्र प्रभाव में करूणा एवं मार्मिकता का स्पर्श कराता है। अपनी बाराबंकी कविता में रघुवीर सहाय ने अपनी व्यंग्यात्मकता इस प्रकार प्रकट की है–

"मैंने कहा: जिन्दाबाद
दल के दल लोग बोले–जिन्दाबाद
बोले: कार्यक्रम क्या है?
मैंने कहा: डर और हिम्मत

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो–रघुवीर सहाय, पृ0सं0 16

बोले : नीति क्या है ?
मैंने कहा खोज
बोले नीति किसकी है ?
मैंने कहा क्या ?
बोलेः नहीं किस विचारक की
मैंने कहा : क्या ?
बोलेः यदि तुम्हें नहीं पता कि तुम विश्व के
राष्ट्रों में किसके समर्थक हो
तो तुम पर बांरकी की जनता विश्वास ही क्यों करे"---[1]

लोग भूल गये हैं" संग्रह की कविताओं में भी रघुवीर सहाय ने अपना राजनीतिक व्यंग्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

"हिन्दी के नेता बोले बड़ी देर तक हिन्दी
जनता ने पूछा अंग्रेजी बोल सकते हैं
उनमें से सबसे बड़ी चुटियावाला आया
अंग्रेजी बोल गया बाकी हिन्दी वाले रह गये"---[2]

रघुवीर सहाय अपने काव्य संग्रह "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" की "सच क्या है"? शीर्षक कविता में सत्ता पक्ष की क्रूरता को उभारते हुए शोषण तंत्र द्वारा क्रूर सच्चाइयों पर पर्दा डालने की प्रक्रिया को हल्की सी व्यंग्यातमकता के साथ उभारा है-

---

1 हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 38

2 लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 17

"सच क्या है ?
बीते समय का सच क्या है?
क्रूरता, जो कुचलकर उस दिन की गयी
वही सच है उसे याद रख, लिख अरे लेखक
दस बरस बाद बचे लोग समझते होंगे
युग नया आ गया
तब हुकुम होगा कि दस बरस पहले का वह दमन
वास्तविक यथार्थ में क्यों हुआ था, समझ।
क्यों गला बच्चे का घोंटा गया था,
यह उसकी घुटन से अधिक अर्थवान है,
वह बता"---[1]

रघुवीर सहाय सामाजिक परिवेश को लेकर अपनी कविताओं में समाज में वैषम्य की खाई उत्पन्न करने वाले एवं तरह-तरह से जनता का शोषण करने वाले पूँजीपतियों के ऊपर अपना करारा व्यंग्य कसा है- अपनी सामाजिक व्यंग की शैली में सहाय ने तीखे एवं घृणा मूलक शब्दों तथा ग्राम्य जीवन के सहज उपहासमूलक शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यंग्य का तीखापन तथा विनोद का चुलबुलापन दोनों ही प्रकट किया है-

"सभी लुजलुजे हैं
मोल तोल करते हैं, हिचकिचाते हैं, मुकर जाते हैं
ऐंठते हैं बिछ जाते हैं
तपाक से मिलते हैं; कतरा जाते हैं
बीड़ा उठाते हैं, बरा जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, गिज-गिज है, गिल गिल है"---[2]

---

1. कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ-रघुवीर सहाय, पृ0सं0 21
2 सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 140-41

समाज में व्याप्त वैषम्य एवं पूँजीपतियों द्वारा उत्पन्न शोषण की स्थिति पर जहाँ रघुवीर सहाय एक तरफ अपना व्यंग्य कसते हैं, वहीं पर दूसरी तरफ ये शोषित वर्गों की पीड़ा से पूर्णतया द्रवित भी हो जाते हैं। जैसा कि–

जोड़कर हाथ काढ़कर खीस
खड़ा है बूढ़ा राम गुलाम
सामने आकर के हो गये
प्रतिष्ठित पंडित राजाराम
मारते वही जिलाते वही
वही दुर्भिक्ष वही अनुदान
विधायक वही, वही जनसभा
सचिव वह, वही पुलिस कप्तान।
दया से देख रहे हैं दृश्य
गुसलखाने की खिड़की खोल
मुक्ति के दिन भी ऐसी भूल।
रह गया कुछ कम ईसबगोल।"----[1]

इस उद्धरण में कवि ने एक ओर निम्न वर्ग के प्रतिनिधि रामगुलाम की गरीबी तथा भूख को और दूसरी ओर अभिजात्य वर्ग के शोषक राजाराम की अपच की स्थिति को पहुँची हुई सम्पन्नता को आमने सामने रखकर सामाजिक अन्याय तथा व्याप्त वैषम्य की विडम्बना की बड़ी तीखी अभिव्यक्ति की है।

हँसो–हँसो जल्दी हँसो, लोग भूल गये हैं और कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" संग्रह की कविताओं में भी सामाजिक अव्यवस्था को लेकर सहाय ने तीखा व्यंग्य किया है– "लोग भूल गये हैं" की "फायदा" कविता में कवि ने केवल अपने स्वार्थ–चिन्तन में रत लोगों की मानसिकता पर व्यंग्य किया है–

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 63

"उन्हें मतलब नहीं कि वक्त ने समाज के साथ
क्या किया हे
वे जानना चाहते हैं कि वक्त ने जो हालत की है समाज की
उनमें वे सबसे ज्यादा क्या पा सकते हैं"---[1]

"कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" में रघुवीर सहाय का व्यंग्य आधुनिक सभ्यता तथा मनुष्य की विकृति और दिखावटी शालीनता के प्रति बहुत सहज एवं तटस्थ विश्लेषण के साथ हुआ है। "हत्या की संस्कृति" कविता में कवि ने आधुनिक सांस्कृतिक मूल्यों को नाटकीय शैली में नग्न करते हुए उसकी कुरूपता पर प्रहार किया है–

"अंग्रेजी पढ़ा लिखा हत्यारा कहता है
"मुझे कहीं छिपना है, पुलिस पीछे पड़ी है"
आधुनिक प्रेमिका कहती है "खून अरे लाओ, पट्टी कर दूँ"
औरत से कहता है, अभिजात अपराधी "धन्यवाद"---[2]

ओरतों के साथ होने वाले अत्याचार एवं उनकी वैषम्यपूर्ण स्थिति को ध्यान में रखकर, सहाय ने उस अव्यवस्था के पोषक लोगों के प्रति अपना तीखा और चुटीला व्यंग्य प्रकट किया है–

"औरतों के चेहरे समाज के दर्पण हैं
पुरूषों जैसे
किन्तु जो दर्द दिखलाते हैं उनमें मिठास है
पुरूष गिड़गिड़ाते हैं औरतें सिर्फ चुपचाप थाम लेती हैं बेवसी

---

1 लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 64

2 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 17

कोई शरीर नहीं जिसके भीतर उसका दु:ख न हो
तुम जब उसमें प्रवेश करते हो और वह नहीं मिलता
वही है बलात्कार
बाकी है प्रेम और दोनों के बीच की कोई स्थिति
नही है"---[1]

रघुवीर सहाय व्यर्थ का दिखावा करने वाले साहित्यकारों एवं बुद्धिजीवियों पर भी अपना तीखा और धारदार व्यंग्य किया है। व्यर्थ में अंग्रेजी के मोह में पड़ने वाले एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी को गौण बनाने वाले साहित्यकारों पर जमकर छींटाकसी रघुवीर सहाय की कविताओं में उपलब्ध है–

घर में सब कुछ है जो औरतों को चाहिए
सीलन भी और अन्दर की कोठरी में पाँच सेर सोना भी
और सन्तान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मासिक पत्रिकाओं पर हगाया करती है
और जमीन भी जिस पर हिन्दी भवन बनेगा"---[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में रघुवीर सहाय के व्यंग्यात्मक तेवर ने एक सम्पूर्ण व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत कर दिया है। बुद्धिजीवियों एवं साहित्यकारों के प्रति रघुवीर सहाय द्वारा किया गया व्यंग्य प्रभाव में अत्यन्त तिलमिलाने वाला होते हुए भी अभिव्यक्ति में संयत और क्रमशः शालीन होता/गया है। सहाय की भाषा व्यंग्य के लिए अत्यन्त सहज रूप में उपयुक्त एवं सटीक शब्दों से सम्पन्न है।

---

1. लोग भूल गये हैं – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 63
2. आत्म हत्या के विरूद्व– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 71

"वहाँ प्रकट होती हे प्रायोजित स्मृति–सभा
लेखक, समाजविद् और नयी जाति के विचारक आमन्त्रित हैं
तंत्र के सलाहकार
कोई प्रसताव नहीं सिर्फ सर्व सम्मति है।
अन्त में प्रीतिभोज
एक बड़े कमरे में गलमुच्छें, चिन्तन की मुद्रा में
प्रौढ़ पुरूष, मोहक गत यौवना औरतें,
संकट से सभ्य खान सामों को धन्यवाद देती हैं"---[1]

रघुवीर सहाय व्यर्थ के ढोंग रचने वाले पाखण्डी एवं भ्रष्टाचार तथा वैषम्य को बढ़ावा देने वाले लोगों को भी अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है। बड़े तीखे स्वर में ऐसे लोगों पर सहाय ने चोट की है और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले लोगों का पर्दाफाश किया है। उनके धार्मिक व्यंग्य साम्प्रदायिक एवं विषमता की स्थितियों को लेकर उत्पन्न हुए हैं जैसा कि–

"सादी दीवार में
लकड़ी का द्वार
सिर झुकाये बन्द
लिख दिया उस पर पुरोहित ने सुलेख
कृपा करके यहाँ विज्ञापन न चिपकायें
यह हमारा प्रार्थना घर है"---[2]

धार्मिक बकवासों में पड़ने वाले और धर्म की आड़ में देश के पतन की तरफ ले जाने वाले लोगों को रघुवीर सहाय ने अपने करारे व्यंग्य का शिकार बनाया है।

---

1 कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 81

2 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 54

रघुवीर सहाय की कविताओं में व्याप्त व्यंग्यात्मक तेवर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी परिवेशों के यथार्थ से अवगत कराते हुए, असलियत का पर्दाफाश करते हैं।

(च) **बिम्ब और प्रतीक :**

रघुवीर सहाय अभिधा के कवि थे। उनका यह मानना था कि काव्य में "बहुत कला" होने का अर्थ है यथार्थ को छुपाने की चातुरी। सहाय युगीन यथार्थ के प्रति सम्पूर्णतः प्रतिबद्ध कवि थे। वे अपनी बात को सीधी भाषा में जनता को सीधे सम्प्रेषित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में कलात्मक कथन समाज को नहीं बदल सकता है–

"कला और क्या है सिवाय इस देह– मन आत्मा के
बाकी समाज है
जिसको हम जानकर समझकर
बताते हैं औरों को, वे हमें बताते हैं"---[1]

रघुवीर सहाय बिम्बों और प्रतीकों से इसलिए बचते रहे कि उन्हें भय था कि उनके शब्दों का दूसरा अर्थ लगाकर उनकी कविता की धार को कम कर दिया जायेगा–

"शब्द, अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाये वहाँ–वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुँचे
चीजों के आर–पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 12

मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
घुमड़–घुमड़कर भाषा का भास देता हुआ,
मुझको उठाकर निःशब्द दे देता हुआ---[1]

नयी कविता के अधिकांश कवियों की तरह बिम्ब रचना एवं प्रतीक योजना रघुवीर सहाय की काव्य रचना की विशिष्टता नहीं है। चूँकि रघुवीर सहाय सपाटबयानी के कवि रहे हैं; इसलिए वे बिम्बवादी नहीं है। यही कारण है कि रघुवीर सहाय "नयी कविता" के दौर में रूढ़ियों के शिकार नहीं होते हैं। सहाय जी नयी कविता की बिम्ब बहुलता की निरर्थकता को भलीभाँति समझते थे। उनका मानना था कि बिम्बों के कारण कविता में वास्तविक यथार्थ की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है।

यह निश्चित है कि बिम्ब रचना रघुवीर सहाय की काव्य भाषा का कोई मौलिक उद्देश्य नहीं रहा है। बिम्ब के प्रति उनकी अरूचि ही दिखाई पड़ती है; लेकिन यह भी निश्चित है कि रघुवीर सहाय के काव्य सृजन में बिम्ब अनायास ही प्रवेश करते गये हैं।

रघुवीर सहाय यह स्वीकार करते हैं कि कविता में बिम्ब अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं हैं। वह कविता में जीवनानुभव को रचनात्मकता और मूर्तिमत्ता में संप्रेषित करने का मात्र उपकरण ही है। अपनी बिल्कुल आरम्भिक दौर की कविताओं में रघुवीर सहाय ने जीवन्त गत्यात्मक बिम्बों की सृष्टि की है, जिसमें कि एक विशेष प्रकार की क्रीड़ावृत्ति भी है जैसा कि–

"दूर क्षितिज पर महुओं की दीवार खड़ी है
जिस पर चढ़कर सूरज का शैतान छोकरा
झाँक रहा है

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध–रघुवीर सहाय, पृ0सं040–41

चौड़े चिकने पत्तों की ललछौर
फुनगियों को सरकाकर
नीड़ों में फिर लौटी, मँडराती, पिड़कुलियाँ"---[1]

रघुवीर सहाय की इस कविता में प्रकृति के सम्पूर्ण बिम्ब मोजूद हैं, जिसमें गन्ध, गति, वर्ण, स्पर्श एवं ध्वनि बिम्बों की व्यक्त और अव्यक्त रूप में योजना है। "महुआ" अव्यक्त रूप में अपनी सुगन्धी को, "चिकन पत्तों" में स्पर्श बिम्ब, ललछौर फुनगियों में वर्ण बिम्ब, झाँक रहा है, "मँडराना" तथा "लौटना" में "गति" बिम्ब है। इसके अतिरिक्त "नीड़ों में फिर लौटी, मँडराती पिड़कुलियाँ" में ध्वनि बिम्ब अनभिव्यक्त होते हुए भी व्यक्त हो जाता है।

इस प्रकार न चाहते हुए भी रघुवीर सहाय की कविताओं में सभी बिम्ब सम्यक् रूप से मोजूद हैं। लेकिन ये सभी बिम्ब रघुवीर सहाय की प्रारम्भिक कविताओं में सर्वाधिक हैं, लेकिन क्रमशः जब रघुवीर सहाय की अनुभूति अधिक सघन और यथार्थ होती गयी है, तो उनकी कविता में बिम्ब भी क्रमशः कम होते गये हैं।

उनकी "दूसरे सप्तक" में छपी कविताओं एवं "सीढ़ियों पर धूप में" की कविताओं में जिस प्रकार बिम्बों की झलक प्राप्त होती है, वह परवर्ती संग्रहों "आत्म हत्या के विरूद्व", या, "हँसों-हँसों जल्दी हँसो" एवं लोग भूल गये हैं या "कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ" आदि में नहीं उपलब्ध हैं। इसका कारण यह है कि रघुवीर सहाय बिल्कुल यथार्थ से जुड़े रहने वाले कवि रहे हैं, और उनकी बाद की रचनाओं में उनकी यथार्थवादी प्रवृत्ति अधिक सबल होती गयी है, जिससे उन कविताओं में बिम्बों की कमी होती गयी है।

---

1. दूसरा सप्तक- सं0 अज्ञेय, पृ0सं0 159

रघुवीर सहाय यथार्थ के कवि हैं– केवल यथार्थ के। उनकी आरम्भिक कविताएं जीवन–यथार्थ से शुरू होती हैं, लेकिन एक सुन्दर बिम्ब तक पहुँच जाती हैं–

"अब शीतल जल की चिन्ता में
लगती बहुओं की भीड़ कूएं पर
मँजी गगरियों पर से किरणें घूम--घूम
छिपती जाती पनिहारिन के
साँवल हाथों की चूड़ियों में
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों सा दिन"----[1]

इस कविता में कवि ने कई चित्र एक साथ दिये हैं– "मँजी गगरियों", "किरणें छिपती–जाती, साँवले हाथों की चूड़ियों तक। इसमें गत्यात्मक बिम्ब है। किरणों की गगरियों से चूड़ियों तक की यात्रा को कवि नापता है; किरणों का सुनहलापन भी कवि बिम्बित करता है इसलिए वर्ण बिम्ब भी है।

रघुवीर सहाय की कल्पना निराला व अज्ञेय की तरह लघु से आरम्भ करके प्रकृति के विराट् तक सहज ही पहुँच जाती है। धीरे–धीरे ढलते हुए दिन को चित्रांकित कर देती है। सहाय इन पंक्तियों में वर्णन से शब्दार्थक तथा उससे आगे बिम्बों तक पहुँच जाते हैं।

"दूसरा सप्तक" और "सीढ़ियों पर धूप में" की बहुत सारी कविताओं में रघुवीर सहाय का झुकाव वर्णन से बिम्ब की ओर ही है।

---

1. दूसरा सप्तक– सं0 अज्ञेय, पृ0सं0 160

"ठेलों की खड़खड़ाहट दूध वालों के खनकते बर्तन
जल्दी चलते हुए चप्पल के हकलाने से
शब्द पास आते हैं, और दूर चले जाते हैं"---[1]

इन पंक्तियों में प्रातःकाल का बिम्ब ध्वनियों के सहारे प्रस्तुत है, यहाँ पर वर्णन एवं बिम्ब का अन्तर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार रघुवीर सहाय अपनी भाषा के रचाव में वर्णन एवं बिम्ब के भेद को क्रमशः मिटाया है। वे सभी कविताएं चाहे राजनीति के अनुभव क्षेत्र से सम्बद्ध हों या कि प्रेम के अनुभव क्षेत्र से, या वे प्रकृति के मानवीय चित्र हों; उनकी कविताओं में वर्णन एवं बिम्ब का अभेद कैसे संभव होता है- इसका सफल उदाहरण "आत्म हत्या के विरूद्ध" की निम्न पंक्तियों में मौजूद है-

"सिहांसन ऊँचा है सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुँह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले काने बहरे विविध प्रकार के
हल्की सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष"---[2]

"मुँह बाये, लूले, काने, बहरे, हल्की सी दुर्गन्ध में "गन्ध बिम्ब है-- इसी प्रकार -

"एक गरीबी, ऊबी, पीली रोशनी, बीवी
रोशनी, धुन्ध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य

---

1 दूसरा सप्तक- सं0 अज्ञेय, पृ0सं0 157

2 आत्म हत्या के विरूद्ध- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 18

डब्बा बन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त में टड़ंग"---[1]

इस प्रकार इन दोनों उदाहरणों में से पहले उदाहरण में किसी सामान्य सभाकक्ष का वर्णन भी है और किसी विशिष्ट सभाकक्ष का बिम्ब भी है। दूसरे उदाहरण में हम यह देखते हैं कि वर्णन बिम्ब में निम्न मध्यवर्गीय गृहस्थ जीवन का चित्र है, जो रघुवीर सहाय की कविताओं में गति बिम्ब ही सर्वाधिक हैं, और यथार्थ जीवन के बिम्ब भी स्वतः उपलब्ध हैं – जैसा कि–

पाँच दल आपस में समझौता किये हुए
बड़े–बड़े लटके हुए स्तन हिलाते हुए
जाँघ ठोंक एक बहुत दूर देश की विदेश नीति पर
हौंकते डौंकते मुँह नोच लेते हैं
अपने मतदाता का"---[2]

रघुवीर सहाय अपने आगे की रचनाओं में बिल्कुल यथार्थवादी बिम्बों का सहारा लिया है। जिससे उनकी कविताओं में जीवन की सहजता, मौलिकता एवं समाज का जीता–जागता चित्र प्रकट होता है– इसके अतिरिक्त इन यथार्थवादी बिम्बों के सहारे रघुवीर सहाय समाज के शोषक वर्ग पर एक तीव्र प्रहार भी करते हैं– जैसा कि–

सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं
सभासद भद–भद–भद कोई नहीं हो सकती
राष्ट्र की

---

1 आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 84

2. वही पृ0सं0 29–30

संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं
जा सकता।
दूध पिये मुँह पोंछे आ बैठे जीवनदानी गोंद
दानी सदस्य तोंद सम्मुख धर"---[1]

अपने बाद के काव्य संग्रहों में सहाय ने पूर्णतया यथार्थवादी बिम्बों के द्वारा ही यथार्थ की पथरीली सतह को खोलने का प्रयास किया है। उनके यथार्थवादी बिम्ब औरतों की दुर्दशा से सम्बद्ध बहुत सारी कविताओं में उपलब्ध हैं- जैसा कि-

"उसके पतले अधर, बड़ी-बड़ी आँखे,
पलकें महीन, दाँत भिचें हुए हैं
जो खुलें तो चेहरे का चरित्र कौंध जाय
उंगलियाँ रोज के काम काज से घिसी
हरी-हरी चूड़ियाँ
अब हकीम चेहरे को देखकर पाता है
यौवन के बाद के बरस जी उठे हैं रोगी के मुख पर
औरत अधेड़ हो गयी है, हकीम चुप-
अचरज से नहीं बल्कि आदर से"---[2]

बिम्ब की तरह ही प्रतीक भी काव्य भाषा के लिए आवश्यक हैं। प्रतीक भी मूलतः पश्चिम की देन है। साहित्य में प्रतीक अभिव्यंजना की एक सशक्त पद्धति माना गया है, प्रतीक के प्रयोग से साहित्य में कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक वक्तव्य वस्तु को सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता हैं-

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 28
2. कुछ पते कुद चिट्ठियाँ - रघुर्वार सहाय, पृ0सं0 40

रघुवीर सहाय ने आवश्यकतानुसार प्रतीकों का भी अपनी भाषा मे समावेश किया है। जीवन की स्वाभाविक स्थिति की तलाश करने के लिए रघुवीर सहाय ने प्रतीकों का सहारा लिया है। रघुवीर सहाय सदैव जीवन को स्वाभाविकता में पाना चाहते हैं–

"आज फिर शुरू हुआ जीवन
आज मैंने एक छोटी सी सरल कविता पढ़ी
आज मैंने सूरज को डूबते हुए देर तक देखा
जी भर आज मैंने शीतल जल से स्नान किया
आज एक छोटी सी बच्ची आयी किलक मेरे कन्धे चढ़ी
आज मैंने आदि से अन्त तक एक पूरा गान किया
आज फिर शुरू हुआ जीवन"---[1]

जीवन की जिस स्वाभाविक रचनात्मक स्थितियों की खोज के द्वारा कविता संभव की गयी है, उससे साधारण जीवन में "नया रस" तथा "नया महत्त्वबोध" उत्पन्न होता है।

दूसरा सप्तक की अधिकांश कविताओं में रघुवीर सहाय ने जीवन की स्वाभाविकता और साधारणता के बहुत सारे चित्र उभारे हैं। "सीढ़ियों पर धूप में" संग्रह की बौर, आओ नहाएं, जभी पानी बरसता है। रूमाल, तथा पानी, शीर्षक कविताएं अत्यन्त महत्तवपूर्ण हैं। बौर कविता के अन्तर्गत कवि एक विशेष प्रकार के सुख की प्राप्ति करता है–

"नीम में बौर आया
इसकी एक सहज गन्ध होती हे
मन को खोल देती है गन्ध वह
जब मति मन्द होती है
प्राणों ने एक ओर सुख का परिचय पाया"---[2]

---

1 सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 165

2. वही पृ0सं0 104

इन कविताओं की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि चाहे तो कोई"पानी, नीम, तथा रूमाल, को प्रतीक के रूप में भले ही ग्रहण करे, लेकिन कविता में इसका बिल्कुल आग्रह नहीं है, बल्कि प्रतीक हुए बगैर कविता नये सन्दर्भो में ज्यादा अर्थपूर्ण है। कदम-कदम पर प्रतीक अन्वेषक, पाठक या आलोचक का रघुवीर सहाय ने विरोध भी किया है।

यही कारण है कि रघुवीर सहाय स्वयं अपने पाठकों को सम्बोधित करते हुए एक कविता में यह बयान दिया है कि-

"प्रिय पाठक
ये मेरे बच्चे हैं
कोई प्रतीक नहीं
और इस कविता में
मैं हूँ मैं
कोई रूपक नहीं"---[1]

इतना ही नहीं, एक परस्पर बातचीत में जब मंगलेश डबराल ने "रचना वृक्ष" कविता में वृक्ष को कवि का प्रतीक माना, तो उसकी अस्वीकृति में रघुवीर सहाय ने तुरन्त ही कहा है कि- "आप वृक्ष समझें कवि को या जड़ समझें, मेरी बला से, --- अगर मैं किसी वस्तु को वस्तु रहने से वंचित करता हूँ तो मैं बहुत घटिया कवि हूँ"---[2]

रघुवीर सहाय ने जिस प्रकार बिम्बों को अपनी काव्य भाषा में प्रयुक्त करने का कोई प्रयास नहीं किया है, वे स्वतः आये हैं,उसी प्रकार प्रतीकों को काव्य

---

1. "आत्म हत्या के विरूद्व"- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 75
2. लिखने का कारण- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 167

भाषा में समावेशित करना उनका अपना कोई लक्ष्य नहीं रहा है– उनका कहना है कि– "प्रतीक कवि की अभिव्यक्ति क्षमता की दयनीयता प्रकट करता है"---[1]

एक प्रकार से "नयी कविता के कवियों ने सब तरह के प्रतीकों का इस्तेमाल किया है। काव्य, नाटकों तथा खण्ड काव्यों में पौराणिक और ऐतिहासिक प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ है। लेकिन रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में सम्प्रेषण के इस माध्यम का बहुत कम प्रयोग किया है, क्योंकि प्रतीक के माध्यम स्वाभाविक अनुभव या वस्तुएं अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कविता में निरावरण होकर ही प्रकट होती हैं। प्रतीकों को अपनी कविता में अभिव्यक्त करने की कोशिश रघुवीर सहाय ने नहीं की है, अपितु जीवन की स्वाभाविकता को प्रकट करते समय इन प्रतीकों को एक सहारा के रूप मे देखते हैं।

इस प्रकार बिम्ब हो या प्रतीक, रघुवीर सहाय इन्हें कोई उद्देश्य बनाकर अपनी कविताओं में प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया है, अपितु ये बिम्ब और प्रतीक जीवन की स्वाभाविकता को प्रकट करने के लिए स्वतः ही रघुवीर सहाय की कविताओं में आते गये हैं।

आरम्भिक कविताओं में प्रकृति से सम्बन्धित बिम्ब एवं प्रतीकों से उन्होंने जीवन की सहज अभिव्यक्ति प्रकट करने की कोशिश की है; लेकिन बाद में उनके काव्य संग्रहों की कविताओं में यथार्थ से जुड़े बिम्ब ही प्रकट होते गये हैं।

---

1. लिखने का कारण– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 168

अपनी आरम्भिक कविताओं में सहाय ने बिम्ब एवं प्रतीक को एक साथ प्रकट करते हुए, प्रकृति के अवयवों का सहारा लिया है, जिनमें कि जीवन की एक सहज प्रस्तुति प्राप्त होती है– जैसा कि–

"कौंध । दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर: घना ताल: ऊपर झुकी आम की डाल
बयार: खिड़की पर खड़े, आ गयी फुहार
रात: उजली रेती की पार; सहसा दिखी
शान्त नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।"[1]

रघुवीर सहाय की इस कविता "पानी के संस्मरण" में जीवन के संस्मरण व्याप्त हैं। अपनी सम्पूर्णता में स्मृति संवेद्य बिम्ब उकेरती हुई रघुवीर सहाय की यह कविता अपनी संरचना के भीतरी स्तरों पर स्थिर तथा गत्यात्मक दृश्य बिम्ब भी प्रस्तुत करती है।

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 101

)4(<u>भाषा की शाब्दिक संरचना: अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, तद्भव, देशज, तत्सम आदि</u>

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा की शाब्दिक संरचना और बनावट ऐसी है जो कि हर तरह से कसी हुई एवं यथार्थ की समुचित अभिव्यक्ति को प्रकट करती है। रघुवीर सहाय यद्यपि आवश्यकतानुसार ही अपने वाक्यों में श्ब्दों का प्रयोग किया है। लेकिन शब्दों के बावजूद भी रघुवीर सहाय एक मितभाषी कवि रहे हैं। रघुवीर सहाय की मितभाषिता अपने समकालीन केदारनाथ सिंह से बिल्कुल भिन्न है। यह निश्चित है कि मितव्ययिता और अपव्ययिता शब्द संख्या से तय नहीं होती है। रघुवीर सहाय की भाषा में पर्याप्त शब्द हैं, और उन्होंने अपनी भाषा मे लम्बे लम्बे वाक्यों को प्रयुक्त किया है। लेकिन यह निश्चित है कि मितव्ययिता और अपव्ययिता शब्द और अर्थ के अनुपात से निर्धारित होती है, और रघुवीर सहाय किसी भी स्थिति में अपनी भाषा में बोलचाल के शब्दों का अपव्यय नहीं करते। इसका एक सफल उदाहरण उनके द्वारा मामूली से लगते अव्ययों का प्रयोग है। हिन्दी के सबसे अधिक प्रचलित, तिरस्कृत उपेक्षित अव्यय "समुच्चय बोधक "<u>ओर</u>" का इतना रचनात्मक प्रयोग अन्य जगहों पर मिलना कठिन है, और शब्द की अर्थ छायाओं का विकास रघुवीर सहाय ने आगे चलकर भी किया है जिसे नयी कविता के कुछ कवियों ने अपने-अपने ढंग से दुहराया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि बोलचाल के सीधे से वर्णन में सहाय अपनी पूरी अनुभूति प्रकट कर देते हैं–

"खुशियों की एक दुनिया एक घड़ी की तरह जी रही है
बेबस जिन्दगी में – टिक–टिक है
हम सब पचास के हो गये एक दूसरे का मुँह ताकते खड़े हैं
हम बचे हुए हैं और इस पर हमें गर्व है कि
कोई डर नहीं है
जिससे डर था उससे दोस्ती कर ली है

लोग देखते हैं कितना सुरक्षित हैं
और सड़क पर एक हथियार बन्द के हाथों लुटते हुए
मुँह से आवाज नहीं निकलती
क्योंकि वह कह चुका है कि कोई सुनेगा नहीं"---[1]

एक साधारण सा अव्यय "बल्कि" भी सहाय की काव्य भाषा को सघन बनाने में सफल योगदान देता है। मामूली शब्द और मामूली अनुभव में एक नयी शक्ति सक्रिय कर देना यदि नयी कविता की पहचान बनी है, तो इसका बहुत कुछ श्रेय रघुवीर सहाय को ही है। जो शब्द रूप की दृष्टि से अव्यय कहे जाते हैं, उन्हें अर्थ की दृष्टि से अव्यय बना देना रघुवीर सहाय की गहरी रचना सामर्थ्य का ही द्योतक है-

"बन्धु हम दोनों थके हैं
और थकते ही रहें तो साथ चलते भी रहेंगे
वह नहीं है साथ जिसमें तुम थको तो हम तुम्हें लादे फिरें
और हम थकें तो दम तुम्हारा फूल जाय-हाय"---[2]

अव्यय का एक और रचनात्मक प्रयोग इस प्रकार है-

"कितने सही हैं ये गुलाब
कुछ कसे हुए और कुछ झरने-झरने को
और हल्की सी हवा में और भी जोखम से
निखर गया है उनका रूप जो झरने को है"---[3]

---

1. लोग भूल गये हैं- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 60
2. सीढ़ियों पर धूप में- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 151
3. वही पृ0सं0 168

रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा मे ही, भी, जो, जैसे अव्ययों का भी अधिक प्रयोग किया है जिससे भाषा शिथिल बन जाती है, लेकिन भाषा के अर्थ एवं बनावट पर कोई प्रभाव नही पड़ता।

रघुवीर सहाय की भाषा में अंग्रेजी के पर्याप्त शब्द मिलते हैं– जैसे– डिसमिस, इडियट, रिजर्व, माडर्न, सोसायटी, थैंक यू आदि अंग्रेजी के शब्द उनकी भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं।

लेकिन भारतीय संस्कृति एवं मानव के प्रति अपनी अटूट आस्था–रखने के कारण, रघुवीर सहाय ने संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। निस्संग, घोष, भ्रष्टाचार, विद्रोह, अन्याय आदि शब्दों का प्रयोग सर्वाधिक प्राप्त होते है– उनके संस्कृतनिष्ठ शब्दों की भाषा का प्रयोग इस कविता में विद्यमान है–

"तू हत विक्रम श्रमहीन दीन
निज तनके आलम से मलीन
माना यह कुण्ठा है युगीन
पर तेरा कोई धर्म नहीं"?----[1]

रघुवीर सहाय लखनऊ में पले और बढ़े थे। अतः उनके काव्य में उर्दू शब्दों के प्रयोग का विशेष आग्रह दिखाई देता है– हिन्दी को उर्दू के निकट लाने में उनकी रचनाएं बहुत सार्थक सिद्व हुईं। शमशेर बहादुर सिंह की उर्दू पाठावलि "दिनमान" में रघुवीर सहाय के आग्रह पर ही छपी थी। सहाय ने प्रसंगानुसार अपनी भाषा में

---

1. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0–135

अनेकानेक उर्दू के शब्दों का प्रयोग किया है। मुजरिम, तरक्की, मुफीद, मुल्क, मदरसा, नसीब, जहन्नुम, सलाम, ताज्जुब, फकत, तकाजा, फिलहाल, शोहदा, मर्द, तदबीर, नफरत, फरमाइशी, बख्शे आदि उर्दू के शब्द इनकी भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं– जैसा कि–

"एक मेरी मुश्किल है जनता
जिससे मुझे नफरत है सच्ची और निस्संग
जिस पर कि मेरा क्रोध बार–बार न्योछावर होता है"---[1]

इस कविता में "नफरत" जैसे उर्दू शब्द को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रघुवीर सहाय की गद्य रचनाओं में भी भाषा में प्रयुक्त उर्दू शब्द, भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं–

"ताज्जुब है कि अभी तक समाचारों पर नियंत्रण रखने वाले किसी सुरक्षा तन्त्र ने लेखकों को यह सलाह क्यों नहीं दी कि वे इस शब्द को बदल देने जैसी एहतियाती कार्रवाई तो कर सकते हैं; मगर उसकी मुश्किल यह है कि हत्या का वही अर्थ देने वाला कोई दूसरा शब्द भाषा में है ही नहीं।"---[2]

रघुवीर सहाय ठोस यथार्थ के कवि थे। यथार्थ को व्यक्त करने के लिए उन्होंने तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। विनसता, दरद, दुवारे, वरजा, कायथ, भरमे, देउता, अच्छत, थुलथुल, अचरज, पलेटफारम, अनगिनत, बाम्हन, आदि तद्भव शब्दों के द्वारा, उन्होंने जीवन के सच्चे यथार्थ को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है–

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 15
2. अर्थात– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 179

"मक्खन लो रोटी लो
चलो वहाँ हो आयें
संस्कृति की गुदगुदी, करूणा की झुरझुरी बहस की भुखमरी
ले आयें बहस--तहस--नहस दूब हल्दी अच्छत
देख आयें देवी--देउता का ठाँव पानी बिना सूना"----[1]

इन पंक्तियों में प्रयुक्त अच्छत और देउता जैसे तद्भव शब्द भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं। इसी प्रकार--

"हो सकता है कि लोग--लोग मार तमाम लोग
जिनसे मुझे नफरत है मिल जायें, अहंकारी
शासन को बदलने के बदले अपने को
बदलने लगें और मेरी कविता की नकलें
अकविता जायें। बनिया--बनिया रहे
बाम्हन--बाम्हन और कायथ--कायथ रहे"----[2]

इन पंक्तियों में भी बाम्हन और कायथ जैसे तद्भव शब्दों के द्वारा भाषा को एक शक्ति प्राप्त होती है।

अपनी भाषा के माध्यम से सच्चे यथार्थ को व्यक्त करने के उद्देश्य से ही रघुवीर सहाय ने देशज शब्दों का धड़ल्ले के साथ प्रयोग किया है।

अरझने, झरसौंही, मह, पपड़ियाई, फुँफदियायी, बजबजायी, छटंकी, रिरियाता, लिसलिसाता, घूर, सुथन्ना, पटिया, गदराती, गुदगुदी, झुरझुरी, छितरा, पिंपियाता, अंखुआ, ऊदबदा आदि देशज शब्द रघुवीर सहाय की भाषा को प्रभावशाली एवं सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति में सहायता प्रदान करते हैं--
जैसा कि--

हिलती हुई मुँडेरे हैं और चटखे हुए हैं पुल
बररे हुए दरवाजे हैं और धँसते हुए चबूतरे
दुनिया एक चुरमुराई हुई सी चीज हो गयी है
दुनिया एक पपड़ियाई हुई सी चीज हो गयी है"----[3]

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध-- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 23
2. वही पृ0सं0 16

इन पंक्तियों में चुरमुराई, धँसते और पपड़ियायी जैसे देशज शब्द भाषा को प्रभावशाली बनाते हुए सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार–

"राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत–भाग्य विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है
मखमल–टमटम बल्लम–तुरही
पगड़ी छत्र चवँर के साथ"---[1]

इन पंक्तियों में भी देशज शब्दों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

रघुवीर सहाय की भाषा में तत्सम शब्द भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं।

निष्कृति, प्रतिकार, विशृंखल, अंगीकार, प्रज्जवलित, महदाकांक्षा, स्वर्णोज्जवल, प्रतिवाद आदि अनेकानेक तत्सम शब्द भी सहाय की भाषा की संरचना को प्रौढ़ता प्रदान करते हैं–

"यह उद्वेलन तो आकस्मिक, सुख का आना है सुनियोजित
वेग मानवोचित होता है, धैर्य हुआ करता पुरूषोचित
मद–गज–गति से मैं जाऊँगा, लाख बुलाये प्रत्याकर्षण
इससे और सरलतर होगा इस स्वागत–सुख का अभिनन्दन"---[2]

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 20
2. सीढ़ियों पर धूप में– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 129

इन पांक्तियों में स्पष्ट रूप से तत्सम शब्द मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त–

"सफल था उनका जीवन सबका एक लक्ष्य था
सबकी एक सी गन्ध सबमें एक सा प्रतिवाद
भ्रष्टाचार से
एक सा आत्माभिमान सबमें न कम न ज्यादा
सब खुश और समझदारी से दमदमाते हुए सबके
मुँह पर एक–सा तेल"––––[1]

कविता की पंक्तियों में प्रयुक्त प्रतिवाद, एवं आत्माभिमान जैसे तत्सम शब्द भाषा को प्रभावशाी बनाते हैं।

इसके अतिरिक्त बंग्ला भाषा का भी ज्ञान होने के कारण रघुवीर सहाय की रचनाओं में यत्र–तत्र बंग्ला के शब्द भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त सहाय जी अवध प्रान्त के थे। उनकी काव्य–भाषा जहाँ बोलचाल के करीब है, वहीं पर उसमें कई बार अवधी के शब्द भी निःसंकोच आये हैं, जो कि किसी फैशन नहीं, अपितु जमीन से जुड़ने का सहज प्रतिफल है।

अपनी कविताओं में रघुवीर राहाय ने यथार्थ की परिपुष्टि करने के लिए मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनके मुहावरे काव्य एवं गद्य दोनों क्षेत्रों में सहज मानव जीवन और स्थितियों से जुड़े प्रतीत होते हैं। सहाय ने आवश्यकतानुसार हिन्दी और उर्दू दोनों मुहावरों का प्रयोग करते हैं। ठिठक खड़े थे, हम वह क्षण था, तीर की तरह निकल गया वह– सोलह सेर वाले दिन, हर एक तो कपड़ों के नीचे नंगा है, हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है, कन्धे उचकाना, पीठ ठोंकना, जैसे यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले एवं व्यंग्यात्मक मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग रघुवीर सहाय की रचनाओं में प्राप्त होता है। जेसा कि–

---

1. आत्महत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 57

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी है
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली
गहने गढ़ाते जाओ
सर पर चढ़ाते जाओ
बहुत मुटाती जाये
पसीने से गन्धाती जाये घर का माल मैके पहुँचाती जाये"---[1]

नि:संदेह यह माना जाता हे कि सामान्य बोलचाल की भाषा का विवेचन करते समय शिष्ट उच्चारण का सही मूल्यांकन हो और बोलते समय यह अनुमान लगाया जा सके कि वक्ता भाषा के किस प्रदेश से सम्बन्धित है। इसी प्रकार की कसोटी रघुवीर सहाय अपनी बोलचाल की भाषा के सम्बन्ध में स्वीकार करते हैं। बोलचाल की भी अनेक शैलियाँ होती हैं। पुराने नामों के साथ यदि हम विवेचन करते हैं तो पण्डिताऊ शैली, मुंशी शैली, बाजारू शैली आदि। लेकिन यदि हम यह मानते हैं कि बोलचाल केवल वहीं पारिनिष्ठत है, जिसके बोलने वाले या लिखने वाले के क्षेत्र या वर्ग ज्ञात न हो सके, तो निश्चय ही हम वस्तुस्थिति से दूर नहीं हो सकेंगे। इस दृष्टिकोंण से समकालीन कविता में रघुवीर सहाय को एक आदर्श माना जा सकता है, जहाँ पर तद्‌भवता और देसीपन न किसी प्रतिक्रिया में है, और न किसी आवेश में। वह केवल है और उसका होना अपने में पर्याप्त है।

---

1 आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 70

{5} **छन्द, लयात्मकता, संगीतात्मकताः**

निश्चय ही रघुवीर सहाय की रचना प्रक्रिया छन्द विरोधी नहीं है। रघुवीर सहाय ने "हँसो–हँसो जल्दी हँसो" पुस्तक में उसकी पहली कविता "हा हा हा" की स्वर लिपि भी दी है।

"आत्म हत्या के विरूद्ध" संग्रह के अन्त में भी "मैदान में" शीर्षक कविता को स्वर लिपि दी है।

इस प्रकार रघुवीर सहाय की यह अपनी मान्यता रही है कि "नये काव्य के लिए एक नयी संगीतात्मक "आधुनिक संवेदना" का एक आवश्यक अंग है"---[1]

वर्णिक या मात्रिक जैसी परम्परित छन्द रचना की अनुपस्थिति के बावजूद रघुवीर सहाय की कविताओं में अनिवार्य लय की छ न्दात्मकता है। यह लयोत्पन्न छन्दात्मकता आरम्भ से ही रघुवीर सहाय की कविता की शिल्प संरचना के केन्द्र में रही है। लिखना उन्होंने छन्द में आरम्भ किया था; लेकिन उसके लगभग दो साल बाद ही जनवरी 1948 को उन्होंने मुक्त छन्द की कविता लिखी –"नया वर्ष"। 30 अगस्त 1947 को उन्होंने एक कथिता लिखी थी– "जिज्ञासा"। रघुवीर सहाय ने अपनी आरम्भिक डायरी में इस कविता के बगल में हाशिये में एक तरफ यह लिखा है कि उस कविता को लक्ष्य करके माथुर ने रघुवीर सहाय को मुक्त छन्द लिखने की जल्दी आशा व्यक्त की थी। सहाय इसी बीच बहुत सारी कविताएं लिख ली थी। जिसमें छन्द के नये प्रयोग नहीं हैं। लेकिन पाँचवे दशक के अन्त में इनकी कविता

---

1. आत्म हत्या के विरूद्ध – रघुवीर सहाय, पृ0सं0 7

में छन्द तथा लयात्मकता के बहुत से प्रयोग मिलते हैं। इसी के दौरान सहाय अपनी भाषा में विशेष प्रकार की लयात्मकता का भी सृजन करते हैं– उनका कहना है कि "प्रतीक, बिम्ब, उपमा, रूपक आदि जो वास्तव में मानव सम्बन्धों के चिन्ह हैं, छन्द के बन्धनों के साथ पहले से बँधे चले आये हैं और अब छन्द के बन्धनों को निरे शिल्प की तरह स्वीकार करना दुष्कर हो गया है– उनको बरतने के साथ वे मानव मूल्य भी स्वीकार करने का खतरा मोल लेना पड़ता है जो कवि के अभीष्ट नहीं है। जब महाकवि ने छन्द के बन्धन तोड़ने की पुकार दी थी तो वह यह रहस्य सूत्र रूप में जानते होंगे"----[1]

यही कारण है कि रघुवीर सहाय ने किसी भी छन्द के बन्धन में पड़ने की कोशिश नहीं की है, अपितु उनका प्रयास मुक्त छन्द में ही रचना करना है, जिसमें आवश्यक लय एवं संगीतात्मक भी विद्यमान रहती है।

आत्महत्या के विरूद्ध की "नया शब्द" कविता में इसी बात को लक्ष्य करके रघुवीर सहाय ने प्रतिपादित किया है कि–

> शब्द अब भी चाहता हूँ
> पर वह कि जो जाये वहाँ–वहाँ होता हुआ
> तुम तक पहुँचे
> चीजों के आर–पार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
> स्वच्छन्द अर्थ दे
> मुझे दे। देता रहा है जैसे छन्द केवल छन्द
> घुमड़–घुमड़कर भाषा का भास देता हुआ
> मुझको उठाकर निःशब्द दे देता हुआ"--- [2]

---

1 अर्थात्– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 220

2. आत्म हत्या के विरूद्ध– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 40–41

रघुवीर सहाय का प्रयास एक नये छन्द की खोज की तरफ ही रहा है जिसमें कि जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्बित हो सके- जैसा कि- "पुराने कवि कहते थे "कविता बन पड़ी है, या वह प्रचलित और बहुधा साहित्येतर कारणों से किसी समय लोकप्रिय छन्दों में आश्रय लेकर सन्तुष्ट है। पर यदि वह छन्द के साथ सचमुच रचनात्मक रिश्ता बनाना चाहता है और सचमुच बड़ा कवि होने का दम्भ करके बैठा नहीं रहता। बल्कि छन्द की प्रबल शक्ति के सामने अपनी नगण्यता पहचानता है तो उसे नया छन्द खोजना होगा- वह "गद्य' में मिलेगा या पद्य में, यह निरा किताबी सवाल है, मगर उसका कवि जानता है कि नये नैतिक मानव सम्बन्ध में मिलेगा"---[1]

इस प्रकार रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में किसी छन्द विशेष के बन्धन में बिना पड़े ही, अपनी रचना को आगे बढ़ाया है।

रघुवीर सहाय की काव्य भाषा में जो लयात्मकता उपलब्ध है, वह उनके समकालीन अन्य की तुलना में कुछ भिन्न है। सहाय की भाषा में लयात्मकता के साथ-साथ भाषा भी उतनी ही मुखर हो जाती है। उनकी भाषा में संगीत की लय और बात की लय एक दूसरे से विपरीत चलती है। संगीत संघात के साथ चलता है और भाषा चिन्तन की लय में, जो कि एक प्रकार से विपरीत युग्म है- जैसा कि-

"कुछ होगा, कुछ होगा अगर मैं बोलूँगा
न टूटे- न टूटे तिलिस्म सत्ता का मेरे अन्दर एक
कायर टूटेगा टूट
मेरे मन टूट एक बार सही तरह
अच्छी तरह टूट मत झूठ-मूठ ऊब मत रूठ

---

1. अर्थात- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 -220-21

मत डूब सिर्फ टूट जैसे कि परसों के बाद
वह आया बैठ गया आदतन एक बहस छेड़कर
गया एकाएक बाहर जोरों से एक नकली दरवाजा
भेड़कर"---[1]

इस प्रकार "टूट" शब्द से संगीत तत्व की सृष्टि हो रही है, जिससे कि भाषा में लयात्मक भाव स्वतः उभरता है। रघुवीर सहाय की "आत्म हत्या के विरूद्व" की यह लय "हँसो हँसो जल्दी हँसो- में करूणा, साहस, भय और आतंक के साथ मिलकर एक अलग रूप ग्रहण कर लेती है-

"एक दिन इसी तरह आयेगा-रमेश
कि किसी की कोई राय न रह जायेगी -रमेश
क्रोध होगा- पर विरोध न होगा
अर्जियों के सिवाय-रमेश
खतरा होगा- खतरे की घंटी होगी
और उसे बादशाह बजायेगा-रमेश"---[2]

खतरे की ऐसी घंटी आपातकाल में बजी थी। रघुवीर सहाय ने संकट की ऐसी घड़ी के लिए भाषा की खास मुद्रा और कविता के लिए कुछ नयी शैलियों का भी आविष्कार किया था। यह संकट की ऐसी भाषा है जो अपने तहों को छिपाकर ही अधिक से अधिक खोलती है।

प्रस्तुत उद्धरण में "रमेश" शब्द की आवृत्ति- अन्त में रमेश शब्द का प्रयोग, डेश के बाद लयात्मकता के साथ-साथ झटका भी उत्पन्न करता है।

---

1. आत्म हत्या के विरूद्व- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 85
2. हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 10

उन्होंने अपनी काव्य भाषा में यथार्थ के समुचित चित्रण हेतु जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उन शब्दों के द्वारा उनकी भाषा में एक संगीतात्मक लय उत्पन्न होती है और यथार्थ की भी समुचित अभिव्यक्ति होती है–

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी
भीड़ ठेलकर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो–देखो बार–बार कह
लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी"–––[1]

कविता की इन पंक्तियों में स्पष्ट रूप से लयात्मक पुट व्याप्त है।

रघुवीर सहाय ने अपनी भाषा में खड़ी बोली की अनेक लयों का इस्तेमाल किया हे। इनकी भाषा की लयात्मकता और नाटकीयता पर विचार करने पर यह पता चलता है कि नागार्जुन के बाद रघुवीर सहाय में हमें भाषा की अनेक मुद्राएं मिलती है। बोलचाल की नाटकीयता, वक्रता और लोच। नि:सन्देह अपनी कविता की भाषा को, बातचीत क इतना करीब लाने में रघुवीर सहाय के समान कोई और नहीं दिखाई देता है।

यह निश्चित है कि कभी–कभी जब बोलचाल की लय सामान्य से हटकर बहुत ज्यादा निजी होने लगती है जैसा कि–

---

1. हँसो–हँसो जल्दी हँसो– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 27–28

"लोग भूल गये हैं" संग्रह की कुछ कविताओं में तो सामान्य आदमी को कुछ परेशानी होती है। ऐसी स्थिति में शब्दों से परिचित होने के बावजूद भी लय की अतिनिजता एक विशेष प्रकार की रूकावट पैदा करती है। लेकिन आमतौर पर हमें रघुवीर सहाय की भाषा की लयात्मकता से यही ज्ञात होता है कि भाषा के विविध स्तरों का सही इस्तेमाल कैसे किया जाय–

"लोग भूल गये हैं एक तरह के डर को जिसका कुछ उपाय था
एक और तरह का डर अब वे जानते हैं जिसका
कारण भी नहीं पता
इसमें एक तरह की खुशी है
जो एक नीरस जिन्दगी में कोई सनसनी आने पर होती है
कभी किसी को मौत की खबर सुनकर मुस्करा उठते हुए
अनजाने में देखा होगा"–––[1]

हर वाक्य
रघुवीर सहाय की सफल कविताओं में हर पंक्ति कविता लगती है। उनकी कविता में कसी हुई और ठीक–ठीक शब्दों से गसी हुई भाषा का इस्तेमाल हुआ है, जिसमें लयात्मकता पूर्णरूप से व्याप्त है–

"बड़ी किसी को लुभा रही थी
चालिस के ऊपर की औरत
घड़ी–घड़ी खिल खिला रही थी
चालिस के ऊपर की औरत
खड़ी अगर होती वह थककर
चालिस के ऊपर की औरत
ऐसे दया जगाती थी वह

---

1. लोग भूल गये हैं– रघुवीर सहाय, पृ0सं0 45

चालिस से ऊपर की औरत
वेसे काम जगाती शायद
चालिस के ऊपर की औरत"---[1]

निश्चय ही रघुवीर सहाय की कविता के सम्बन्ध में बोलचाल की भाषा और लय वाली बात बिल्कुल जड़ जमा चुकी है। लेकिन यह भी देखकर आश्चर्य होता है कि उनकी अनेक श्रेष्ठ कविताएं बहुत सारे पारम्परिक छन्दों के नये उपयोग से निर्मित हैं।

"आपकी हँसी" पानी, रामदास, एक दिन रेल में, लुभाना, ओर कई इनके अलावा भी अचानक किसी पुरानी लय की अनुगूँज। सहाय की कविता में भाषा के अनुरूप और कवि इच्छा के अनुसार लय के अनेक संस्मरण हैं--

"नाटक शुरू होने के पहले सहसा मैंने
पहचाना एक अधेड़ औरत का दर्द
वह मुझे घूरे जाती थी
क्या तुम मानोगी कि दुगुन में बजतातबला
अश्लील है
अगर उस पर अपने को थिरकते देखो"---[2]

******

---

1. हँसो-हँसो जल्दी हँसो- रघुवीर सहाय, पृ0सं0 42
2. वही " पृ0सं0 44

उपसंहार

रघुवीर सहाय ने अपनी काव्य यात्रा का आरम्भ अपनी प्रथम काव्य रचना "आदिम–संगीत" शीर्षक से किया था, जो "आजकल" के अगस्त 1947 के अंक में प्रकाशित हुई थी, लेकिन "दूसरा–सप्तक" में प्रकाशित 14 (चौदह) कविताओं ने हिन्दी काव्य–जगत में उनकी अलग पहचान बनायी थी। हालाँकि, सहाय की प्रारम्भिक कविताओं में छायावादी काव्य की हल्की छाया विद्यमान है, लेकिन सामान्य जन की तकलीफों के प्रति गहरी संवेदनशीलता और सरोकार की चेतना इन कविताओं में विद्यमान है। अपने प्रथम काव्य–कहानी संग्रह सीढ़ियों पर धूप में वे व्यक्त करते हैं–

"हमको तो अपने हक सबसे मिलने चाहिए
हम तो सारा का सारा लेंगे जीवन
कम से कम वाली बात न हमसे कहिए"

रघुवीर सहाय का रचना संसार बहुमुखी है। उन्होंने कविता, कहानी, निबन्ध, आलेख आदि सभी विधाओं के अन्तर्गत अपनी रचना को आगे बढ़ाया है। सहाय केवल विधा की दृष्टि से बहुमुखी नहीं, अपितु अनुभूति के प्रसार की दृष्टि से भी हैं। अपने आस–पास के परिवेश में व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, अनाचार, शोषण, उत्पीड़न के सभी पक्षों तक उनकी दृष्टि गयी है।

उनकी रचनाओं को पढ़कर इस निष्कर्ष तक सहज ही पहुँचा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना उनके काव्य का सर्वाधिक मुखर स्वर है, सहाय राजनीति तत्त्वों से सीधा साक्षात्कार करते हैं। वे स्वातन्त्र्योत्तर भारत में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक वैषम्य के मूल में राजनीति और राजनेताओं को ही मानते हैं। राजनेताओं की साँठ–गाँठ पूँजीपतियों से, काले धन से एवं अपराधी तत्वों से है।

उत्पीड़न, अन्याय, गैर बराबरी एवं पूँजीपतियों द्वारा असहाय जनता के शोषण को सहाय ने अपनी रचनाओं में जिस रूप में निरूपित करने का प्रयास

किया है, उससे उनकी चेतना एक दर्द भरी आवाज के रूप में मुखरित होती है। लेकिन वे केवल उस दर्द को प्रकट करके या उससे केवल आम जनता को अवगत कराकर ही नहीं चुप रह जाते हैं, बल्कि उसके समूल नाश के लिए जनता को विद्रोह करने की प्रेरणा और शक्ति देते हैं। वे एक समाजवादी, जनवादी रचनाकार होने के साथ ही साथ एक सशक्त क्रान्तिकारी रचनाकार भी सिद्ध होते हैं।

उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त दर्द एवं टीस इस ओर संकेत करता है कि केवल छूरी, गोली या तलवार से मारने पर ही किसी की हत्या नहीं होती है और ऐसा होने पर ही केवल उसे दर्द नहीं होता है, बल्कि जिस व्यक्ति को बिल्कुल लाचार बना दिया जाता है, जिसे अधिकृत रूप से अनधिकृत कर दिया जाता है तथा हर तरह से इतना प्रतिबन्धित कर दिया जाता है कि वह अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकता। वह व्यक्ति बाहर से जीवित रहने पर भी भीतर से तुल्य ही हो जाता है।

एक सच्चा साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ की इन ज्वलन्त विभीषिकाओं से साक्षात्कार कराता हुआ आगे बढ़ता है। रघुवीर सहाय ने इस तथ्य को अपनी रचनाओं में पूर्णतया चरितार्थ करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी पहुलओं पर प्रकाश डालते हुए एक ज्वलन्त दस्तावेज प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अवतरित होकर अपनी लौह लेखनी से प्रयोगवाद के अवसान एवं नयी कविता के आरम्भ में मानवीय संवेदनाओं के आधार पर अपनी रचनाएं प्रस्तुत कर उन्होंने वर्तमान हिन्दी-जगत को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

सहाय ने यह प्रकट करने की कोशिश की है कि तत्कालीन युग यथार्थ इतना जटिल और बदतर हो गया था कि उसे एक वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में समझा नहीं जा सकता था। एक तरफ जहाँ संसद पर तिरंगे झण्डे का लहराना उत्साहवर्धक रहा है, वहीं पर दूसरी तरफ वास्तविक जीवन स्थितियों के और भी बदतर होते चले जाने का भी दृश्य उभरता हुआ दिखाई दे रहा था। लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति एवं राष्ट्रीय स्तर पर साम्राज्यवाद के अन्त का भ्रम तत्कालीन प्रयोगशील कवियों के मस्तिष्क में आशा और उत्साह से युक्त बदलाव लाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

एक जनवादी एवं समाजवादी कवि होने के कारण रघुवीर सहाय ने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक ढाँचे को समझने का भरसक प्रयास किया है। उनके ऊपर पूर्णतया मार्क्सवादी प्रभाव था। इसलिए आजादी मिलने के बाद एवं भारत में लोकतंत्र की स्थापना हो जाने के बाद उभरते हुए पूँजीवाद का सहाय ने जमकर विरोध किया साथ ही साथ पूँजीपतियों के प्रति अपनी कटुता भी प्रकट की है।

राम मनोहर लोहिया के शिष्यत्व में पले-बढ़े रघुवीर सहाय सदैव से समाजवाद के ही पोषक रहे हैं। उनकी यह मौलिक धारणा रही है कि पूँजीवाद से शोषण एवं अन्याय को बढ़ावा मिलता है। केवल समाजवाद एवं साम्यवाद के द्वारा ही इस वैषम्य को दूर किया जा सकता है। उनका यह भी विचार रहा है कि देश आजाद भले हो गया हो, लेकिन वास्तविक आजादी का अनुभव तभी हो सकता है जब देश में व्याप्त शोषण एवं वैषम्य की स्थिति को पूर्णतया समाप्त किया जाय। वे एक स्वस्थ एवं स्थायी जनतंत्र के समर्थक रहे हैं। इसीलिए वे इस बात को प्रकट करने की कोशिश करते हैं कि संसद (जो लोकतंत्र को कायम रखने की एक प्रतिनिधि संस्था है) आज हिन्दुस्तान में अधिकांशतः गैर जिम्मेदार और

भ्रष्ट प्रतिनिधियों से भर गयी है। इस संस्था में सर्वाधिक प्रतिनिधि शोषक–शासक दल के हैं, जिनके पूर्वाग्रहों और मूर्खताओं के बीच जनता के सही प्रतिनिधियों की आवाज दबा दी जा रही है। भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबे हुए ये सभी प्रतिनिधि संसद में ऐसी वकालतों और माँगों से जुड़े हुए हैं, जो अत्यन्त शर्मनाक हे–

"सेना का नाम सुन देश प्रेम के मारे
मेजें बजाते हैं
सभासद भद्–भद्–भद् कोई नहीं कोई नहीं हो सकती राष्ट्र की
संसद एक मन्दिर है जहाँ किसी को द्रोही कहा नहीं जा सकता।"

भारतीय लोकतंत्र को लक्ष्य करके सहाय ने यह स्पष्ट करने की कोशिश की है कि बुर्जुआ लोकतंत्र के उपकरणों के दुरूपयोग से उसके ढाँचे में आम जनता शोषण और यातना की भयंकर स्थितियों से गुजर रही है।

रघुवीर सहाय की कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि सन् 1947 के बाद भारतीय शासन व्यवस्था में लोकतांत्रिक ढाँचे को शोषक शक्तियों के हितों से सम्बद्ध रखने का प्रयास किया गया; परिणामस्वरूप जनता के लोकतंत्र को संभव बनाने के सारे प्रयासों को शोषक वर्गो ने विफल करने का निरन्तर प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने इस बात से अवगत कराने का प्रयास किया है कि राजनेताओं ने लोकतंत्र को भ्रष्ट–तंत्र बना दिया हैं। सारी लाभकारी योजनाएं केवल उन्हीं के लिए बन रही हैं। उन्हें अपने विकास और स्वार्थ के आगे और कुछ नहीं दिखाई देता है। सामान्य जनता से उन्हें कुछ लेना देना नहीं है।

अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से रघुवीर सहाय ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि राजनीतिक हवा देश की प्राण वायु है। उनका यह

विचार रहा है कि सफल एवं सच्चे लोकतांत्रिक वातावरण में ही भारत जैसे विशाल देश का विकास संभव है। लेकिन जब तक शोषकों एवं पूँजीपतियों द्वारा सामान्य जनता का शोषण होता रहेगा, तब तक भारतीय लोकतंत्र की सार्थकता नहीं सिद्ध हो सकती है। उन्होंने इस बात की भी पुष्टि करने की कोशिश की है कि हमारी वास्तविक आजादी तभी चरितार्थ होगी, जब हमारे देश के प्रत्येक नागरिक को राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग का समुचित अवसर प्राप्त होगा।

रघुवीर सहाय की कविताओं से यह सिद्ध होता है कि भारतीय लोकतंत्र की अव्यवस्थाओं का विरोध करने के लिए जब कोई जनशक्ति खड़ी होती है, तो उसे रोजी–रोटी से वंचित कर देने की धमकी से सत्ता पक्ष सहमत कर लेता है।

चूँकि सहाय की कविताएं एवं गद्य रचनाएं नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता के दौर में लिखी गयी है, परिणामस्वरूप उन्होंने तत्कालीन जनतांत्रिक चुनावों की तरफ भी संकेत किया है।

साथ ही साथ उनकी कविताएं सरकार की नीति, आर्थिक–दृष्टिकोंण एवं सत्ता के लोलुप भ्रष्ट नेताओं का पर्दाफाश करती हैं। सहाय का यह दावा है कि अपने को सफल बनाने के लिए राजनेतागण किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार, बूथ कैपचरिंग, सच्चे एवं ईमानदार लोगों की हत्या कर देने जैसे जघन्य अपराधों को करने से बिल्कुल नहीं चूकते हैं।

अपनी कविताओं के माध्यम से रघुवीर सहाय ने लोकतंत्र या जनतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनका यह विचार है कि पूँजीवादी व्यवस्था आज देश में इस प्रकार जड़ जमा चुकी

है कि एक वर्ग (शोषित वर्ग) निरन्तर शोषण के साये में जी रहा है। इसलिए देश में भले ही लोकतंत्र की स्थापना हो गयी है, लेकिन इसे सच्चा लोकतंत्र नहीं जा सकता है। उनकी कविताओं से इस बात की पुष्टि होती है कि आज के राजनीतिक वातावरण में भय और दहशत की स्थिति व्याप्त है। हत्या और अपराधों का सिलसिला इतना बढ़ता जा रहा है कि लोकतंत्र का बुनियादी ढाँचा ही खोखला होता जा रहा है।

रघुवीर सहाय की काव्य रचनाओं से यह उजागर होता है कि इस देश के लोकतंत्र पर जिन और जैसे लोगों का कब्जा है और जिस कब्जे की वजह से भय, आतंक एवं अधिकारों क हनन का सिलसिला लगातार बढ़ता जा रहा है, उसी से देश दिन-प्रतिदिन पतनोन्मुख होता जा रहा है- उनकी कविताएं यह भी प्रतिपादित करती हैं कि हमारा लोकतंत्र ही भ्रष्ट और भीड़ तंत्र हो गया है, जिसमें अकिंचन, असहाय एवं शोषित वर्ग की फरियाद को सुनने वाला कोई नहीं है। आज के विकृत राजनीतिक परिवेश में "रामदास" और "खुशीराम" जैसे सामान्य एवं निर्दोष लोगों की ऐलान करके हत्या कर दी जाती है, लेकिन उस हत्या की कहीं कोई फरियाद सुनने वाला नहीं है-

"निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौलकर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आखिर उसकी हत्या होगी।"

स्वतन्त्रताके पश्चात् आने वाली सरकारों का सम्पूर्ण लेखा-जोखा रघुवीर सहाय की कविताओं से प्राप्त होता है। इनकी कविताएं मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता

के लिए प्रतिबद्ध विचारों को प्रकट करती हैं। उनकी गहरी जनतांत्रिक संवेदना ने आधुनिकतावाद की नकल के कारण पनपती असमानताओं को विभिन्न–रूपों और परतों में देखने, सुनने, और समझने की कोशिश किया है। उनका मानना है कि गैर–बराबरी और अन्याय पर टिकी व्यवस्था ने आदमी और आदमी के बीच समानता को खत्म कर दिया है। इसके अतिरिक्त एक वर्ग को अपने को नीचा एवं हेय मानकर जीने वाला आदमी बना दिया है।

सहाय की कविताओं से ही इस बात की पुष्टि होती है कि जनप्रतिनिधि लोकतंत्र के प्रहरी होते हैं, लेकिन ये जनप्रतिनिधि भारतीय लोकतंत्र के नायक नहीं, बल्कि खलनायक के रूप में उभरे हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में जनप्रतिनिधियों के संवाद की बिल्कुल कृत्रिम शैली एवं उनकी राजनीति पर विद्रूप एवं व्यंग्य के माध्यम से सशक्त–प्रहार किया है–

"हमने बहुत किया है
हमही कर सकते हैं
हमने बहुत किया है"।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं में साथ ही साथ अन्य रचनाओं में भी लोकतंत्र का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस भारतीय लोकतंत्र में सर्वत्र शोषण का ही भयावह दृश्य व्याप्त है। हत्या एवं आतंक के साथ–साथ जनप्रतिनिधियों की हँसी एक नयी हँसी का रूप धारण कर लेती है, जो कि रघुवीर सहाय की कविताओं में स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है–

"निर्धन जनता का शोषण है
कहकर आप हँसे
लोकतंत्र का अन्तिम क्षण है
कहकर आप हँसे।"

नि:संदेह रघुवीर सहाय की कविताएं व्यक्ति, समाज, संस्था–विशेष, राजनीति तथा जनतंत्र की असलियत का पर्दाफाश करके, वास्तविकता को उभारने का चित्र प्रस्तुत करती हैं। राजनीति में व्याप्त ढोंग, भाई–भतीजावाद विकृत राजनीतिक परिदृश्य, बुद्रिजीवियों का खोखलापन तथा जी हजूरी करने वाली एवं रिरियाती हुई भीड़ पर अपनी रचनाओं के माध्यम से रघुवीर सहाय ने सीधा और तीखा व्यंग्य प्रहार किया है। इसके अतिरिक्त एक सहज मानवीय जीवन, जो कि हर तरह के शोषण एवं दिखावे से मुक्त है, की तरफ उन्होंने संकेत किया है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के रिश्तों को जिस तरह परिभाषित करने का प्रयास किया है, उससे उनकी अलग पहचान कायम होती है। उन्होंने अपनी काव्य–रचनाओं एवं गद्य–रचनाओं के आधार पर यह सिद्व करने का भरसक प्रयास किया है कि विकृत सामाजिक ढाँचे के मूल कारण के रूप में राजनीतिक अव्यवस्था एवं शोषकों तथा पूँजीपतियों द्वारा असहाय एवं सामान्य जनता का निरन्तर शोषण की प्रक्रिया ही समाहित है।

सहाय की कविताओं ने राजनीतिक क्षेत्र में भाषावाद एवं जातिवाद को बिल्कुल त्याज्य बताया है। उन्होंने हिन्दी भाषा को ही सच्ची राष्ट्रभाषा के पद पर स्थापित कराने का प्रयास किया है। उनका यह मानना था कि आज हिन्दी को केवल अनुवाद की भाषा बना दिया गया है। वे यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किये हैं कि हिन्दी को राष्ट्र–भाषा के पद की पदवी दिलाने का दावा करने वाले साहित्यकार, हिन्दी सलाहकार, सरकारी संस्थानों के मूर्ख हिन्दी

अधिकारी तथा जड़ हिन्दी अध्यापक, हिन्दी भाषा को अपने जीवन–यापन तथा सुख–सुविधा का उपकरण मात्र बनाते हुए अन्ततोगत्वा शासक वर्ग के हितों को पुष्ट कर रहे हैं।

परिणामतः हिन्दी भाषा में विकास के बदले मात्र एक सड़न पैदा हो रही है। उन्होंने बार–बार हिन्दी भाषा की सच्ची उन्नति की बात प्रकट की है–

"हमारी हिन्दी एक दुहाजू की नयी बीबी हे
बहुत बोलने वाली बहुत खाने वाली बहुत सोने वाली"

उनकी कविताएं आपातकाल लागू किये जाने से बिल्कुल पहले के खतरों से आगह किया था। आज वही खतरा भारतीय जनता के सम्मुख एक चुनौती का विषय बन चुका है। शोषक–सत्ताधारी वर्ग निरन्तर शोषितों एवं असहाय लोगों का शोषण ही करता जा रहा है। आपातकाल के दौरान इनकी लिखी गयी कविताएं यह सिद्व करती हैं कि उस दौरान अपने मौलिक अधिकारों से वंचित जनता न तो विरोध में कुछ कह सकती थी और न तो उसे कुछ कहने का अधिकार ही दिया गया था। आज की स्थितियाँ भी कमोवेश वही हैं। बढ़ते हुए पूँजीवाद, शोषण एवं दमन के कारण हर पड़ाव पर सामान्य आदमी ही मारा जा रहा है।

एक सामाजिक सरोकार के कवि होने के कारण एवं समाज के प्रति अपनी गहरी अनुभूति प्रकट करने के कारण, सहाय ने समाज की विषमता एवं उससे उत्पन्न बदहाली की स्थिति को अपनी कविताओं एवं अन्य गद्य रचनाओं के द्वारा उभारने का प्रयास किया है। यही कारण है कि उनकी चेतना आम नागरिक की चेतना बन जाती है, जिसमें समाज का जीता–जागता स्वरूप एवं बदलते परिवेश की झंकार स्पष्ट रूप से सुनाई देती है–

"लोग -लोग–लोग चारों तरफ हैं मार तमाम लोग
खुश और असहाय
उनके बीच रहता हूँ उनका दु:ख
अपने आप और बेकार"।

सहाय ने समाज की दलित, पीड़ित एवं लाचार जनता से अपना सीधा सम्बन्ध रखने का प्रयास किया है, इसके अतिरिक्त उनकी कविताएं लाचारी एवं बदहाली के कारणों को प्रकट करती हुई उनके सहज आक्रोश को अभिव्यक्त करती हैं। सहाय ने यह स्वीकार किया है कि बढ़ते हुए पूँजीवाद के परिणामस्वरूप समाज में शोषक और शोषित वर्गो का जन्म हुआ है। जिसमें शोषक वर्ग निरन्तर शोषितों का शोषण करता जा रहा है।

रघुवीर सहाय ने समाज के लोगों की पीड़ा को बिल्कुल अपनी पीड़ा समझकर, शोषित जनता के साथ होने वाले निरन्तर अत्याचार के प्रति अपनी विद्रोह की भावना प्रकट की है। उनकी कविताएं जर्जर बदलते सामाजिक परिवेश एवं राजनीतिक ह्रास का सफल दृष्टान्त प्रस्तुत करती हैं, साथ ही साथ सहाय का यह भी मानना है कि विकृत राजनीति के परिणामस्वरूप ही सामाजिक परिवेश भी विकृत हुआ है–

"बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिल तिल कर मिट गयी"।

रघुवीर सहाय की कविताएं यह प्रकट करती है कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी विषमता है– वर्ण विभाजन, जिसने अब जातिवाद का रूप ले लिया है। इस जातिवाद की विषमताओं को सहाय ने बड़े सहज ढंग से अपनी

कविताओं में उभारने का प्रयास किया है। शोषकों एवं शोषितों के बीच भयंकर विषमता के दृश्य को उभारते हुए उन्होंने जहाँ पर शोषितों के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट की है, वहीं पर शोषकों के प्रति अपने घृणा को व्यक्त करने से नहीं चूकते हैं। कार्लमार्क्स ने जिस प्रकार शोषितों का करूण गान करके, शोषकों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है, उसी प्रकार रघुवीर सहाय ने भी शोषकों के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए, सर्वहारा वर्ग का ही समर्थन किया है। उनका अपना यह कहना हे कि वर्तमान आत्यन्तिक अत्याचारों के पीछे पूँजीवाद और सामन्तवाद का सम्मिलित अश्लील चेहरा है। उन्होंने ऐसे चेहरे पर ही प्रहार करने का प्रयास किया है।

उनकी कविताएं "रामसरण" और "रामदास" सभी वर्गो का समुचित प्रतिनिधित्व करती हैं। यह तो वह वर्ग है जो यन्त्रणा और दमन का शिकार हुई हिन्दुस्तान की शोषित जनता का वर्ग है। उनकी रचनाओं में व्यक्तिवाचक नामों का इस्तेमाल इस प्रकार किया है कि नाम लेते ही वैसे शोषित चेहरे सामने उपस्थित हो जाते हैं। सहाय की कविताएं बेंचू, मँगरू, ढोड़े, गोबर आदि का उल्लेख करके शोषितों तथा अन्याय एवं विषमता की जिन्दगी जी रहे लोगों का ही चित्रण किया है--

"कम्बल रेलगाड़ी में बीस अजनबियों के सामने
बेचू वल्द निरहू, ढीड़े--मँगरे पाँचू--गोबरे
पाँच भाई
बैठे थे"।

सहाय की कविताएं हमें हर दौर के यथार्थ से अवगत कराती हैं, इसके अतिरिक्त उसमें यथार्थ को पहचानने के काबिल औज़ार भी मौजूद दिखाई

देते हैं। दमन, हिंसा, शोषण, बेकारी, नव धनाढ्य संस्कृति और सामाजिक उच्छृंखलता के कारण हम वास्तव में क्या खो रहे हैं– इसकी सही पहचान करवाने में रघुवीर सहाय की कविताएं बहुत ही सार्थक सिद्ध होती हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में सामजिक मूल्यों के प्रति अपनी अटूट आस्था प्रकट की है।

जीवन को बिल्कुल असलियत में प्रकट करके सहाय ने यथार्थ से साक्षात्कार कराने का प्रयास किया है। दया, करूणा, सहानुभूति सच्चा मानव–प्रेम अहिंसा आदि बहुत सारे सामाजिक मूल्यों को आत्मसात् करके सहाय ने अपनी रचनाओं का सृजन किया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं में मनुष्य की लालसा एवं स्वाधीनता पर होने वाले प्रहार का देखा जा सकता है। मर्यादा, स्वाभिमान एवं अपनी संस्कृति से अटूट प्रेम रखने वाले सहाय ने जनता को अपनी स्वाभाविक स्थिति पाने एवं अपने अधिकारों के उपभोग के प्रति सचेत किया है। उनकी रचनाएं यह प्रकट करती हैं कि हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता है; लेकिन बदलते इस सामाजिक बदहाली में बहुसंख्यक लोगों को अपने अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। उनका यह भी मानना है कि सामाजिक आदर्शों एवं मान्यताओं की पूर्णरूपेण अवहेलना हो रही है। पूँजीवादी दुर्व्यवथा ने सबको अपने चंगुल में कर लिया है; परिणामतः सामाजिक मान्यताएं एवं सभी आदर्श नगण्य हो गये हैं, और इस सामाजिक अव्यवस्था में सामान्य जन का कोई मूल्य नहीं रह गया है।

रघुवीर सहाय की कविताओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि उन्होंने सामाजिक मूल्यों को सर्वथा कायम रखने पर बल दिया है। इसके

अतिरिक्त उन्होंने व्यर्थ का पोज बनाने वाले कवियों एवं साहित्यकारों का भी पर्दाफाश किया है। जो समाज पतन की तरफ झुका है और जहाँ की संस्कृति विकृत हो चुकी है, जिसमें सर्वत्र अन्याय और असमानता की लहर व्याप्त है, ऐसे समाज के पुनर्निमाण हेतु सहाय अपनी लेखनी के माध्यम से पूर्ण प्रतिबद्ध थे। उन्होंने नारी की सभी स्थितियों एवं समाज में उसके साथ होने वाले अत्याचार को पूर्ण–यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। उनकी कविताएं सर्वत्र नारी चेतना को मुखरित करती हैं। वे नारी के अधिकारों के सच्चे हिमायती रहे हैं। उन्होंने समाज की दृढ़ता के लिए नारी के सहयोग को अपेक्षित माना है। उनकी रचनाएं इस पुरूष–प्रधान समाज में औरतो को अपने अधिकारों के लिए भी पुरूषों की कोटि में लाकर खड़ी करती हैं।

सहाय की काव्य रचनाओं में आम–जनता की यन्त्रणाओं के साथ ही साथ नारी की यंत्रणा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है, जिसे वे इस भ्रष्ट एवं बुर्जुआ लोकतंत्र में झेल रही हैं। सहाय की कविताओं में नारी के साथ होने वाले बलात्कार, अनावश्यक शोषण एवं गैर बराबरी का मार्मिक चित्र प्राप्त होता है–

"नारी विचारी है
पुरूष की मारी है
तन से क्षुधित है
मन से मुदित है"

यह निश्चित है कि सहाय ने वर्तमान समाज में स्त्री के साथ होने वाले अत्याचार एवं उसकी गुलाम स्थिति को लेकर बहुत ही क्षुब्ध थे। उनकी कविताओं में बहुत सारे असहाय बच्चों, स्त्रियों एवं लड़कियों के चित्र प्राप्त होते हैं। उनका अपना जो समाज है, उसमें जूता-पालिस करने वाला लड़का, अखबार बेचने वाला सुथन्ना पहने हर चरना, गर्भवती-मजदूरन आदि अनेक असहाय चरित्र हैं वे उनकी कविता में अपनी अलग पहचान प्रकट करते हैं। उनकी रचनाओं में नारियों को भी पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किये जाने की बात बार-बार कही गयी है। उन्होंने नारी के साथ होने वाले वैषम्य भाव, एवं उसकी बदतर स्थिति के लिए भी इस भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र को ही जिम्मेदार ठहराया है। डा० राम मनोहर लोहिया ने भी औरतों के प्रति होने वाले अत्याचार को विधिवत महसूस किया और उनके दर्द एवं अत्याचार के पीछे राजनीतिक एवं सामाजिक दोनों कारणों को जिम्मेदार ठहराया था।

रघुवीर सहाय ने अपनी कविताओं के माध्यम से ऐसे अत्याचार एवं अन्याय के प्रति विरोध व्यक्त किया है, साथ ही इसको समाप्त करने के लिए औंरतों को एकजुट होकर सामने आने की प्रेरणा भी प्रदान की है।

सहाय की सभी रचनाओं में वर्तमान पूँजीवादी अव्यवस्था, शोषण एवं उत्पीड़न तथा समाज की बदहाल स्थिति के बीच बदलते हुए मानवीय सन्दर्भ की सफल झाँकी भी प्राप्त होती है। देश की विशाल जनता पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा किया जाने वाला सतत अन्याय सहाय की कविताओं का मुख्य वर्ण्य विषय है। वे यह परिभाषित करते हैं कि शोषक वर्ग के हितों की सुरक्षा करने वालों से शासन का अत्याचार झेलते हुए लोग तंग आकर आत्म हत्या की स्थिति में पहुँच चुके हैं। इस प्रौढ़ होते पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत सामान्य आदमी

के लिए कोई पड़ाव नहीं रह गया है। उसे अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपनी सही स्थिति प्राप्त करने से हर मोड़ पर रोक दिया जा रहा है। आज का शासन तंत्र इतना भ्रष्ट हो गया है कि वह पूँजीपतियों एवं अभिजात्य वर्ग का ही पक्षधर है। ऐसी विषम परिस्थिति में देश की बहुत सारी मानवीय प्रतिभाएँ समाप्त होती जा रही हैं और बहुत सारे प्रतिभाशाली लोग इस बढ़ते हुए पूँजी बाजार से ऊबकर दूसरे देशों को भी पलायित हो जा रहे हैं।

सहाय की कविताएं पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत पिसते हुए लोगों का सफल चित्रण प्रस्तुत करती हैं। मानवीय संवेदना के स्तर पर रघुवीर सहाय की कविताएं शोषित जनता की पीड़ा का जिस प्रकार एहसास कराती हैं, वह उस विसंगत यथार्थ को बदलने के प्रयासों से जुड़ने के लिए एक सतत प्रेरणा का मार्ग है। उनकी बहुत सारी कविताओं में जिन मनुष्य विरोधी स्थितियों के प्रसंग आये हैं उसमें प्रमुखता इस विडम्बना को उखाड़ने की है ताकि आत्महत्या और घुटन की वर्तमान स्थितियाँ खत्म हों। इसके लिए समाज के तात्कालिक नेतृत्व द्वारा उद्‌घोषणाएं तो की जा रही हैं, लेकिन इन उद्‌घोषणाओं की आड़ में उन्हीं के द्वारा ही वे बहुत सारे कारण और भी पुख्ता किये जा रहे हैं, जिनसे ये सभी स्थितियाँ पैदा होती हैं–

> "मरते मनुष्यों के मध्य खड़ा मक्कार मंत्री
> कहता है सविश्वास
> सरकार सिंचाई करें।"

सहाय की कविताओं में इस बात की स्पष्ट झलक मिलती है कि आज शासन व्यवस्था का दौर इतना बिगड़ चुका है कि गरीब एवं असहाय जनता के लिए सभी आवश्यक चीजें बहुत मँहगी कीमत पर खरीदना पड़ रहा है।

परिणामतः आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक असमानता एवं अन्याय की एक सशक्त दीवार खड़ी होती जा रही है, जिसमें केवल सामान्य एवं मामूली आदमी ही पिस रहा है।

रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में यह अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है कि बढ़ती हुई चोर बाजारी एवं पूँजीवादी अव्यवस्था के कारण सामान्य जन–जीवन बहुत ही संकट में पड़ गया है, जिसके कारण लाचार एवं असहाय व्यक्ति को इस दौर में किसी प्रकार का कोई स्थान नहीं मिल पाता है। इस बिगड़ी हुई राजनीतिक अव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवाद के शोषण की शिकार जनता हर तरह की यातनाएं झेल रही है। अत्याचार एवं घूसखोरी, तस्करी एवं नकलीपन तथा अनेकानेक अन्य दुर्व्यवस्थाएं अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी हैं। इसके साथ ही सहाय की कविताएं यह उल्लेख करती हैं कि देश का भ्रष्ट तंत्र जिसमें कि शासक वर्ग एवं राजनेता अपनी झोली भरने के पीछे उतावले हो गये हैं, वे कभी भी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को स्थायी एवं हितकारी रूप नहीं प्रदान कर सकते हैं।

रघुवीर सहाय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जब तक समाज की सतह से पूँजीवाद एवं शोषण का अन्त नहीं हो जाता है, तब तक एक स्वस्थ समाज की स्थापना केवल एक कोरी कल्पना होगी, इसके अतिरिक्त जब तक शोषण एवं उत्पीड़न का खौफनाक परिदृश्य हमारे भारतीय समाज में जारी रहेगा, तब तक किसी भी स्थिति में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं मानव जाति का कदापि बिकास संभव नहीं है। उनकी कविताएं वर्तमान समाज की भयावह परिस्थितियों के बीच समाज में चिरकाल से प्रतिष्ठित मानवीय मूल्यों के ह्रास एवं विघटन के प्रति उनके चिन्ता भाव को भी प्रकट करती हैं। अपनी रचनाओं के

द्वारा रघुवीर सहाय ने इस बात की परिपुष्टि करने की कोशिश की है कि विकृत–राजनीतिक–सामाजिक परिवेश के मूल में मानवीय मूल्यों का सतत विघटन है :–

"बाँध में दरार
पाखण्ड वक्तव्य में
घट तौल न्याय में
मिलावट दवाई में"।

सहाय की कविताएं जिस संसार का चित्रण करती हैं, वह पूरी तरह भारतीय है, जिसमें बिल्कुल आम–आदमी का संसार समाहित है। सहाय ने वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था एवं राजनीतिक अव्यवस्था तथा उथल पुथल को मानवीय मूल्यों के विघटन के लिए उत्तरदायी माना है। उन्होंने मानवीय एवं नैतिक मूल्यों के प्रति अपनी गहरी चिन्ता प्रकट की है। उनकी रचनाएं यह सिद्ध करती हैं कि किसी समाज और देश की अस्मिता को हम मानवीय मूल्यों के आधार पर ही बचाये रख सकते हैं। उनकी कविताएं समाज के ऐसे वर्गों के प्रति व्यंग्य कसती हुई आगे बढ़ती हैं, जो मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करते हैं।

नैतिकता के निरन्तर विघटन एवं उस पर आच्छादित राजनीतिक, सांस्कृतिक संकट का सजीव एवं सांगोपांग विवरण सहाय की कविताओं में प्राप्त होता है। उन्होंने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि पद एवं सत्ता के लोभ में प्रत्येक राजनेता किसी भी प्रकार का जुर्म एवं अन्यायपूर्ण कार्य करने में तनिक भी संकोच नहीं करता है। इसके अतिरिक्त वे इस बात से भी अवगत कराते हैं कि ऐसा जुर्म एवं अत्याचार करने वाले लोग इतना सशक्त और बलशाली हैं कि वे साफ बच जाते हैं–

"दस मन्त्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नहीं
काल रोग का फल है अकाल अनावृष्टि का"

रघुवीर सहाय का यह विचार रहा है कि आज के बदलते परिवेश में लोग अपने वास्तविक मूल्यों एवं सामाजिक परम्पराओं को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरों में फँसते हैं, जिसके कारण दिन–प्रतिदिन मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सहाय के काव्य संग्रह हमें यह संदेश प्रदान करते हैं कि सामाजिक ढाँचे की मजबूती एवं उसके आधार की प्रौढ़ता के लिए सांस्कृतिक मान्यताओं एवं सम्पूर्ण मानवीय मूल्यों को जीवित रखना नितान्त आवश्यक है। उनकी कविताएं यह भी प्रतिपादित करती हैं कि एक सभ्य समाज का सही मूल्यांकन मानवीय मूल्यों एवं सांस्कृतिक मान्यताओं तथा प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है। उनकी रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि आज स्वार्थ लिप्सा का प्राबल्य होने के कारण नैतिकता का दिन–प्रतिदिन क्षरण होता जा रहा है। आज के बढ़ते हुए शोषण एवं जातिवाद के कारण, मनुष्य और मनुष्य के बीच एक गहरी खाँई पैदा हो गयी है, परिणामस्वरूप परस्पर प्रेम एवं विश्व–बन्धुत्व का भाव भी समाप्त होता जा रहा है–

"हिन्दू और सिख में
बंगाली असमिया में
पिछड़े और अगड़े में
पर इनसे बड़ी फूट"

एक मानवीय संवेदना के कवि होने के कारण सहाय ने सांस्कृतिक मान्यताओं एवं मानवीय मूल्यों के स्खलन के प्रति भी अपनी गहरी चिन्ता व्यक्त की है। उनकी कविताएं सहज रूप में सांस्कृतिक एवं मानवीय सन्दर्भो के प्रति एक तड़पन प्रकट करती हैं, जिनके बुनियादी ढाँचे पर ही किसी स्वस्थ एवं समृद्ध समाज की स्थापना हो सकती है।

सहाय की कविताएं इस तथ्य को उजागर करती हैं कि सघन औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप, शहरीकरण, बेरोजगारी, विशेषीकरण तथा संयुक्त परिवार के विघटन से जुड़ी हुई अनन्त समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। सहाय ने यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि पूँजीवादी औद्योगिकीकरण के उत्कर्ष ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना दिया है। यांत्रिकीकरण के बीच उसका दर्जा भी मशीन के एक पुर्जे के रूप में हो गया है। फलतः मानवीय संवेदनाएं निरन्तर मरती जा रही हैं, इसके साथ ही मानव और मानव के बीच का रिश्ता टूटता जा रहा है।

रघुवीर सहाय की रचनाएं इस सच्चाई को व्यक्त करती हैं– कि आज की दुनिया इतनी बदल गयी है कि मनुष्य प्रेम के स्थान पर घृणा, ईमानदारी के स्थान पर बेईमानी का रास्ता अपनाकर चल रहा है। ऐसी भयंकर परिस्थिति में सत्य और प्रतिष्ठित मान्यताओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया है। पूँजीवादी अव्यवस्था के अन्तर्गत मची–लूट–खसूट एवं रिश्वतखोरी तथा निरन्तर शोषण से मानवीय भावों की समाप्ति होती जा रही है। परार्थ के स्थान पर स्वार्थ की प्रवृत्ति निरन्तर सशक्त होकर नैतिकता का क्षरण कर रही है। सहाय ने अपनी कविताओं में मानवीय भावों को समाज का बुनियादी आधार स्वीकार किया है, जिनके आधार पर किसी समाज की मजबूती को विधिवत प्रमाणित किया जा सकता है।

अपनी सभी रचनाओं में सहाय मनुष्य और मनुष्य के बीच समानता के लिए संघर्षशील दिखाई देते हैं–

"मेरा सब क्रोध सब कारूण्य– सब क्रन्दन
भाषा में शब्द नहीं दे सकता"

रघुवीर सहाय की सभी कविताएं मानवीय भावों को आत्मसात् करती हुई आगे बढ़ती हैं, जिनमें कि उन मानवीय मूल्यों एवं मानवीय भावों के प्रति स्वाभाविक छटपटाहट दिखाई देती है। सहाय की कविताएं यह प्रकट करती हैं कि इन्हीं मानवीय मूल्यों के द्वारा मनुष्य की सही पहचान एवं मानवता की सही खोज संभव हो सकती है। उनकी कविताएं सम्पूर्ण मानवता के परिदृश्य को चित्रित करते हुए आगे बढ़ी हैं।

आधुनिक जीवन का सम्पूर्ण अध्ययन करते हुए, जीवन की समस्त विडम्बनाओं को, जिनके द्वारा आज मानवीय भावों–दया, करूणा, ईमानदारी, आदि को आघात पहुँच रहा है, उसे सहाय की कविता में मुख्य वर्ण्य विषय के रूप में देखा जा सकता है। संवेदना और बदलते सामाजिक–मूल्यों तथा मानवीय भावों पर आघात–पहुँचाने वाली अव्यवस्था के प्रति उनका सहज दर्द प्रस्फुटित हुआ है–

"टूटते हुए समाज का रोना जो रोते हैं
उनके कल और परसों के आसुओं का
प्रमाण मेरे पास लाओ"

रघुवीर सहाय की रचनाएं यह प्रमाणित करती हैं कि वे आम जनता के कवि रहे हैं, क्योंकि उन्होंने सामान्य जन के अभाव संघर्ष एवं दुःख दर्द को सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया है। उनकी काव्य–भाषा आम–जनता के बिल्कुल करीब पहुँचने वाली भाषा है, जिसमें कि समाज के दुःख झेलते हुए शोषित उपेक्षित लोगों का चित्रण प्राप्त होता है। उनकी भाषा केवल यथार्थ का वर्णन ही नहीं करती है, अपितु यथार्थ का एवं उसके सच का अन्वेषण भी करती है। उन्होंने अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों के प्रति अपनी

कुशलता प्रकट की है। उनकी काव्य–भाषा की शक्ति सम्पन्नता उनकी कविताओं में आरम्भ से ही विद्यमान है। उन्होंने अपनी कविताओं में आम बोलचाल की भाषा प्रयुक्त किया है। उनकी भाषा एवं यथार्थ के बीच एक समवाय सम्बन्ध ही दिखाई देता है।

वे आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं समाचार पत्र–पत्रिकाओं से सम्बद्ध रहे हैं। परिणामस्वरूप उनकी काव्य भाषा में अखबारी पुट एवं पत्रकारिता का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है, जो सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध होता है।

सहाय की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अपनी काव्य–भाषा को हिन्दी पत्रकारिता के उन स्रोतों से जोड़ा था जो जनोन्मुख एवं जनाधारित थे। केवल इतना ही नहीं, रघुवीर सहाय ने अखबार की भाषा से राजनीति को लेकर उसे कविता में गढ़ने का सार्थक प्रयास किया है।

उनकी कविताओं को साक्ष्य बनाकर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपनी भाषा में जिस अखबारी पुट का प्रयोग किया है, उनमें मानवीय रिश्ते–छिपे हुए हैं। उनकी पत्रकारिता वृहद् लोकतंत्र की पत्रकारिता है जिसमें कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत घायल किये गये निम्न मध्यवर्गीय लोगों के दर्द का सफल चित्रण मौजूद है। उनकी भाषा से यह जाहिर होता है कि वह बिल्कुल साधारण और सामान्य लोगों की भाषा है, जिसके माध्यम से हर व्यक्ति अपने विचारों को सम्प्रेषित कर सकता है।

सच्चे यथार्थ को धरातल से जुड़े होने के कारण, सहाय ने अपनी काव्य भाषा के माध्यम से समाज की यथार्थ स्थितियों को चित्रित करने का भरसक प्रयास किया है। वास्तविकता को अपनी सारी जीवन्तता में व्यक्त करने का सही

एवं सटीक तरीका रघुवीर सहाय की भाषा में परिलक्षित होता है। अन्य साठोत्तरी कवियों की तरह सहाय ने भी यह महसूस किया कि कविता में बिम्बों के द्वारा सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है। इसलिए उन्होंने अपनी काव्य भाषा में सपाटबयानी का खुलकर सहारा लिया है। सहाय की कविताएं इस बात का भी उल्लेख करती हैं कि कविता बिम्ब का पर्याय नहीं है। एक सामान्य रूप में जिसे बिम्ब कहा जाता है, उसके बिना भी कविताएं लिखी गयी हैं।

उनका यह स्पष्ट विचार रहा है कि बिम्बों के कारण कविता बोल–चाल की सामान्य भाषा से दूर हट जाती है और विशेषणों का भी बोझ बढ़ जाता है। इस कमी को दूर करने के लिए रघुवीर सहाय ने अपनी काव्य भाषा में सपाटबयानी का सहारा लिया। अपने चारों ओर के परिदृश्य, कटु–सत्य, विसंगति एवं विद्रूप को सही विश्वसनीय एवं सटीक अभिव्यक्ति के लिए भी उन्होंने अभिधात्मक भाषा अर्थात सपाटबयानी को स्वीकार किया, जो सीधे मार कर सके।

सहाय की काव्य भाषा को बहुत झटके के साथ नहीं पढ़ा जा सकता है। सचमुच वे एक पूरे वाक्य के कवि सिद्ध होते हैं और उनका वाक्य एक किस्म की क्लासकीय गठन में बेहद कसा हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि सहाय की काव्य भाषा को प्रवाह में सायास पढ़ने पर असुविधा ही होती है। वास्तव में उनकी काव्य–भाषा में सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता विद्यमान है। सच्चे यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिये वे काव्य भाषा का गद्योन्मुख होना आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि उनके काव्य–संसार के लिए भाषा का गद्यीय ढाँचा एक आत्यान्तिक जरूरत बन गया। उनकी काव्य भाषा में सघन एवं तुकात्मक गद्य का प्रवेश एक गैर–जरूरी घुसपैठ नहीं, अपितु जीवन एवं

जगत के सच्चे यथार्थ को प्रस्तुत करने की आवश्यकता का प्रतिफल है।

रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा में त्रिलोचन जैसी नाटकीयता भी विद्यमान है। बोल–चाल का सहज लचीलापन, अतिसरलता एवं सपाटबयानी तथा कोई न कोई ट्विस्ट देकर पाठक को शाक करने की इच्छा उनकी काव्य भाषा के आधारभूत तथ्य साबित होते हैं।

रघुवीर सहाय की रचनाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि उन्होंने एक नयी भाषा की खोज के लिए अथक प्रयास किया है। उनकी कविताएं बिल्कुल समय की फरियाद प्रस्तुत करती हैं। जिसके कारण उनकी कविता की भाषा के लिए किसी विशेष साज–सज्जा की आवश्यकता नहीं होती है। बिल्कुल सामान्य बोलचाल और साधारण अनुभव का खुलना, उनकी कविताओं में दिखाई देता है।

उनकी कविताएं यथार्थ को बिल्कुल समेटे हुए आगे बढ़ती हैं। उनकी साधारण बोल–चाल की भाषा में कहीं भी लम्बी कविता का विधान नहीं प्राप्त होता है। उनकी बहुत छोटी–छोटी कविताओं में ही जीवन का इतना अधिक विस्तार और वैविध्य है कि मनुष्य, प्रवृत्ति और राजनीति की अनेक स्तरीय टकराहटों को बहुत ही सहज ढंग से स्वीकार किया गया है।

उनकी कविताएं बोल–चाल के जीवन का एक अनन्त प्रवाह ही प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाएं मनुष्य जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा सिद्ध होती हैं।

निःसन्देह रघुवीर सहाय जिस भाषा के द्वारा आम जनता के दर्द को उभारते हैं, उसी में उनके चारों ओर के विकृत एवं दूषित परिवेश से उनकी गहरी अप्रसन्नता भी प्रकट होती है–

"वे जिन तकलीफों को जानकर
उनका वर्णन नहीं करते हैं
वही है कला उनकी"।

उन्होंने अपनी काव्य भाषा का ढाँचा इस प्रकार सृजित करने का प्रयास किया है कि एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अन्दर घुसा हुआ, तीसरे वाक्य को आगे की ओर धक्का देता सा प्रतीत होता है। अपनी भाषा में सघन एवं तुकात्मक गद्यात्मकता, अखबारी पुट एवं नाटकीयता तथा झटका देने की कला का समावेश करके उन्होंने यथार्थ की सच्ची तह खोलने में सफलता पायी है। उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित जिन कविताओं को चुना है, उसमें पाखण्ड एवं ढोंग तथा व्यर्थ के दिखावे पर अपना धारदार व्यंग्य एवं छींटाकशी का तीखा भाव उड़ेला है। वे अपनी व्यंग्यात्मक काव्य–भाषा के द्वारा नेताओं की धूर्तता एवं पाखण्ड तथा शोषण की चालाक मुद्राओं एवं क्रियाओं की सूक्ष्म पकड़ द्वारा ही उनके सारे भ्रष्ट आचरण एवं राजनीति की मूल्यहीनता की सहज पोल खोलने से नहीं चूकते हैं।

एक यथार्थवादी कवि होने के कारण सहाय ने अपनी काव्य–भाषा में सपाटबयानी का ही सहारा लिया है। बिम्ब एवं प्रतीक योजना उनकी काव्य–भाषा का कोई उद्देश्य नहीं रहा है। बिम्बों एवं प्रतीकों के प्रति अरूचि होते हुए भी सहाय के काव्य सृजन में वे अत्यन्त सहज रूप में अनायास ही आ गये हैं।

"अब शीतल जल की चिन्ता में
लगती बहुओं की भीड़ कूएं पर ।
मँजी गगरियों पर से किरणें घूम–घूम
छिप जाती पनिहारिन के
साँवल हाथों की चूड़ियों में
धीरे–धीरे झुकता जाता है शरमाये नयनों सा दिन"।

रघुवीर सहाय की काव्य–भाषा में तत्सम् शब्दों का प्रयोग कम है। यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति के लिए तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग अधिक है। अभिधा की भाषा में नयी शक्ति सक्रिय कर देना यदि नयी कविता की पहचान बनी है तो इसका बहुत कुछ श्रेय रघुवीर सहाय को ही है। उन्होंने अपनी काव्य भाषा में जिन शब्दों को रूप की दृष्टि से अव्यय कहे जाने का गौरव प्राप्त है, उन्हें अर्थ की दृष्टि से अव्यय बना देने का सफल प्रयास किया है। रघुवीर सहाय ने उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी किया है।

किसी वर्णिक या मात्रिक जैसी परम्परित छन्द रचना की अनुपस्थिति के बावजूद सहाय की काव्य भाषा में अनिवार्य लय की छन्दात्मकता एवं संगीात्मकता है। यह लय उत्पन्न करने वाली छन्दात्मकता आरम्भ से ही सहाय की कविता की शिल्प संरचना के केन्द्र में रही है। पाँचवे दशक के अन्त में इनकी कविता में छन्द तथा लयात्मकता के बहुत से प्रयोग मिलते हैं। यही वह समय है जब वे अपनी काव्य भाषा में विशेष प्रकार की लयात्मकता का सृजन करते हैं।

'अस्तु, "रघुवीर सहाय की काव्य–चेतना और रचना–शिल्प' के सभी पक्षों पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनकी चेतना, आम आदमी की चेतना रही है। समाज के साधारण से साधारण लोगों की दर्द भरी चेतना। वे मानवीय संवेदनाओं के कवि रहे हैं, और उनकी यह संवेदना उनके काव्य एवं गद्य दोनों ही रचनाओं को स्पर्श करती हे। यही कारण है कि अपने सामाजिक दायित्व का पूर्णरूप से निर्वाह करते हुए, सहाय ने अपनी काव्य रचनाओं की यात्रा की हे। उन्होंने अपनी काव्य–भाषा में समाविष्ट यथार्थ के कोरे आदर्श को समाविष्ट करने से सर्वथा इन्कार किया है। उन्होनि यथार्थ की पथरीली एवं ऊबड़–खाबड़ धरातल पर ही चलने का प्रयास किया है।

उनकी कृति "लोग भूल गये हैं" को 1984 का राष्ट्रीय साहित्य अकादमी पुरस्कार, मरणोपरान्त हंगरी के सर्वोच्च राष्ट्रीय सम्मान, बिहार सरकार

के राजेन्द्र प्रसाद शिखर सम्मान और आचार्य नरेन्द्र देव सम्मान से विभूषित होना उनके साहित्यिक गौरव को ही रेखांकित करता है।

समग्रतः सहाय की साहित्यिक यात्रा के बारे में जितना अधिक कहा जाय, वह बहुत कम है। काया इस नश्वर संसार में किसी न किसी पड़ाव पर अवश्य ही साथ छोड़ देती है, लेकिन व्यक्ति अपने यश कार्य से सदा के लिए ऊपर उठ जाता है। रघुवीर सहाय भी अपनी अमर कृतियों से हिन्दी साहित्य में प्राणवन्त चेतना फूँकी। प्रयोगवादी, नयी कविता तथा साठोत्तरी हिन्दी साहित्य में वे अपना शीर्षस्थ स्थान निर्धारित करते हैं। अपनी काव्य चेतना एवं रचना शिल्प के माध्यम से उन्होंने अपना जो परिचय प्रस्तुत किया है, उसे किसी भी स्थिति में अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अपनी सहज–संप्रेषण शक्ति के द्वारा उन्होंने समकालीन साहित्य में अपना मूर्धन्य स्थान निश्चित करते हुए, एक मानवीय तथा यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में अपनी पहचान कायम किया है।

******

1. आधार रचनाएँ :

दूसरा सप्तक : (सात कवियों में से एक)	कविता संग्रह सन् 1951, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी।

सीढ़ियों पर धूप में – कविता कहानी संग्रह – सन् 1960 भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी।

आत्म हत्या के विरूद्ध– कविता संग्रह सन् 1967 राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

हँसो–हँसो–जल्दी हँसो–	कविता संग्रह सन् 1975 नेशनल पब्लिशिांग हाउस नयी दिल्ली।
लोग भूल गये हैं–	कविता संग्रह – सन् 1982 राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली।
कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ–	कविता संग्रह – सन् 1989 राजकमल प्रकाशन– नयी दिल्ली।
एक समय था –	कविता संग्रह सन् 1995 राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
दिल्ली मेरा परदेश–	निबन्ध संग्रह सन् 1974 मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, दिल्ली
लिखने का कारण–	निबन्ध संग्रह सन् 1978 राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन दिल्ली
जो आदमी हम बना रहे हैं–	कहानी संग्रह सन् 1982 राधाकृष्ण प्रकाशन नयी दिल्ली।
ऊबे हुए सुखी–	निबन्ध संग्रह – सन् 1983 नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली
वे और नहीं होंगे जो मारे जायेंगे–	निबन्ध संग्रह सन् 1983 नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली।

यथार्थ – यथास्थिति नहीं – (यथार्थ सम्बन्धी लेख और भेंट वार्ताएं) सन् 1984 वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

बरनम वन– शेक्सपीयर के मकबेथ का पद्यानुवाद– सन् 1979 राजकमल प्रकाश, दिल्ली।

विरजीस कदर का कुनबा– "लोर्का" के हाउस आफ वर्नार्डा एल्वा" का उर्दू गद्य में अनुवाद सन् 1980, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

बारह हंगरी– कहानियाँ – अनुवाद– भारत भूषण अग्रवाल एवं रघुवीर सहाय, सन् 1974, साहित्य अकादमी दिल्ली।

अर्थात – (जनसत्ता के अर्थात कालम में प्रकाशित सहाय के निबन्ध संग्रह) संपादक– हेमन्त जोशी सन् 1994 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

भँवर लहरें और तरंग– आलेख संग्रह– सन् 1983 राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

2. **सन्दर्भ ग्रन्थ**

क) **काव्य** :

तार सप्तक : सं0 अज्ञेय– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी, सन् 1943 ई0

दूसरा सप्तक : सं0 अज्ञेय– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी सन् 1951 ई0

तीसरा सप्तक : सं0 अज्ञेय – भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी सन् 1959

कुछ कविताएं : शमशेर बहादुर सिंह– जगत शंखधर प्रकाशन, वाराणसी सन् 1959 ई0

जमीन पक रही है : केदारनाथ सिंह– प्रकाशन संस्थान शाहदरा दिल्ली, सन् 1980 ई0

जगत का दर्द : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना– राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1976 ई0

ख) **गद्य एवं आलोचनात्मक रचनाएँ** :

संसद से सड़क पर : धूमिल– राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सन् 1972 ई0

माया दर्पण : श्रीकान्त वर्मा– भारतीय ज्ञानपीठ काशी सन् 1967ई0

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा0 बच्चन सिंह– लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1994 ई0

रघुवीर सहाय का कवि–कर्म : सुरेश शर्मा, अरूणोदय– प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली सन् 1992 ई0

रघुवीर सहाय : सं0 विष्णु नागर/ असद जैदी, आधार– प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा, सन् 1993 ई0

हिन्दी साहित्य का इतिहास: सं0 डा0 नगेन्द्र – नेशनल–पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सन् 1994

साहित्यिक निबन्ध : डा0 गणपति चन्द्र गुप्त– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद द्वादश सं0 सन् 1993 ई0

कवि कर्म और काव्य भाषा : डा0 परमानन्द श्रीवास्तव विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी सन् 1975ई0

नयी कविता का परिप्रेक्ष्य : डा0 परमानन्द श्रीवास्तव नीलाभ–प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1968ई0

नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली सन् 1971 ई0

आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन –डा0 निर्मला जैन राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सन् 1980 ई0

भाषा और संवेदना : डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद तृ0सं0 सन् 1981 ई0

हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास : डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1986 ई0

नयी कविताएं : एक साक्ष्य : डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1976ई0

आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान : केदारनाथ सिंह – भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली सन् 1971 ई0

नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा– ज्ञान पीठ प्रकाशन वाराणसी सन् 1966 ई0

नया काव्य–नये मूल्य : डा0 ललित शुक्ल, मैकमिलन आफ इण्डिया लि0 दिल्ली सन् 1975 ई0

काव्य भाषा पर तीन निबन्ध : सं0 डा0 सत्य प्रकाश मिश्र, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1989

आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डा0 नामवर सिंह –लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद सन् 1990 ई0

कविता–समकालीन–कविता : डा0 सुन्दरलाल कथूरिया कुमार प्रकाशन नयी दिल्ली सन् 1984 ई0

कविता के नये प्रतिमान : डा0 नामवर सिंह – राजकमल प्रकाशन– दिल्ली, सन् 1993 ई0

नयी कविता के सात अध्याय : डा0 देवेश ठाकुर संकल्प प्रकाशन, बम्बई द्वि0 स0 सन् 1992 ई0

समकालीन कविता का परिदृश्य: डा0 मदन गुलाटी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली सन् 1981 ई0

साठोत्तरी हिन्दी कविता : डा0 रतन कुमार पाण्डेय, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद सन् 1994 ई0

साठोत्तरी हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य : संपादन हिन्दी विभाग पुणे, विद्यापीठ, पुणे, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली सन् 1987

साठोत्तर हिन्दी कविता परिवर्तित दिशाएं : विजय कुमार प्रकाशन संस्थान, दिल्ली सन् 1986

हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ : डा0 शिव कुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन दिल्ली दशम् संस्करण, सन् 1986 ई0

नयी कविता में युगबोध : डा0 मंजू दूबे– अनुपम प्रकाशन पटना, सन् 1987 ई0

नयी कविता की भूमिका : डा0 प्रेमशंकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली सन् 1988 ई0

कविता से साक्षात्कार--मलयज : संभावना प्रकाशन हापुड़, सन् 1990 ई0

कविता और संघर्ष चेतना : डा0 यश गुलाटी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली सन् 1980 ई0

नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, भारतीय प्रेस प्रकाशन इलाहाबाद संवत् 2014

साहित्य के नये धरातल : केसरी कुमार राजकमल शंकाएं और दिशाएं प्र0 दिल्ली

समकालीन अनुभव और कविता: डा0 हरदयाल जयश्री प्रकाशन नयी की रचना प्रक्रिया दिल्ली।

नयी कविता –विलायती संदर्भ : डा0 जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली प्र0सं0 1976 ई0

समकालीन हिन्दी कविता : डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली।

हिन्दी काव्य भाषा की प्रवृत्तियाँ: कैलाश चन्द्र भाटिया, तक्षशिला नयी कविता प्रकाशन अंसारी रोड, नयी दिल्ली।

सामाजिक विघटन और भारत : श्रीकृष्ण भट्ट– सन् 1974 ई0

सामाजिक विघटन और सुधार : सरला दुबे– सन् 1966 ई0

नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा: गजानन माधव मुक्तिबोध– विश्वभारती प्रकाशन, अन्य निबन्ध नागपुर द्वि0सं0 सन् 1977 ई0

नया सृजन नया बोध : कृष्णदत्त पालीवाल सन् 1974 ई0

नया हिन्दी काव्य : डा0 शिवकुमार मिश्र – सन् 1962 ई0

नयी कविता : डा0 कान्ति कुमार– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी सन् 1972 ई0

नयी कविता–स्वरूप और समस्याएं: डा0 जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ सन् 1969 ई0

नयी कविता और अस्तित्ववाद : रामविलास शर्मा , सन् 1978 ई0

नयी कविता– नया मूल्यांकन : डा0 प्रेम शंकर – सन् 1988 ई0

नयी कविता में मूल्य बोध : शशि सहगल सन् 1976 ई0

नयी कविता में वैयक्तिक चेतना: अवध नारायण त्रिपाठी सन् 1979 ई0

नयी कविता– सीमाएं और समस्याएं : गिरिजाकुमार माथुर, सन् 1966 ई0

समकालीन लम्बी कविता की पहचान : युद्धवीर धवन, संजीवन प्रकाशन, कुरूक्षेत्र सन् 1987 ई0

समकालीन साहित्य– एक नई दृष्टि: इन्द्रनाथ मदान,

हिन्दी नवलेखन : डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी

साहित्य और उसके स्थायी मूल्य : डा0 राम विलास शर्मा

आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि: सं0 रामचन्द्र तिवारी

आधुनिक हिन्दी काव्य में अप्रस्तुत विधान : नरेन्द्र मोहन

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी काव्य : रामगोपाल सिंह चौहान

नया हिन्दी काव्य और विवेचना: डा0 शम्भू नाथ चतुर्वेदी– नन्द किशोर एण्ड सन्स वाराणसी सन् 1964 ई0

सर्जन और भाषिक संरचना	:	डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी– लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्र0सं0 सन् 1980 ई0
फिलहाल	:	अशोक बाजपेयी
नकेन	:	नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश
भारत का स्वतंत्रता संघर्ष	:	प्रो0 विपिन चन्द्र हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, सन् 1990 ई0
आधुनिक भारत का इतिहास (एक नवीन मूल्यांकन)	:	बी0एल0 ग्रोवर, एस0चन्द्र एण्ड कम्पनी (प्रा0लि0) नयी दिल्ली
आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव	:	हरिकृष्ण पुरोहित
स्वाधीनता कालीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य	:	डा0 रामगोपाल शर्मा दिनेश सन् 1973 ई0
व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों	:	संपादक श्याम सुन्दर घोष, सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1983 ई0
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य	:	डा0 शेर जंग गर्ग साहित्य भारती दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1973 ई0
हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना	:	डा0 जनेश्वर वर्मा ग्रन्थम कानपुर द्वारा प्रकाशित प्र0 संस्करण सन् 1974 ई0
हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य	:	संपादक प्रेम नारायण टण्डन हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊ
आधुनिक परिवेश और नवलेखन	:	डा0 शिव प्रसाद सिंह

आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना : डा0 शुभा लक्ष्मी, नचिकेता, प्रकाशन दिल्ली सन् 1986 ई0

सदाचार का तावीज : हरिशंकर परसाई– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन काशी तृ0 संस्करण, सन् 1975 ई0

कबीर : हजारी प्रसाद द्विवेदी– राजकमल प्र0दिल्ली सन् 1985 ई0

3. **हिन्दी शब्द कोश :**

1. हिन्दी साहित्य कोश– भाग–1 सं0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लि0 वाराणसी द्वितीय संस्करण सन् 1986 ई0
2. हिन्दी साहित्य कोश : भाग दो – डा0 शिव प्रसाद सिंह
3. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) संपादक– डा0 नगेन्द्र
4. भारतीय साहित्य कोश – संपादक डा0 नगेन्द्र – नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र0संस्करण सन् 1981 ई0
5. हिन्दी शब्द सागर – संपादक – डा0 श्याम सुन्दर दास सन् 1973 ई0

4. **अंग्रेजी ग्रन्थ :**

1. My Picture of Free India- M.K.Gandhi
2. Metaphor and Symbol - D.E. James
3. The Poetic Image - C. Day Levis
4. Principles of Literary Criticism- I.A. Richards

5. **पत्र–पत्रिकाएं एवं अन्य सामग्री :**

आजकल, वर्तमान साहित्य, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ब्राह्मण, आलोचना, प्रतीक, नयी कविता अंक (1) से (8) तक, कल्पना, दस्तावेज, कुरूक्षेत्र, निकष, पल–प्रतिफल।

****

इति